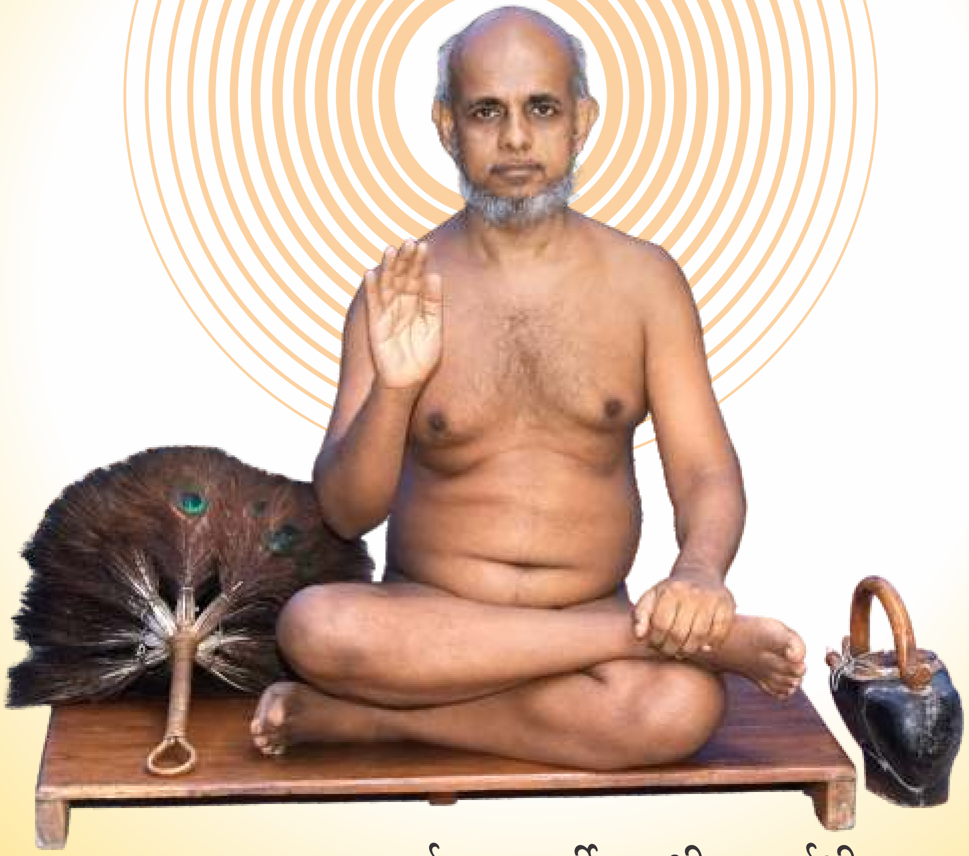

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्‌घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्‌घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

कातन्त्ररूपमाला

(स्वरान्त लिंग प्रकरणम्)

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री शर्मवर्म जी महाराज

टीकाकार
परम पूज्य आचार्यश्री भावसेन जी महाराज

अनुवाद–सम्पादन
ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री–पीयूष

मुद्रक
श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति
जबलपुर (मध्यप्रदेश)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

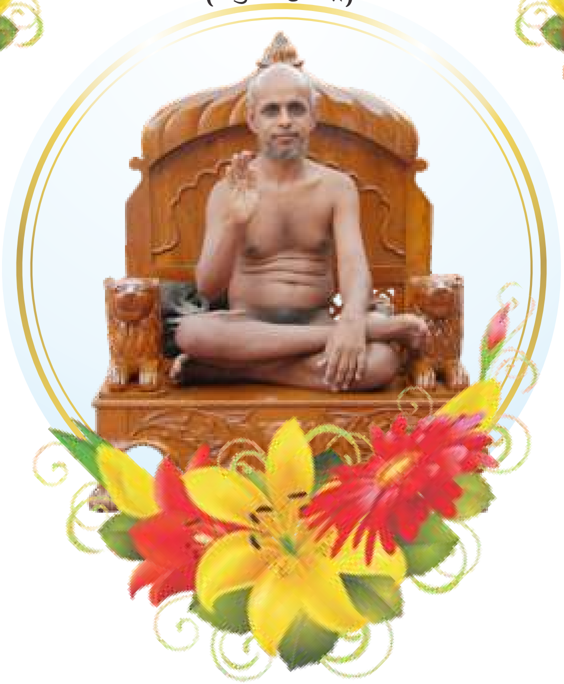

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

श्रीशर्ववर्मकृतकलाप–व्याकरणस्य
वादिपर्वतवज्रश्रीमद्भावसेनत्रैविद्यकृता टीका

कातन्त्र–रूपमाला

(स्वरान्त–लिङ्ग–प्रकरणम्)

अनुवाद/सम्पादन

साहित्याचार्य बाल ब्र. डॉ. प्रदीप शास्त्री "पीयूष"

६१०, संजीवनी नगर, गढा, जबलपुर (म. प्र.)

६४२४६१४१४६, ६८२६१४४६५४ (म. प्र.), ०६६३४८६६०६१ (उ. प्र.), ०६८२६६४५५३५ (राज.), ६५६०४६८५४७ (दिल्ली), ०६४२११८४६७१(महा.), ०६१६४४६१६४८(कर्ना.)

प्रकाशक

श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति बरेला, जबलपुर (म. प्र.)

साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जैन संस्थान

६१०, संजीवनी नगर गढा, जबलपुर (म. प्र.)

संस्करण प्रथम– (१०.१०.२०१७) लागत व्यय–७५० (सात सौ पचास) रुपये

संस्करण प्रथम– (३०.०६.२०१७) लागत व्यय–७५० (सात सौ पचास) रुपये

श्री शर्ववर्मकृतकलाप–व्याकरणस्य वादिपर्वतवज्रश्रीमद्भावसेनत्रैविद्यकृता टीका

कातन्त्र–रूपमाला – स्वरान्त–लिङ्ग–प्रकरणम्

अनुवाद/सम्पादन

साहित्याचार्य बा. ब्र. डॉ. प्रदीप शास्त्री "पीयूष" (एम. ए.)

साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जैन संस्थान

६१०, संजीवनी नगर, गढा, जबलपुर (म. प्र.)

६४२४६१४१४६, ६८२६१४४६५४ (म. प्र.), ०६६३४८६६०६१ (उ. प्र.), ०६८२६६४५५३५ (राज.), ६५६०४६८५४७ (दिल्ली), ०६४२११८४६७१ (महा.), ०६१६४४६१६४८ (कर्ना.)

प्रकाशक – :

श्रीदिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति बरेला जबलपुर (म. प्र.)

साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जैन संस्थान

६१०, संजीवनी नगर, गढा, जबलपुर (म. प्र.)

६४२४६१४१४६, ६८२६१४४६५४, ०६६३४८६६०६१ ०६८२६६४५५३५

संस्करण प्रथम– (१०.१०.२०१७)

लागत व्यय–७५० (सात सौ पचास) रुपये

समर्पण

जो तीर्थंकर महावीर की
परम्परा के
समुज्ज्वल नक्षत्र हैं,
जिनका अद्‌भुत जीवन
अध्यात्म की पवित्र प्रेरणा
प्रदान करता है,
जिनके विचार, भूले भटके
जीवन राहियों का
पथ–प्रदर्शन करते हैं,
उन्हीं श्रद्धालोक के देवता,
श्रमण संस्कृति के
कीर्ति स्तम्भ
परम पूज्य गुरुवर
राष्ट्रसन्त, विश्वविख्यात, सन्त शिरोमणी

आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज

के संयम स्वर्ण (पचासवें)
पदारोहण वर्ष की
पावन बेला में
उनके पवित्र श्रीकर कमलों में
सादर
सविनय
समर्पित।

बाल ब्र. डॉ. प्रदीप शास्त्री पीयूष

१०.१०.२०१७

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की जीवन झाँकी

पूर्वनाम	:	ब्र. विद्याधर जी
जन्म	:	१० अक्टूबर १९४६ (शरद पूर्णिमा)
जन्म स्थान	:	सदलगा, जिला–बेलगाँव (कर्नाटक)
पिता का नाम	:	श्री मलप्पा जी
		(समाधिस्थ – मुनि श्री १०८ मल्लिसागर जी महाराज)
माता का नाम	:	श्रीमती श्रीमन्ती जी
		(समाधिस्थ–आर्यिका १०५ समयमति माता जी)
ब्रह्मचर्य व्रत	:	१९६७ में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज से
मुनि दीक्षा	:	३० जून १९६८ में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज से
दीक्षास्थल	:	अजमेर (राज.)
आचार्यपद	:	२२ नवम्बर १९७२ (मगसिर कृष्ण दोज) नसीराबाद में
शिक्षा	:	हाई स्कूल (कन्नड़ माध्यम से)
कृतित्व	:	नर्मदा का नरम कंकड़, डूबो मत/लगाओ डुबकी, तोता क्यों रोता (काव्य–संग्रह), चेतना के गहराव में (सचित्र) प्रतिनिधि काव्य संकलन, मूकमाटी (महाकाव्य), छह संस्कृत शतकों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों का पद्यानुवाद तथा हिन्दी, अंग्रजी, कन्नड़, बंगला आदि में स्फुट रचनाएँ भी।
संयमी सृजन	:	बाल ब्रह्मचारी– ९९ मुनि, बाल ब्रह्मचारिणी– १९३ आर्यिकायें, बाल ब्रह्मचारी– ८ ऐलक जी, बाल ब्रह्मचारी –४ क्षुल्लक जी, समाधि प्राप्त लगभग– ३५ (मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका)

परिचय के गवाक्ष से

नाम	:	बाल ब्र. डॉ. प्रदीप शास्त्री पीयूष
जन्म	:	०४ अगस्त १९६७
जन्म स्थान	:	ग्वालियर (म.प्र.)
शिक्षा	:	साहित्य से आचार्य एवं एम. ए. (संस्कृत से)
पिता का नाम	:	स्व. सेठ श्री टीकाराम जी जैन, नायक (जैसवाल)
माता का नाम	:	श्रीमती बादामी देवी जैन
भाई तीन बड़े	:	महेश चन्द्र–सुरेश चन्द्र–भगवानदास जैन
बहिन तीन बड़ी	:	श्रीमती हेमलता–सुमन–प्रभा जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	:	०१ जून १९८७ ललितपुर (उ.प्र.)
सप्तमप्रतिमा	:	३० अप्रैल २०१२ चन्द्रगिरि डोगरगढ़, (छ.ग.)
उपाधि	:	पी. एच. डी. (अष्टाध्यायी एवं जैनेन्द्र व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन)
हिन्दी अनुवाद	:	कातन्त्र–रूपमाला, जैनेन्द्र महावृत्ति (संस्कृत व्याकरण)
संकलन/सम्पादन	:	जिनभारती संग्रह, (जिनवाणी संग्रह), नित्यपूजा, जिनपूजा, जिन–अर्चना, धर्मध्यान, तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तर प्रदीप, छहढाला प्रश्नोत्तर प्रदीप, रत्नकरण्डक श्रावकाचार, समयसार (गुटका), इष्टोपदेश (गुटका), तिलोय–पण्णत्ती प्रश्नोत्तर प्रदीप, गोम्मटसार कर्मकाण्ड प्रश्नोत्तर प्रदीप, गोम्मटसार जीवकाण्ड प्रश्नोत्तर प्रदीप, कातन्त्र–रूपमाला पूर्वार्द्ध, कातन्त्र–रूपमाला उत्तरार्द्ध प्रथम–भाग–द्वितीय–भाग, तृतीय–भाग, कातन्त्र–रूपमाला पञ्च–सन्धि, कातन्त्र–रूपमाला स्वरान्त पुल्लिंग प्रकरणम्, कातन्त्र–रूपमाला व्यञ्जनान्त पुल्लिंग प्रकरणम्, सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर प्रदीप भाग १–२–३–४ इत्यादि लगभग १५०पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।

कातन्त्र–रूपमाला के पूर्व कथित सूत्र पाठ, जो अर्थ सहित स्मरण रहना चाहिए

अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्।।२३।।

समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्।।२४।।

व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्।।२५।।

अवर्ण इवर्णे ए।।२७।।

उवर्णे ओ।।३०।।

ऋवर्णे अर्।।३१।।

एकारे ऐ ऐकारे च।।३७।।

ओकारे औ औकारे च।।४०।।

इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः।।४४।।

वमुवर्णः।।४५।।

रमृवर्णः।।४६।।

ए अय्।।४८।।

ऐ आय्।।४९।।

ओ अव्।।५०।।

औ आव्।।५१।।

पदान्ते धुटां प्रथमः।।७६।।

अन्त्यात्पूर्व उपधा।।७९।।

मो नुस्वारं व्यञ्जने।।६१।।

कहाँ/क्या?

१. मंगल आशीर्वचन	÷ आचार्य श्री १०८ वर्धमानसागर जी	– ६
२. आशीर्वचन	÷ आचार्य श्री १०८ विनम्रसागर जी	– १०
३. आशीर्वचन	÷ मुनि श्री १०८ निर्णयसागर जी	– ११
४. आमुख	÷ मुनि श्री १०८ निर्दोषसागर जी	– १२
५. अपनी बात	÷ मुनि श्री १०८ निर्लोभसागर जी	– १४
६. शुभाशंसा	÷ साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जी	– १५
७. भूमिका	÷ ब्र. प्रदीप शास्त्री पीयूष	– १६
८. भाषा का महत्त्व	÷ पं. कोमल प्रसाद शास्त्री	– २४
९. दो शब्द	÷ ई. सुमत प्रकाश जैन	– २५
१०. प्रथम पठनीय	÷ पं. महेश चन्द्र शास्त्री	– २६
११. कातन्त्र–रूपमाला : एकपरिचय	÷ नीरज जैन	– २८
१२. तीन व्याकरण में कथित सञ्ज्ञाएँ	÷	– ३५
१३. कातन्त्र–रूपमाला में कथित सञ्ज्ञाएँ	–	३६
१४. ग्रन्थकार का मङ्गलाचरण		÷ ३९
१५. व्याख्याकर्त्ता का मङ्गलाचरण		÷ ४२

स्वरान्त पुल्लिंग प्रकरणम्

१६. लिंग प्रकरण का मङ्गलाचरण	÷ ४३
१७. पुरुष शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १२९ से १५० तक	÷ ४७
१८. सर्व शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १५२ से १५६ तक	÷ ७०
१९. अल्प शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १५७ से १५७ तक	÷ ७७
२०. पूर्व शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १५८ से १५८ तक	÷ ८२
२१. क्षीरपा शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १५९ से १६० तक	÷ ८८
२०. मुनि और साधु शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १६१ से १७० तक	÷ ९३
२१. द्वि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १७२ से १७२ तक	÷ १०६
२२. त्रि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १७३ से १७३ तक	÷ १०८
२३. कति शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १७४ से १७५ तक	÷ ११०
२४. सखि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १७६ से १८३ तक	÷ ११२
२५. पति शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १८४ से १८४ तक	÷ १२०
२६. पन्थि–मन्थि–ऋभुक्षि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १८५ से १८८ तक	÷ १२७
२७. यवक्री और कटप्रू शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १८९ से १८९ तक	÷ १३७
२८. सेनानी–खलपू शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १९० से १९१ तक	÷ १४३
२९. सुधी शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १९२ से १९२ तक	÷ १५०
३०. प्रतिभू शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १९३ से १९३ तक	÷ १६४
३१. पितृ शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. १९४ से १९९ तक	÷ १७१

कातन्त्र–रूपमाला ७ लिङ्ग–प्रकरणम्

३२. कर्तृ शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २०० से २०० तक ÷ १७७
३३. क्रोष्टृ शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २०१ से २०२ तक ÷ १८५
३४. स्वसृ शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २०३ से २०३ तक ÷ १८६
३५. नृ शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २०४ से २०४ तक ÷ १६४
३६. रै शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २०५ से २०५ तक ÷ १६८
३७. गो शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २०६ से २०८ तक ÷ २०१

स्वरान्त स्त्रीलिंग प्रकरणम्

३८. रम्भा शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २०६ से २१४ तक ÷ २०८
३६. सर्वा शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २१५ से २१६ तक ÷ २१३
४०. द्वितीया शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २१७ से २१७ तक ÷ २२१
४१. जरा शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २१८ से २१८ तक ÷ २२६
४२. अम्बा शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २१६ से २१६ तक ÷ २३०
४३. अम्बाडा शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २२० से २२० तक ÷ २३२
४४. रुचि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २२१ से २२२ तक ÷ २३२
४५. त्रि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २२३ से २२५ तक ÷ २३८
४६. नदी शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २२६ से २२६ तक ÷ २४२
४७. स्त्री शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २३० से २३२ तक ÷ २४७
४८. श्री शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २३३ से २३३ तक ÷ २५३
४६. लक्ष्मी शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २३४ से २३४ तक ÷ २५७
५०. भ्रू शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २३५ से २३५ तक ÷ २६८

स्वरान्त नपुंसकलिंग प्रकरणम्

५१. कुल शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २३६ से २४० तक ÷ २८६
५२. अन्य शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २४१ से २४२ तक ÷ २६५
५३. एकतर शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २४३ से २४३ तक ÷ २६६
५४. सोमपा शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २४४ से २४४ तक ÷ २६८
५५. वारि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २४५ से २४८ तक ÷ ३०१
५६. अस्थि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २४६ से २५१ तक ÷ ३०८
५७. शुचि शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २५२ से २५२ तक ÷ ३१७
५८. अतिरै शब्द की प्रयोग सिद्धि, सूत्र नं. २५३ से २५३ तक ÷ ३४६

मूल–स्वरान्त–लिङ्ग–प्रकरणम्

५६. मूल–स्वरान्त–लिङ्ग–प्रकरणम्, सूत्र नं. १२५ से २५३ तक ÷ ३६१
६०. कातन्त्र–रूपमाला के सूत्र पाठ सूत्र नं. १२५ से २५३ तक ÷ ३६१
६१. सूत्र पाठ, अकारादि क्रम से सूत्र नं. १२५ से २५३ तक ÷ ३६४
६२. कातन्त्र–रूपमाला में कथित शब्दार्थ ÷ ३६८

"मंगल आशीर्वचन"

श्रीशर्मवर्मकृत **"कलाप–व्याकरण"** की श्रीमद्भावसेन त्रैविद्य कृत टीका युक्त **"कातन्त्र–रूपमाला"** का संस्कृत व्याकरण जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुबोधगम्य सूत्र और प्रकरण बद्ध यह रचना **"बालबोधाय कथ्यते"** की उक्ति को सार्थक करती है। मंगलाचरण में वीरप्रभु, सरस्वतीदेवी और वृषभसेन से गौतमप्रभु पर्यन्त तीर्थंकरदेवों के समस्त गणधरों का मंगलाचरण में स्मरण करके भक्तिपूर्वक मूलोत्तर गुणों के धारक समस्त ढ़ाई द्वीपों के मुनियों को नमस्कार किया गया है। सरलसुबोध इस व्याकरण का पठन–पाठन प्रायः दिगम्बर सम्प्रदाय के मुनिसंघों में संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करने हेतु किया जाता है।

हमने जब **"कातन्त्र–रूपमाला"** का अध्ययन किया तब **"कातन्त्र–रूपमाला"** अपने मूलरूप में ही थी, उसकी हिन्दी व्याख्या नहीं थी। सम्प्रति हिन्दी रूप में संक्षिप्त अनुवाद के पश्चाद् **ब्र. भैया प्रदीप शास्त्री पीयूष जी** ने सम्पूर्ण **"कातन्त्र–रूपमाला"** की हिन्दी व्याख्या विस्तार के साथ की है। सम्प्रति अध्ययन करने वालों के लिए अध्ययन करने में सुगमता हो गई है। संस्कृत–व्याकरण का अध्ययन करने के लिए संस्कृत का ज्ञान होने पर ही समझा जा सकता था, किन्तु अब शोधकप्रज्ञा प्राप्त व्याकरण के गहन अध्येता **ब्र. पीयूष जी** ने अपनी विस्तृत व्याख्या से इस ग्रन्थ का अध्ययन सुगम बना दिया है। **ब्र. पीयूष जी** ने, जैन जगत के सिरमोर, आर्षपरम्परा के संरक्षक, मनीषी विद्वान्, **साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जी** सागर से अध्ययन का सुयोग पाकर अपनी प्रज्ञा को परिमार्जित कर, इस दुरुह कार्य को किया है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** की सम्पूर्ण विस्तृत टीका अध्येताओं को पूर्व में उपलब्ध हो चुकी है। अब पूर्वार्द्ध के अन्तर्गत संशोधित एवं संवर्द्धित **"लिंग प्रकरणम्"** के प्रकाशन से व्याकरण ग्रन्थ की समग्र विस्तृत पूर्ण व्याख्या उपलब्ध हो सकेगी। शनैः शनैः समास कारक इत्यादि प्रकरण भी **ब्र. पीयूष जी** द्वारा प्रकाशित हो तथा **ब्र. पीयूष जी** ने, अपने जीवन में व्रतों के साथ ज्ञान प्राप्त किया, वे जिनवाणी की सेवा और आत्मसाधना में लगे रहें, उन्हें हमारा मंगल आशीर्वाद.........।

२४.०६.२०१७ — **आचार्य वर्धमानसागर**

श्रवणबेलगोला, कर्नाटक — **(चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) के पंचम पट्टाचार्य)**

"आशीर्वचन"

संस्कृत भाषा सभी भाषाओं की जननी कही जाती है यदि संस्कृत भाषा नहीं होती तो शायद ही अन्य हिन्दी, अग्रेजी आदि भाषाओं को शुद्ध बोला जा पाता। हमने अपने छात्र जीवन में संस्कृत भाषा को कोई महत्व नहीं दिया। अंग्रेजी को बहुत चाहा था। लेकिन जब परमपूज्य गुरुदेव श्री विरागसागर जी महाराज ने हमें जबरदस्ती कान्तत्र–रूपमाला के सूत्रों को पढ़ाया तो ये सूत्र पढ़कर हमें संस्कृत भाषा का ज्ञान हुआ जिसके माध्यम से हमने सभी भाषाओं को शुद्ध बोलना जान लिया। यह कातन्त्र–रूपमाला दिखने में तो एक छोटा सा ही ग्रन्थ है लेकिन इसका अध्ययन हमें शब्दों का विशेष ज्ञान कराता है।

एक समय था जब संस्कृत भाषा को पढ़ाने के लिये जैन विद्वानों का अभाव था। क्षुल्लक श्री सहजानन्द जी वर्णी, गणेश प्रसाद जी वर्णी आदि जैसे संतों को कोई संस्कृत पढ़ाने बाला नहीं था। उन्होंने संस्कृत भाषा को पढ़ने के लिये कितने कष्ठ उठाये, यह सर्वविदित है। अनादर और अपमान सहन कर उन्होंने संस्कृत भाषा को पढ़ा।

संस्कृत विभाग की परीक्षा में लघुसिद्धान्त–मध्यसिद्धान्त–सिद्धान्त कौमुदी पाढ्यक्रम में होने से उन्हीं का पठन–पाठन प्रचलित रहा। सम्प्रति **ब्र. प्रदीप शास्त्री पीयूष जी** द्वारा कातन्त्र–रूपमाला का अध्ययन कर, सरल, स्पष्ट–सूक्ष्म विवेचन के साथ विस्तृत टीका कर, इसे प्रकाशन कराकर आज सन्तों व श्रावकों के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन सुगम बनाया। इस कातन्त्र–रूपमाला को पढ़कर संस्कृत भाषा को पढ़ना बहुत सुगम व सरल हो जाता है, इसके अध्ययन के विना प्राचीन आचार्यों के कथन को सही ढंग से समझना सम्भव नहीं है।

ब्र. भैया प्रदीप शास्त्री पीयूष जी की संस्कृत भाषा पर अच्छी पकड़ है, उनका यह अध्ययन जैन दर्शन के साहित्य–जगत में बहुत ही महत्वशाली है। आगम के प्रति उनकी श्रद्धा, सन्तों के प्रति सम्मान, विद्वानों के प्रति आदर ने उनके व्यक्तित्व को बहुत ही श्रेष्ठ बनाया है। उनका सुलझा हुआ व्यक्तित्व, विवादों से रहित व्यवहार हमें बहुत पसंद आता है। इस **"कातन्त्र–रूपमाला"** की उनके द्वारा की गई हिन्दी टीका से सभी लोगों में संस्कृत भाषा को पढ़ने में अवश्य ही सुगमता होगी।

युगों युगों तक **ब्र. पीयूष जी** की यह मेहनत असीम पुण्यबन्ध कराएगी और यह कृति अविस्मरणीय रहेगी। **ब्र. पीयूष जी** निरन्तर इसी तरह जिनवाणी की सेवा में लगे रहें, स्वयं ज्ञानोपयोगी बनकर सभी को ज्ञान प्राप्त कराएँ और भविष्य में उत्कृष्ट साधना करते हुए दिगम्बरत्व पाकर समाधि को प्राप्त करें।

हमारा उनके इस श्रेष्ठ कार्य के लिए मंगलमय आशीर्वाद है।

०६.०७.२०१७, ग्वालियर, वर्षायोग **उच्चारणाचार्य श्रमण विनम्रसागर**

आशीर्वचन

आचार्य श्री शर्मवर्म कृत **"कलाप–व्याकरण"** के सूत्रों की संस्कृत वृत्ति वादिपर्वत श्रीमद् भावसेन त्रैविद्य के द्वारा लिखि गई है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** का पठन–पाठन प्रायः कर दिगम्बर आम्नाय के संघों में हुआ करता है। इसके अध्ययन से दिगम्बर जैनसिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन सहजता से हो जाता है। पूज्य गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जब भी संघ को व्याकरण पढ़ाते थे, तब वे मूलसूत्र की संस्कृतवृति से ही पढ़ाते थे। उस समय हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं होने से पढ़ने वाले पाठकगणों को पढ़ने में कठिनाई होती थी। परन्तु **"बाल ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री पीयूष"** के द्वारा इसकी विस्तृत हिन्दी टीका करने पर, पढ़ने वालों को व्याकरण पढ़ने में सुलभता हो गई है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध का प्रथम भाग द्वितीयभाग और तृतीयभाग पूर्व में प्रकाशित होने पर आचार्य श्री द्वारा पाठयित व्याकरण का अवलोकन उपर्युक्त अनुवाद द्वारा सहज और सरल हो गया।

प्रस्तुत ग्रन्थ मात्र लिंग–प्रकरण रूप में ही प्रकाशित हो रहा है। लिंग–प्रकरण के अनुवाद को संशोधित एवं संवर्धित कर नये प्रारूप में प्रकाशित किया जा रहा है, इससे **ब्र. पीयूष जी** की बौधिकता प्रदर्शित होती है।

कातन्त्र–रूपमाला के लिंग–प्रकरण की हिन्दी टीका करने में ब्रह्मचारी जी ने जो श्रम किया है, वह अन्य विद्वानों को भी प्रेरणादायी है। अब सम्भवतया **पीयूष जी** की लेखनी कारक, समास आदि तथा जैनेन्द्र महावृत्ति के लिखने में चलेगी।

कातन्त्र–व्याकरण के इस लिंग प्रकरण के प्रकाशन के लिये ब्रह्मचारी जी को मेरा शुभाशीष है। वे इसी प्रकार जिनवाणी की सेवा और स्वयम् की आत्म साधना में लगे रहें, और शीघ्र ही कारक–समास आदि तथा जैनेन्द्र–महावृत्ति को भी प्रकाशित कर, समाज के मध्य लायें, ताकि पठन–पाठन में सम्पूर्ण व्याकरण उपलब्ध हो सके। इसके प्रकाशन में जिनका भी प्रत्यक्ष–परोक्ष सहयोग जिस रूप में भी रहा है, उन सबको मेरा आशीर्वाद है। प्रस्तुत ग्रन्थ पठन–पाठन में आये एवं शोधार्थी छात्र जैन–व्याकरण पर शोध कर सकें, इसी भावना के साथ इत्यलम्।

१०.१०.२०१७ — **मुनि निर्णयसागर**

वर्षायोग भोपाल — **(शिष्य–आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज)**

आमुख

संस्कृत भाषा एक अत्यन्त प्राचीन भाषा है, समस्त भाषाओं में संस्कृतभाषा का मुख्य और उच्च स्थान है। वर्तमान में विद्यार्थी इस भाषा से पराङ्मुख तथा इंग्लिश भाषा में द्रुतगति से प्रभावित होते जा रहें हैं। लेकिन वास्तव में गम्भीरता से विचार किया जाये तो सम्पूर्ण जैनसिद्धान्त संस्कृत और प्राकृतभाषा में ही उपलब्ध है। यदि कोई जैनसिद्धान्त के गूढ़ रहस्यों को जानना चाहता है और साक्षात् उन पूर्वाचार्यों से वार्तालाप करना चाहता है तो उसको संस्कृत व्याकरण पढ़ना ही पढ़ेगी। इसके विना यदि कोई जैनसिद्धान्त के रहस्य को समझने का प्रयास करता है, तो उसका यह प्रयास ऐसा है, जैसे कोई बालक जल में पड़ते हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकड़ना चाहता है। अथवा यूँ कहें कि विना संस्कृत के जैनसिद्धान्त में प्रवेश करने का प्रयास वौना है।

वर्तमान में पाणिनीयकृत् व्याकरण का प्रचलन है। जैन व्याकरण और पाणिनि व्याकरण का अध्ययन व्याकरण के तलस्पर्शी विद्वान् **"साहित्याचार्य बाल ब्रह्मचारी भाई श्री प्रदीप शास्त्री पीयूष जी"** ने किया है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध नहीं होने से वह पठन–पाठन में प्रचलित नहीं हो पाई। **ब्र. पीयूष जी** द्वारा **"कातन्त्र–रूपमाला"** की विस्तृत सरल टीका कर, इसको पठन–पाठन के योग्य बना दिया है।

प्रस्तुत लिंग–प्रकरण के पूर्व कातन्त्र–व्याकरण का हिन्दी अनुवादित पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध प्रकाशित हो कर के पाठकों के हाथ में आया। जिसके विषय को पढ़कर के जिज्ञासुओं ने हृदय से सराहना की, इसके उपलब्ध होने पर ही अनेक दिगम्बर जैन मुनि, त्यागी–व्रतियों ने संस्कृत व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

पाठकगणों की रुचि को देखकर के आदरणीय **भाई सा. प्रदीप जी** ने **"कातन्त्र–रूपमाला"** के इस लिंग प्रकरण को संशोधित एवं संवर्धित कर, पुनः प्रकाशित करने का मन बना लिया, ताकि अध्येता, व्याकरण में पारङ्गत हो सके।

कठिन परिश्रम करके **भाई सा. श्री पीयूष जी** ने **"कातन्त्र–रूपमाला"** नामक ग्रन्थ को पाठकों तक भेजने का प्रयास किया है, जो अपने आप में समादरणीय है।

संस्कृत भाषा और उसका साहित्य हमारे पूर्वाचार्यों की अमूल्य देन है। जिसकी परम्परा आज तक अविच्छिन्न रूप से हमें प्राप्त है। मैं समझता हूँ कि आज जितने भी जैन विद्वान् व्याकरण के ज्ञाता नजर आते हैं वे सब **"पूज्य श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी महाराज"** की देन है। उन्हीं वर्णी जी महाराज की कृपादृष्टि से पण्डित प्रवर **डॉ. श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य**, सागर, व्याकरण के मूर्धन्य विद्वान् हुए। उन्हीं की छत्रछाया में रह कर आदरणीय **भाई सा. ब्र.**

प्रदीप शास्त्री पीयूष जी ने व्याकरण में पारङ्गता प्राप्त की। उनके अध्ययन की रुचि को देखकर मेरे द्वारा और अनुज भ्राता ब्र. कमल जी द्वारा भी व्याकरण का अध्ययन किया गया। जिसके फलस्वरूप **"सुबोध संस्कृत भारती"** का सृजन हम दोनों के द्वारा किया गया जिसका सम्पादन आदरणीय भाई सा. पीयूष जी द्वारा किया गया।

संस्कृत का विशाल साहित्य अमूल्य ग्रन्थ रत्नों का सागर है। इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी प्राचीन भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा इसके समान अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रह पाई है।

संस्कृत का शब्द भण्डार अथाह है। इसका विस्तृत धातु पाठ नित्य नये शब्दों को बनाने में समर्थ रहता है।

आचार्य श्रीशर्ववर्मन् जी द्वारा रचित यह **"कातन्त्र–रूपमाला"** समस्त व्याकरणों में श्रेष्ठ और सर्वाङ्ग है। परिमार्जित एवं अतीव सरल शैली में लिखी गई है। इसकी विशेषता यह है कि कितने ही स्थलों पर एक ही सूत्र से शब्द की सिद्धि हो जाती है तथा इसमें बहुत छोटे–छोटे सूत्र हैं। साथ ही सूत्रों में उत्तर भी रहता है। जैसे– **"ए अय्"**, **"ऐ आय्"**, **"ओ अव्"**, **"औ आव्"** इत्यादि। इन सूत्रों से ही स्पष्ट होता है कि ए के स्थान पर अय् आदेश, ऐ के स्थान पर आय् आदेश, ओ के स्थान पर अव् आदेश तथा औ के स्थान पर आव् आदेश होता है। इत्यादि अनेक सूत्रों से अर्थ स्पष्ट होता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण **"कातन्त्र–रूपमाला"** में प्रत्याहार प्रक्रिया नहीं होने से विद्यार्थी को थोड़ा सा संकेत मिलने पर वह सुगमता से विषय को समझ लेता है।

लोग कहते हैं कि संस्कृत व्याकरण को पढ़ना लोहे के चने चबाने की तरह है। सर्वप्रथम तो लोहे के चने चबते ही नहीं और चब भी जायें तो पचते नहीं। इस प्रकार की प्रायः प्राणियों की धारणा है। लेकिन "कातन्त्र रूपमाला" लोहे के चने नहीं, बल्कि दूध मलाई के सदृश है। इसको सभी जन सहज–सरल रूप से तैयार कर सकते हैं, यदि पढ़ने की रुचि हो तो।

अन्त में, मैं यही कहूँगा कि **भाई साहब श्री प्रदीप जी** ने कठिन परिश्रम करके इस कृति को पठनीय बना दिया है। इसके लिये में उनके लिये कोटिशः धन्यवाद देता हूँ तथा भावना भाता हूँ कि आपकी लेखनी इसी प्रकार अविरल–अविराम चलती रहे।

उदासीन आश्रम, इसरीबाजार **बाल ब्र. पवन जैन**

(सम्प्रति–मुनि श्री निर्दोषसागर जी महाराज)

नोट– आपकी दीक्षा–१०.०८.२०१३ को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा अतिशय क्षेत्र रामटेक में हुई, "आमुख" दीक्षा के पूर्व लिखा गया है।

अपनी बात

वैसे तो सभी साहित्य पठनीय होता है। सभी के अपने विशिष्ट गुण हैं। सभी ने अपने उपकार से मानव समाज को ही नहीं, किन्तु अन्य प्राणियों को भी स्वस्थ सुखी तथा अज्ञान–अन्धकार से हीनाधिक ऊपर उठाया है, किन्तु जब संस्कृत की ओर ध्यान जाता है तो बरबस ही मन–मयूर प्रफुल्लित हो नृत्य करने लगता है। ऐसी भावना जागरित हो उठती है कि मानों आनन्द–सरिता में किल्लोल कर रहा हो। यह निश्चय हो जाता है कि उत्कृष्ट मनुष्य जीवन का सर्वस्व प्राप्तव्य अब यहीं मिलेगा। क्योंकि सम्पूर्ण जैन साहित्य, न्याय, सिद्धान्त सभी संस्कृत और प्राकृत भाषा में ही लिखे गये हैं।

वर्तमान में ब्रह्मचारी भाईओं में अध्ययन के प्रति अरुचि देखकर खेद होता है, कि अब कैसे अपूर्व जैन साहित्य का प्रचार–प्रसार होगा। सम्प्रति विद्वज्जन भी विधि–विधान में संलग्न हैं, परन्तु वे विस्मृत हैं कि विना संस्कृत के वे मन्त्रों का उच्चारण नहीं कर पा रहे हैं, फिर भी वे संस्कृत नहीं पढ़ना चाहते हैं। आज बहुताय विधानाचार्यों को मंगलाष्टक का उच्चारण तक नहीं बनता है। मैं अनुरोध करता हूँ उन विधानाचार्यों से कि वे सर्वप्रथम संस्कृत व्याकरण का अध्ययन कर अपने आप को परिपक्व बनाये। मैं धन्यवाद देता हूँ **"साहित्याचार्य बाल ब्रह्मचारी भाई श्री प्रदीप शास्त्री पीयूष जी"** को जो पण्डित प्रवर **डॉ. श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य** सागर से, जैनसिद्धान्त, न्याय और व्याकरण का ठोस अध्ययन कर, जिनागम के प्रकाशन में संलग्न हैं।

पाठकगणों की रुचि को देखकर आदरणीय भाई सा. प्रदीप जी ने **आचार्य श्री शर्ववर्मन् जी** द्वारा रचित **"कातन्त्र–रूपमाला"** का सरलतम हिन्दी अनुवाद कर व्याकरण को सर्वोपयोगी बना दिया है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध पूर्व में प्रकाशित हो चुका है, जो अनेक साधकगणों को अध्ययन में सहयोगी रहा। सम्प्रति **"कातन्त्र–रूपमाला"** का लिंग–प्रकरण प्रकाशित हो रहा है, जो संस्कृत अध्येताओं को अध्ययन करने में सहयोगी रहेगा।

आदरणीय **भाई सा. श्री पीयूष जी** ने दुरुह **"कातन्त्र–रूपमाला"** नामक व्याकरण के स्थलों को सरलतम हिन्दी की तरह बना दिया है। कोई भी पाठक इसे पढ़कर संस्कृत के शब्द–विश्व के ऊपर सदैव अप्रकम्पनीय वह आधिपत्य स्थापित कर सकता है, जिसे कभी भी कोई डिगा नहीं सकता है।

प्रस्तुत **"कातन्त्र–रूपमाला"** का लिंग–प्रकरण का हिन्दी अनुवाद रूप व्याख्यान किया गया है, जो पाठकगणों को अध्ययन में सहयोगी रहेगाा। आज हमें **"पूज्य श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी महाराज"** का उपकार स्मरण करना चाहिये जिन्होंने पण्डित प्रवर **डॉ. श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य**, सागर जैसे मूर्धन्य विद्वान् तैयार किये। उनकी छत्रछाया में रह कर अनेक विद्वान् व्याकरण में पारङ्गता को प्राप्त हुये हैं। इत्यलम्.........।

उदासीन आश्रम, इसरीबाजार **बाल ब्र. कमल जैन**

(सम्प्रति–मुनि श्री निर्लोभसागर जी महाराज)

नोट– आपकी दीक्षा–१०.०८.२०१३ को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा अतिशय क्षेत्र रामटेक में हुई, "अपनी बात" दीक्षा के पूर्व लिखा गया है।

शुभाशंसा

श्रीआचार्यभावसेनत्रिविद्य मुनिराज ने **"कलाप–व्याकरण"** पर **"कातन्त्र–रूपमाला"** की रचना की है। इसके कर्त्ता शब्दागम, तर्कागम, न्यायशास्त्र और परमागम–सिद्धान्त इन तीन विद्याओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अतः उन्हें त्रैविद्य की उपाधि से अलंकृत किया गया है। **"कातन्त्र रूपमाला"** सरल व सुबोध व्याकरण है।

कातन्त्र का अर्थ लघुता से है। अर्थात् **"कु अर्थात् ईषत् व्याकरणम् कातन्त्रम्"। "का त्वीषदर्थे क्षे"** (४६५) सूत्र द्वारा **"कु"** के स्थान पर **"का"** आदेश हुआ है। यहाँ पर कु का अर्थ संक्षिप्त होता है यानि **"ईषद् जलं काजलं"** थोड़ा पानी। स्पष्ट है कि किसी बड़े ग्रन्थ का संक्षेप होने के कारण इसका नाम कातन्त्र पड़ा।

रचनाकार ने इसे पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रूप दो भागों में विभाजित किया है। पूर्वार्द्ध भाग में सन्धि, लिंग, अव्यय, कारक, समास एवं तद्धित आदि के प्रकरण हैं। उत्तरार्द्ध भाग में तिङन्त एवं कृदन्त के प्रकरण लिये गये हैं।

मेधावी छात्र **"बाल ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री पीयूष"** जी ने अथक परिश्रम करके **"कातन्त्र–रूपमाला"** के दोनों भागों की सरल भाषा में हिन्दी टीका की है। इन्होंने आद्य कथन में जैनेन्द्र व्याकरण, पाणिनीय व्याकरण तथा कातन्त्र–रूपमाला की तुलनात्मक समीक्षा की है।

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि **"बाल ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री पीयूष"** जी ने अपनी मेधा बुद्धि को ग्रन्थ रचना, टीकाकरण, सम्पादन तथा प्रकाशन के योग्य विकसित किया है।

व्याख्या की शैली सुबोध और सरल है। सरल करने का भी एक कारण है कि व्याकरण में यदि प्रवेश चाहते हैं, तो पंचसन्धि को, लिंग प्रकरण को तथा धातुओं को समझना अत्यन्त आवश्यक है। आपके द्वारा **"जैनेन्द्र महावृत्ति"** का हिन्दी अनुवाद किया है तथा आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी रचित जैनेन्द्र महावृत्ति महाव्याकरण का आधार लेकर **"जैनेन्द्र सिद्धान्तवृत्ति"** का सृजन किया जा रहा है।

आपका अधिक से अधिक समय लेखन, पठन और पाठन में ही व्यतीत होता है। इन्होंने अभी तक लगभग १५० जैन ग्रन्थों का सम्पादन कर उन्हें सरल व सुबोध भाषा में प्रकाशित किया है। जो जन सामान्य के लिए सरल व ग्राह्य हैं। उनके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि इनके द्वारा जिनागम के अन्य ग्रन्थ भी सम्पादित, अनुवादित व प्रकाशित होते रहेंगे। इनके कार्यों के प्रति मेरी शुभाशंसा है। मुझे ऐसा विश्वास है कि संस्कृत व्याकरण सीखने वाले जिज्ञासुओं के लिये उनकी यह कृति अत्यन्त उपयोगी रहेगी।

पूर्वार्द्ध से साभार

साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन, सागर

(सम्प्रति पं. साहब की स्मृति शेष है)

भूमिका

प्राकृत भाषा की तरह संस्कृत भाषा भी एक अत्यन्त प्राचीन भाषा है। विश्वभर की समस्त भाषाओं में प्राकृत और संस्कृत का उच्च स्थान है। जैनदर्शन के समस्त प्राचीन ग्रन्थ इसी प्राकृत भाषा में देदीप्यमान हैं। संस्कृत भाषा में सर्वप्रथम सूत्र रूप में दिगम्बर जैन **"आचार्य श्री उमास्वामी जी महाराज"** द्वारा तत्त्वार्थ–सूत्र अपरनाम मोक्षशास्त्र का प्रणयन किया गया। जिस पर आचार्य श्री अकलंकदेव, आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी आदि अनेक आचार्यों ने विस्तृत संस्कृत टीका की है।

प्राकृत और संस्कृत भाषा का विशाल साहित्य अमूल्य ग्रन्थ–रत्नों का सागर है। कोई भी विषय इन भाषाओं से छूट नहीं पाया, सभी विषयों पर ग्रन्थ इसमें लिखे गये हैं। इतना समृद्ध साहित्य किसी भी अन्य प्राचीन भाषा का नहीं है। न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा इसके समान अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पायी है। प्राकृत और संस्कृत का शब्द भण्डार अटूट है।

संस्कृत व्याकरण – किसी भी भाषा की सुरक्षा एवं उसके मौलिक ज्ञान के निमित्त व्याकरण की परम आवश्यकता है। बिना व्याकरण के भाषा प्रायः विश्रृंखल और अधूरी रहती है।

आचार्य शर्ववर्मन् विरचित **"कलाप–व्याकरण"** की भावसेन त्रैविद्यकृता टीका **"कातन्त्र–रूपमाला"** अत्यन्त प्राचीन व्याकरण है। सुबोध और सरल भाषा में प्ररूपित इस व्याकरण का अधिक प्रचार नहीं हो पाया। स्कूली पाठ्यक्रम में पाणिनिकृत व्याकरण होने से ही इसे प्राचीन व्याकरण समझा जाता है। परन्तु स्वयं पाणिनी ने भी अपने व्याकरण में दस पूर्व व्याकरणाचार्यों को स्मरण किया है। यथा –

१. **आपिशलि** ÷ वा सुप्यापिशलेः ६।१।६२।।
२. **काश्यप** ÷ तृषिमृषिकृषेः काश्यपस्य १।२।२५।।
३. **गार्ग्य** ÷ ओतो गार्ग्यस्य ८।३।२०।।
४. **चाक्रवर्मण** ÷ ई चाक्रवर्मणस्य ६।१।१३०।।
५. **गालव** ÷ तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य ७।१।४७।।
६. **भारद्वाज** ÷ ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६२।।
७. **शाकटायन** ÷ लङः शाकटायनस्य ३।४।१११।।
८. **शाकल्य** ÷ सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६।।
९. **सेनक** ÷ गिरेश्च सेनकस्य ५।४।११२।।
१०. **स्फोटायन** ÷ अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३।।

तात्पर्य यह है कि संस्कृत भाषा में व्याकरण का प्रचलन बहुत प्राचीन काल से है।

शर्ववर्मकृत व्याकरण ÷

यह व्याकरण समस्त व्याकरणों में श्रेष्ठ, सरल और सर्वांगपूर्ण है। इसमें प्रत्याहार सम्बन्धी कोई परेशानी महसूस नहीं होती। इसके इतिहास सम्बन्धी प्रामाणिकता नीरज जैन (खातेगाँव) के लघु शोध प्रबन्ध के अवलोकन से मिल जायेगी।

शर्ववर्मकृत व्याकरण की मूलभूत– **"कलाप–व्याकरण"** है। इसमें चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सन्धि के माध्यम से पांच पद हैं। प्रथमपाद में – सञ्ज्ञाएँ, द्वितीयपाद में – स्वरसन्धि, तृतीय पाद में – प्रकृतिभावसन्धि, चतुर्थपाद में –व्यञ्जनसन्धि और अनुस्वारसन्धि तथा पंचमपाद में –विसर्गसन्धि पर्यन्त ७६ सूत्र निरूपित हैं।

द्वितीय अध्याय में चतुष्टय, कारक, समास और तद्धित के माध्यम से पाद कहे गये हैं। चतुष्टय (लिंग) प्रकरण को तीन पादों के माध्यम से तथा कारकप्रकरण, समासप्रकरण और तद्धितप्रकरण को एक–एक पाद का अवलम्बन लेकर प्रकट किया है। इन चारों प्रकरणों के माध्यम से १ से लेकर ४३४ सूत्र तक कहे गये हैं।

तृतीय अध्याय में आख्यात (धातु) के माध्यम से आठ पाद हैं। जिसमें १ से लेकर ४३६ सूत्र निरूपित हैं।

चतुर्थ अध्याय में कृदन्त प्रकरण के माध्यम से छह पाद हैं। जिसमें १ से लेकर ५४६ सूत्रों का सृजन किया गया है।

इस प्रकार **"कलाप–व्याकरण"** में ७६ + ४३४ + ४३६ + ५४६ = १४९८ सूत्र हैं। इसी व्याकरण को प्रक्रियानुसार सूत्रों को व्यवस्थित कर **"कातन्त्र–रूपमाला"** नाम दिया गया है। जिसको पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध रूप दो खण्डों में विभाजित किया है। प्रथम खण्ड में सन्धि, चतुष्टय (लिंग) कारक, समास और तद्धित प्रकरण निरूपित हैं। तथा द्वितीय खण्ड में आख्यात (धातु) और कृदन्त प्रकरण को संजोया गया है।

सूत्र –

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं, सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च, सूत्रं सूत्रविदो विदुः।।

अर्थात् थोड़े अक्षरों में जहाँ अधिक अर्थ का प्रकाशन हो, सन्देह रहित, सारवान्, व्यापक रूप से प्रभावकारी, खण्डन रहित और श्रद्धेय पदावली को सूत्र कहते हैं। इसके छह भेद हैं – १. सञ्ज्ञासूत्र, २. परिभाषा सूत्र, ३. विधिसूत्र, ४. नियमसूत्र, ५. अतिदेशसूत्र, ६. अधिकारसूत्र।

कातन्त्र–रूपमाला का अध्ययनक्रम –

इस व्याकरण में सञ्ज्ञासन्धि, लिंग, अव्यय, प्रत्यय, कारक, समास, तद्धित, आख्यात (धातु) और कृदन्त प्रकरण रखा है।

सर्वप्रथम वाक्य में अर्थज्ञान के लिए पदच्छेद अपेक्षित होता है, इसके लिये संधि प्रकरण पहले रहना ठीक है। अनन्तर सुबन्त पदज्ञान के लिए लिंग प्रकरण, अव्यय और प्रत्यय प्रकरण का आना भी ठीक है। और कारकों का समास से पूर्व रहना भी जँचता है, क्योंकि विभक्त्यर्थ ज्ञान पर ही समास प्रक्रिया निर्भर है। तत्पश्चात् धातु और कृदन्त का वर्णन ग्रन्थ की पूर्णता को दर्शाता है।

कातन्त्र–रूपमाला की विशेषता –

इसमें **"सिद्धो वर्णसमाम्नायः"** (१) इस प्रथम सूत्र के निरूपण से ही आचार्य शर्ववर्मन् ने अपना अभिप्राय स्पष्ट कर दिया कि वर्णों का समुदाय अनादिकाल से प्रचलित है। न मैं उन शब्दों का कर्त्ता हूँ और न ही अन्य किसी के द्वारा ये शब्द कहे गये हैं।

पाणिनिकृत व्याकरण में "ऌ" को ह्रस्व और प्लुत माना है, दीर्घ नहीं। परन्तु **"कातन्त्र–रूपमाला"** के लेखक द्वारा **"परो दीर्घः"** (७) कह कर दीर्घ भी माना है।

"कातन्त्र–रूपमाला" में **"लोकोपचाराद्ग्रहणसिद्धिः"** (२२) सूत्र के द्वारा यह स्पष्ट किया जा रहा है कि शब्द विन्यास पहले है बाद में व्याकरण। क्योंकि लोक में जिस का, जिस रूप कथन हो, उन सभी को लोक के उपचार से ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् विस्तृतभय से जो प्रयोग नहीं कहे गये हों तो उनका भी लोकोपचार से ग्रहण करना चाहिये।

"कातन्त्र–रूपमाला" में **"स्वरजौ यवकारावनादिस्थौ लोप्यौ व्यञ्जने"** (५६) सूत्र के माध्यम से नारद, रावण, मारुत इत्यादि पदों की सिद्धि की है, इस प्रकार की पद्धति अन्यत्र किसी भी व्याकरण में देखने में नहीं आई। यद्यपि यह सूत्र **"कलाप–व्याकरण"** के सूत्र पाठ या टीका में भी देखने में नहीं आया।

"कातन्त्र–रूपमाला" की टीका में "पन्थि, मन्थि और ऋभुक्षि" शब्दों को इकारान्त मानकर क्रमशः पन्थाः, मन्थाः और ऋभुक्षाः प्रयोग सिद्ध किये हैं। परन्तु पाणिनि ने और शब्दकोशकारों ने इन तीनों शब्दों को नकारान्त पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्द स्वीकार किया है। परन्तु **"पथि च"** (४६७) सूत्र की टीका में स्वयं टीकाकार ने "पथिन्" नकारान्त शब्द का उल्लेख किया है।

"कातन्त्र–रूपमाला" में "सुदिव्" वकारान्त शब्द के द्वितीया विभक्ति के एकवचन में **"वाम्याः"** (३१४) सूत्र द्वारा वकार के स्थान पर विकल्प से आकार आदेश कर **"सुद्यां"** और **"सुदिवं"** ये दो रूप बनाये हैं। किन्तु पाणिनी के द्वारा **"सुदिवं"** एक ही रूप स्वीकार किया गया है।

"कातन्त्र–रूपमाला" में अदस् उपपद अञ्च् धातु के चार प्रयोगों का उल्लेख किया है, जब कि यह विषय मात्र सिद्धान्त कौमुदी में है। लघु सिद्धान्त और मध्यसिद्धान्त कौमुदी में नहीं।

ध्यान रखने योग्य – "कातन्त्र–रूपमाला" में वर्णों को अकार से लेकर हकार तक क्रमशः कहा है। सन्धि प्रकरण में भी अकार आदि के क्रम से प्रयोग सिद्ध किये हैं। परन्तु वर्णों के कथन में य र ल व को अक्रम से रखा है। क्रम – इस प्रकार होना चाहिए। य व र ल। क्योंकि स्वर संधि प्रकरण में इवर्ण के बाद उवर्ण का कथन है। इवर्ण के स्थान पर यकार तथा उवर्ण के स्थान पर वकार होता है। यथा – **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) तथा **"वमुवर्णः"** (४५)। परन्तु व्यञ्जनान्त लिंग प्रकरण में जो क्रम वर्णों का रखा है, उसी क्रम से यकारान्त के बाद रकारान्त शब्दों का प्रयोग किया है। यथा– **"यकारान्तो प्रसिद्धः। रेफान्तः पुल्लिंगश्चत्वार् शब्दः"** (सूत्र नं. ३०८ की टीका)। वर्णों को जिस क्रम से रखा है, उसी क्रम से सूत्रगत दर्शाया गया है। यथा– **"अन्तःस्था यरलवाः"** (१६)।

सूत्रगत अक्रम यथा – "वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वरयवरपरश्छकारं न वा" (७१) तथा **"यवलेषु वा"** (६४)। क्रम लकार के वाद वकार का है, परन्तु सूत्र में लकार के पूर्व वकार का उल्लेख किया है।

"कातन्त्र–रूपमाला" में उल्लेखित सञ्ज्ञाएँ –

व्याकरण की गति के लिये सञ्ज्ञाओं की जानकारी आवश्यक है। अतः प्रत्येक व्याकरणेच्छुक को सञ्ज्ञाएँ कण्ठस्थ कर लेना चाहिये।

सञ्ज्ञा सूत्र

१. वर्ण	÷	सिद्धो वर्णसमाम्नायः।।१।।
२. स्वर	÷	तत्र चतुर्दशादौ स्वराः।।२।।
३. समान	÷	दश समानाः।।३।।
४. सवर्ण	÷	तेषां द्वौ द्वावन्यो न्यस्य सवर्णौ।।४।।
५. सवर्ण	÷	ऋकारऌकारौ च।।५।।
६. ह्रस्व	÷	पूर्वो ह्रस्वः।।६।।
७. दीर्घ	÷	परो दीर्घः।।७।।
८. नामि	÷	स्वरो वर्णवर्जो नामि।।८।।
९. सन्ध्यक्षर	÷	एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि।।९।।
१०. व्यञ्जन	÷	कादीनि व्यञ्जनानि।।११।।
११. वर्ग	÷	ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च।।१२।।
१२. अघोष	÷	वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः।।१३।।
१३. घोष	÷	घोषवन्तो न्ये।।१४।।
१४. अनुनासिक	÷	अनुनासिका ङञणनमाः।।१५।।

१५. अन्तःस्थ	÷	अन्तःस्था यरलवाः।।१६।।
१६. ऊष्माण	÷	ऊष्माणः शषसहाः।।१७।।
१७. विसर्जनीय	÷	अः इति विसर्जनीयः।।१८।।
१८. जिह्वामूलीय	÷	क इति जिह्वामूलीयः।।१६।।
१६. उपध्मानीय	÷	प इत्युपध्मानीयः।।२०।।
२०. अनुस्वार	÷	अं इत्यनुस्वारः।।२१।।
२१. धुट्	÷	व्यञ्जनमनन्तस्थानुनासिकम्।।७५।।
२२. उपधा	÷	अन्त्यात्पूर्व उपधा।।७६।।
२३. लिंग	÷	धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्।।१२५।।
२४. आमन्त्रण	÷	आमन्त्रणे च।।१३२।।
२५. सम्बुद्धि	÷	आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः।।१३३।।
२६. पद	÷	पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् ।।१५१।।
२७. सर्वनाम	÷	
२८. घुट्	÷	पञ्चादौ घुट्।।१५६।।
२८. घुट्	÷	जस्शसौ नपुंसके।।२३८।।
२६. अग्नि	÷	इदुदग्निः।।१६१।।
३०. श्रद्धा	÷	आ श्रद्धा।।२०६।।
३१. नदी	÷	ह्रस्वश्च ङवति।।२२१।।
३१. नदी	÷	ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी।।२२६।।
३१. नदी	÷	स्त्र्याख्यावियुवौ वामि।।२३३।।

इस प्रकार **"कातन्त्र–रूपमाला"** के पञ्च–सन्धि प्रकरण में २२ सञ्ज्ञाओं का तथा स्वरान्त पुल्लिंग प्रकरण में ६ सञ्ज्ञाओं का अर्थात् दोनों प्रकरण मे ३१ संज्ञाओं का उल्लेख किया है।

व्याकरण और उसका महत्व –

प्रत्येक वस्तु की निर्धारित मर्यादा होती है और उस मर्यादा के अन्दर रहने में ही वस्तु की शोभा निखरती है। जबकि मर्यादा अतिक्रमण किसी भी स्थिति में कल्याणकारी नहीं होता। सीमोल्लंघन सदैव अनर्थकारी ही होता है। यही नियम भाषा के साथ भी लागू होता है। भाषा को मर्यादा के अन्दर रखने के लिए नियन्त्रण आवश्यक है और इस कार्य के लिए जो नियमावली बनाई जाती है उसे ही व्याकरण कहते हैं। अनुशासन के बिना व्यवस्था के विश्रृंखल हो जाने का भय बना रहता है। भाषा के साथ भी यही बात है। भाषा को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए उसका अनुशासन आवश्यक है। इसीलिए व्याकरण को शब्दानुशासन भी कहा जाता है।

व्याकरण या शब्दानुशासन के द्वारा ही साधुशब्द का ज्ञान होता है। व्याकरण एवं शब्दानुशासन शब्दों की निम्न व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये शब्द – सिद्धि के साधन हैं।

"व्याक्रियन्ते = व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्"

इसी प्रकार – **"अनुशिष्यन्ते शब्दा अनेनेति शब्दानुशासनम्।"** उपर्युक्त विवरण से व्याकरण या शब्दानुशासन की महत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

संस्कृतवाङ्मय में व्याकरण का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः व्याकरण ज्ञान के बिना दिगम्बराचार्यों के ग्रन्थों का तथा संस्कृत साहित्य, स्मृति, पुराण, काव्य आदि किसी भी शास्त्रान्तर में प्रवेश नहीं हो सकता।

इसीलिए भाषागत शिष्ट शब्दों के परिज्ञान के लिए व्याकरण का आविर्भाव हुआ है। व्याकरण का ध्येय इष्ट–अन्वय–आख्यान एवं अनिष्ट–निवृत्ति ही है। शब्द साधुत्व ज्ञान इसका अन्यतम लक्ष्य है। साधु शब्द का ज्ञान न होने से भयंकर अनर्थ की सम्भावना रहती है। व्याकरण–ज्ञान के बिना शब्दों का उचित प्रयोग नहीं हो सकता और शब्दों का उचित प्रयोग न होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जरा सी उच्चारण सम्बन्धी भूल से कभी–कभी स्वजन (सम्बन्धी) श्वजन (कुत्ता) सकल (सम्पूर्ण) शकल (खण्ड) और सकृत् (एक बार) शकृत् (विष्ठा) बन जाता है। निम्नरोचक श्लोक में इसी ओर संकेत किया गया है –

यद्यपि बहु नाधीषे, तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलः शकलः सकृच्छकृत्।।

संस्कृत व्याकरण की परम्परा अतिप्राचीन है। कुछैक प्रसंगों को छोड़कर प्रायः एक सी प्रयोग सिद्धि होती है। इसलिए व्याकरण का महत्व निर्विवाद है।

"कातन्त्र–रूपमाला" का अपर नाम **"कौमार"** व्याकरण भी है जैसा कि कहा है –

तेन ब्राह्म्यै कुमार्यै च, कथितं पाठहेतवे।
कालापकं तत्कौमारं, नाम्ना शब्दानुशासनम् ।।४।।

लघुत्रिमुनिकल्पतरुकार ने नौ व्याकरणों का उल्लेख किया है –

"ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं, कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं, शाकलं पाणिनीयम्।।" एक अक्षर कम है।

अर्थात् लघुत्रिमुनिकल्पतरुकार के क्रमानुसार कथन से कौमार (कातन्त्र–व्याकरण) पाणिनीय व्याकरण से पूर्ववर्ती व्याकरण है।

भास्कराचार्य ने आठ व्याकरणों का उल्लेख किया है – वैयाकरणों की गणना करते हुए वोपदेव ने भी अपने **"कविकल्पद्रुम"** में आठ वैयाकरणों का उल्लेख किया है –

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्ना पिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिका।।

जैनेन्द्र अर्थात् **दिगम्बर आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी** विरचित **"जैनेन्द्र व्याकरण"** है। जिस में लगभग पौने चार हजार (३७५०) सूत्र हैं। जिसकी विस्तृत संस्कृत टीका **आचार्य श्रीअभयनन्दि जी महाराज** ने जैनेन्द्र महावृत्ति (८वीं शती) में की है। तथा जैनेन्द्र व्याकरण पर अनेक टीकाएँ लिखि गई हैं। यथा – **१. श्रुतकीर्तिकृत – पंच.......प्रक्रिया (१३वीं शती), २. प्रभाचन्द्रकृत – शब्दाम्भोजभास्कर (११वीं शती), ३. नेमिचन्द्रकृत – प्रक्रियावतार, ४. महाचन्द्रकृत – शब्दार्णव। शब्दार्णव के ऊपर शब्दार्णव चन्द्रिका (सोमदेव मुनिकृत–शक सं. ११२७) तथा शब्दार्णव प्रक्रिया** इत्यादि अनेक व्याकरणों का सृजन हुआ है। हिन्दी टीका मात्र **"जैनेन्द्र महावृत्ति"** की हुई है (मेरे द्वारा) जो कि प्रकाशकाधीन है।

इस प्रकार कौमार (कातन्त्र–रूपमाला) तथा जैनेन्द्र आदि अनेक व्याकरणों का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने **"संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास"** नामक ग्रन्थ में ८० वैयाकरणों का उल्लेख किया है।

संस्कृत भाषा पालि आदि सैकड़ों भाषाओं की जननी रही है। आज की सभी प्रचलित भाषाएँ संस्कृत का आश्रय लेकर खड़ी हैं। सम्प्रति भी संस्कृत में निरन्तर रचनाएँ हो रही हैं। अनेक स्वदेशी–विदेशी विद्वान् एवं छात्र संस्कृत का अध्ययन कर इसकी साहित्यिक श्रीवृद्धि में संलग्न हैं। संस्कृत को प्रशासकीय पोषण भी अधिकाधिक रूप में मिल ही रहा है।

पुरातन आचार्यों की तरह ही **आचार्य श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज (आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के गुरु)** ने वीरोदय, जयोदय, दयोदय इत्यादि संस्कृत काव्य ग्रन्थों की रचना की है। जिन पर अनेक शोधार्थी छात्र पी.एच.डी. कर डॉक्टर ऑफ फिलोसॉफी की उपाधि से सुशोभित हुये हैं। इसी श्रृंखला में **आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज** द्वारा छह संस्कृत शतक और एक चम्पूकाव्य का प्रणयन किया गया है। शतकों के ऊपर अनेन पी.एच.डी. भी हो चुकी हैं।

व्याकरण के सन्दर्भ में ÷

संस्कृत भाषा अमृत है, जो दूसरों के लिए सञ्जीवनी है। सम्पूर्ण विश्व के लिए साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रत्नाकर है तो यह भारत के लिए इसकी अपनी राष्ट्रीय धरोहर भी है।

प्रत्येक भारतीय को विदित हो कि संस्कृत भाषा ही भारतीय संस्कृति का दर्पण है जिसमें पुरातनकाल से लेकर अब तक की भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब सहज ही देखा जा सकता है। संस्कृत ही भारत की आत्मा है। यही भारत का कलेवर भी है और प्राण भी। संस्कृत ही भारत की प्रज्ञा है। इसीलिए संस्कृत हमारे लिए सदैव संरक्षणीय है क्योंकि संस्कृत ही हमारी प्रतिष्ठा है –

"भारस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतिश्चापि संस्कृतम्।"

शब्द की उत्पत्ति संज्ञा से और धातु से होती है। संज्ञा से शब्द की उत्पत्ति, तद्धित से होती है तथा धातु से शब्द की उत्पत्ति, कृदन्त द्वारा होती है।

गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से कातन्त्र–रूपमाला का हिन्दी अनुवाद कर उसे चार भागों में प्रकाशित किया गया। पूर्वार्द्ध भाग को पूर्व में पंचसंधि के रूप में प्रकाशित किया था। सम्प्रति लिंग–प्रकरण को संशोधित एवं संवर्धित कर प्रकाशित किया जा रहा है। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज और पंडित जी के मुखारविन्द से जितना ग्रहण किया उतना तो व्यक्त नहीं कर पाया, फिर भी कोशिश अपनी क्षमतानुसार पूरी की है। फिर भी कहीं व्याख्या करने में प्रमाद हो गया हो तो विद्वज्जन मुझे दिशा बोध दें।

कातन्त्र–रूपमाला के अनुवाद के लिये शनैः शनैः जिनका निर्देशन मुझे मिलता रहा, उनका मैं अन्तःकरण से ऋणी हूँ और ऋणी हूँ अपने **विद्यागुरु पंडित श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य,** सागर का जिनका दिशाबोध प्रत्यक्ष–परोक्ष मुझे सदैव मिलता रहा।

कातन्त्र–रूपमाला की विस्तृत टीका पूर्व में आप सबको प्राप्त हो चुकी है। नये परिवेश में **"पञ्च–सन्धि"** की विस्तृत व्याख्या जैनैन्द्र–महावृत्ति तथा पाणिनिकृत व्याकरण के सूत्र को समानान्तर रख, प्रस्तुत किया गया। सम्प्रति लिंग–प्रकरण को संशोधित एवं संवर्धित कर प्रकाशित किया जा रहा है, जो व्याकरण सीखने वालो के लिये यह व्याख्या अत्युपयोगी होगी।

"लिंग–प्रकरण" का प्रकाशन, आचार्य श्री के **"पचासवें स्वर्ण संयमपदारोहण** वर्ष २०१७–२०१८ के पावन प्रसंग पर, उनके श्रीकर कमलों में सादर–सविनय सिद्ध–श्रुत–आचार्य भक्ति के साथ समर्पित है।

प्रस्तुत कातन्त्र–रूपमाला लिंग–प्रकरण का अनुवाद अपनी क्षमतानुसार किया है। फिर भी **"को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे"** के न्याय से अनुवाद करने में कहीं प्रमाद हो गया हो तो विलक्षणजन मुझे दिशाबोध दे।

६१०, संजीवनी नगर, गढ़ा, जबलपुर (म.प्र.)

ब्र. प्रदीप शास्त्री "पीयूष"

०६४२४६–१४१४६, ०६८२६१–४४६५४ (म.प्र)

०६६३४८–६६०६१ (उ.प्र.), ०६८२६६–४५५३५ (राज.), ०६५६०४–६८५४७ (दिल्ली)

भाषा का महत्त्व

भाषा मानवमात्र के भावों और विचारों के पारस्परिक आदान–प्रदान का सर्वोत्तम साधन है। भाषा के माध्यम से ही वह अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है और दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। यदि संसार में भाषा जैसी कोई वस्तु न होती तो संसार का काम नहीं चल सकता था। अत एव दण्डी का कथन मुख्य है कि **"वाणी के बिना संसार का काम नहीं चल सकता है। यदि शब्द नामक ज्योति संसार को प्रकाशित न करती तो यह सारा संसार अविद्या के अन्धकार से व्याप्त हो जाता"।**

भाषा शब्द भाष् (भाष व्यक्तायां वाचि– स्पष्ट बोलना) धातु से बना है। भाषा का अर्थ है व्यक्त वाणी अर्थात् जिसमें वर्णों का स्पष्ट उच्चारण होता है।

व्याकरण शब्द वि और आ उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से यु (अन) प्रत्यय से बनता है। **"व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते प्रकृतिप्रत्ययादयो यत्र तद् व्याकरणम्"** जिसमें शब्दों के प्रकृति (मूल शब्द या धातु) और प्रत्ययों आदि का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरण कहते हैं।

व्याकरण का उद्देश्य है – साधु या शिष्ट–प्रयोगोचित शब्दों का ज्ञान कराना, असाधु शब्दों का निराकरण, भाषा के स्वरूप पर नियन्त्रण रखना और प्रकृति–प्रत्यय के बोध द्वारा शब्दों के वास्तविक रूप का स्पष्टीकरण। पतंजलि ने व्याकरण के मुख्य रूप से पांच उद्देश्य बताऐं हैं।–

१. रक्षा, २. ऊह (तर्क), ३. आगम, ४. लघु और ५. असन्देह।

जो व्याकरण को नहीं जानता और अनभिज्ञ है, वह वाक् तत्त्व को देखते हुए भी नहीं देखता है और उसे सुनते हुए भी नहीं सुनता है। परन्तु जो वाक् तत्त्व को जानता है और शब्दवित् है, उसके लिये वाणी अपने स्वरूप को इसी प्रकार प्रकट करती है, जैसे स्त्री अपने स्वरूप को अपने पति के लिए।

आचार्य श्री शर्ववर्मकृत **"कातन्त्र–रूपमाला"** का हिन्दी अनुवाद ब्र. प्रदीप जी पीयूष द्वारा भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के लिये ही किया गया है। सामान्यतया व्याकरण का इच्छुक यदि इस अनुवाद का आधार लेकर पठन करता है, तो वह अवश्य ही भाषा को हृदयंगत कर, जैनागम के रहस्य को प्रस्फुटित कर सकता है।

प्रस्तुत कातन्त्र–रूपमाला लिंग–प्रकरण का प्रकाशन हो रहा है। यह अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है। हम भी इस व्याकरण के हृदय को समझ सकें यही प्रार्थना वीर प्रभु से करते हैं।

पं. कोमल प्रसाद शास्त्री
५. ई २३, तलवण्ड़ी, कोटा (राज.)
०७४४–२४०६५३५३, ०६४१४४–८८६६१

दो शब्द

संस्कृत भाषा या व्याकरण को समझने के लिए, व्याकरणज्ञाचार्यों ने निम्न छह अधिकारों का वर्णन किया है। यथा – संधि, लिंग, समास, तद्धित, धातु और कृदन्त।

सन्धि की परिभाषा वादिपर्वतवज्र श्रीमद्भावसेनत्रैविद्य कातन्त्र–रूपमाला की संस्कृत टीका में निम्न प्रकार करते हैं। यथा – **"पूर्वोत्तर वर्णानामव्यवधानेन परस्परेण सन्धानं संश्लेषः सन्धिः।"**

अर्थात् पूर्व + उत्तर वर्णों को बिना व्यवधान (वाधा रहित) के जोड़ देने को (मिला देने को) सन्धि कहते हैं। जिसका विभाग पंच सन्धि के रूप में किया जाता है। यथा – १. स्वरसन्धि, २. प्रकृतिभावसन्धि, ३. व्यञ्जनसन्धि, ४. विसर्गसन्धि, ५. स्यादिसन्धि।

लिंग की परिभाषा आचाय श्री सर्ववर्मन् जी महाराज निम्न सूत्र के माध्यम से कहते हैं–

"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम् ।।१२५।।"

अर्थात् – धातु और विभक्ति से रहित अर्थवत् शब्दरूप की लिंग सञ्ज्ञा होती है।

लिंग (संज्ञा) को दो भागों में विभाजित किया है। १. स्वरान्त और २. व्यञ्जनान्त। स्वरान्त और व्यञ्जनान्त को भी तीन–तीन भागों में विभाजित किया है। यथा – १. स्वरान्त पुल्लिंग, २. स्वरान्त स्त्रीलिंग और ३. स्वरान्त नपुंसकलिंग।

अ से लेकर औ तक चौदह स्वर कहलाते हैं। यथा – **"तत्र चतुर्दशादौ स्वराः"** (२)। तथा क से लेकर ह तक तैतीस व्यञ्जन होते हैं। यथा – **"कादीनि व्यञ्जनानि"** (११)।

कातन्त्र–रूपमाला ग्रन्थ को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध रूप में विभाजित किया गया है। पूर्वार्द्ध में सन्धि, लिंग, समास और तद्धित विषय का प्ररूपण किया है। तथा उत्तरार्द्ध में धातु तथा कृदन्त का कथन किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में श्रद्धेय ब्र. भैया प्रदीप जी पीयूष ने स्वरान्त–पुल्लिंग, स्वरान्त–स्त्रीलिंग तथा स्वरान्त–नपुंसकलिंग की विस्तृत व्याख्या की है। एक–एक प्रयोग को सूक्ष्मतर दर्शाने से पाठकगण यदि थोड़ी मेहनत करें तो वे स्वतः ही इस अनुवाद के द्वारा अध्ययन कर सकते हैं। तथा करा सकते हैं।

इस ग्रन्थ के अनुवाद के पूर्व ब्र. पीयूष जी द्वारा पंचसन्धि का विस्तृत अनुवाद कर, प्रकाशित कराकर व्याकरण के पाठकगणों को एक सुलभ उपहार समर्पित किया है। इसी क्रम में पूर्वार्द्ध के द्वितीय भाग के रूप में "स्वरान्त–लिंग प्रकरण" को "सन्तशिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के स्वर्ण संयममहोत्सववर्ष के पावन प्रसंग पर प्रकाशित किया जा रहा है।

एतदर्थ इस ग्रन्थ का गौरव स्वतः ही वृद्धि को प्राप्त होता है।

मैं ब्र. भैया पीयूष जी से अत्यधिक अपेक्षा रखता हूँ कि वे शीघ्र ही "स्वरान्त–व्यञ्जान्त प्रकरण को भी प्रकाशित करा कर समस्त पाठक गणों को उपलब्ध करायें। इसी पुनीत भावना के साथ ब्र. भैया जी को सादर वन्दना........।

पं. सुमत प्रकाश जैन (चीफ. ईन्जी.रि.)
१–६३६ विद्याधर नगर, द्वारका स्वीट के पास
जयपुर (राज.) ०६४१३३००६१०

प्रथम पठनीय

सि, औ, जस् इत्यादि विभक्तियों का जहाँ प्रयोग होता है, उसे लिङ्ग प्रकरण कहते हैं। अन्य व्याकरण में सुप् है, अतः वहाँ सुबन्त कहते हैं। अर्थात् सि आदि विभक्तियाँ, सञ्ज्ञा, सर्वनाम और विशेषण के अन्त में लगती हैं।

ध्यान रहे कि संस्कृत भाषा में सञ्ज्ञा या सर्वनाम आदि का प्रयोग बिना सि, औ, जस् इत्यादि विभक्तियों के नहीं हो सकता। विशेषण के रूप भी विशेष्य के अनुसार चलते हैं।

जिस मूल शब्द के पश्चात् सि आदि विभक्तियाँ जोड़कर रूप चलते हैं, उसे ही "कातन्त्र–रूपमाला में लिङ्ग कहते हैं। जैसे – पुरुष, मुनि, साधु इत्यादि।

प्रत्येक लिङ्ग के अनुसार तीन वचनों और सात विभक्तियों में रूप चलते हैं। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का ही प्रयोग होता है। संख्यावाचक विशेषणों के रूप तीनों वचनों में न चलकर उस संख्या–विशेष के वचन के ही अनुसार चलते हैं।

लिङ्ग – संस्कृत में तीन लिङ्ग होते हैं। पुल्लिंग (मैस्कुलिन), स्त्रीलिंग (फेमिनिन) और नपुंसकलिंग (न्यूटर)। संस्कृत का लिंग भेद वास्तविक (फैक्चुअल) न हो कर "रूढिगत" या "फार्मल" है। उदाहरण के लिए शरीर–वाचक "देह" पुल्लिंग, "तनु" स्त्रीलिंग और स्वतः "शरीर" नपुंसक लिंग है। इसी प्रकार स्त्री–वाचक "दार" पुल्लिंग (बहुवचनान्त), "भार्या" स्त्रीलिंग और "कलत्र" नपुंसक लिंग है।

वचन – संस्कृत में तीन वचन होते हैं। एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। एक वस्तु का बोध कराने के लिए एकवचन, दो वस्तुओं का बोध कराने के लिए द्विवचन और दो से अधिक वस्तुओं का बोध ा कराने के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है।

विभक्तियाँ – क्रिया की सिद्धि में जो सहायक होता है, उसे विभक्ति कहते हैं। ये विभक्तियाँ सात होती हैं। यथा – १. कर्ता, २. कर्म, ३. करण, ४. सम्प्रदान, ५. अपादान, ६. स्वामी (सम्बन्ध) और अधि ाकरण। इसके अतिरिक्त एक सम्बुद्धि (सम्बोधन) भी होती है। जिसमें प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है।

कर्ता – कार्य को करने वाले को कर्ता कहते हैं। जैसे – "महेश पूजा करता है। यहाँ पूजा का कार्य करने वाला महेश कर्ता है। अतः महेश में प्रथमा विभक्ति लगेगी। यथा – महेशः पूजयति।

कर्म – कर्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिसे विशेष रूप से प्राप्त करना चाहता है, उसे "कर्म" कहते हैं। अथवा जिस पुरुष या वस्तु के ऊपर किसी क्रिया का फल या सीधा प्रभाव पढ़ता है, वह उस क्रिया का कर्म होता है। जैसे – "महेश आम खाता है। यहाँ "आम" कर्म है। अतः "आम" में द्वितीया विभक्ति लगेगी। यथा – महेशः आम्रं खादति।

करण – जिसके द्वारा क्रिया की जावे या जिस साधन से कार्य का सम्पादन हो, उसे "करण" कहते हैं। जैसे – "महेश पुस्तक से पढ़ता है। यहाँ पढ़ने की क्रिया पुस्तक के द्वारा होती है, अत एव "पुस्तक" करण कारक है। अतः पुस्तक में तृतीया विभक्ति लगेगी। यथा – महेशः पुस्तकेन पठति।

सम्प्रदान – जिसको कोई वस्तु दी जावे या क्रिया के द्वारा जिसके अभिप्राय को भली प्रकार सिद्ध किया जावे, उसे "सम्प्रदान" कहते हैं। जैसे – "महेश मुनि के लिए (को) फल देता है। यहाँ मुनि

को फल दिया जाता है, अतः "मुनि" सम्प्रदान – कारक है। अतः मुनि में चतुर्थी विभक्ति लगेगी। यथा – महेशः मुनये फलं ददाति।

अपादान – जिस स्थान या वस्तु से कोई दूसरी वस्तु अलग (पृथक्) होती है, उस स्थान या वस्तु को "अपादान" कहते हैं। जैसे – "महेश ग्राम से आता है। यहाँ किसी व्यक्ति–विशेष का ग्राम–विशेष से पृथक् होता है। अतः "ग्राम" अपादान–कारक है। अतः ग्राम में पंचमी विभक्ति लगेगी। यथा – महेशः ग्रामात् आगच्छति।

स्वामी (सम्बन्ध) – दो वस्तुओं के सम्बन्ध को प्रकट करने को स्वामी या सम्बन्ध कहते हैं। स्वामी दो वस्तुओं के सम्बन्ध को प्रकट करता है। जैसे – यह पुस्तक महेश की है। यहाँ पुस्तक का सम्बन्ध महेश से है, अतः "महेश" स्वामी (सम्बन्ध) कारक है। अतः महेश में षष्ठी विभक्ति लगेगी। यथा – महेशस्य इदं पुस्तकं अस्ति।

अधिकरण – जिस स्थान पर कोई कार्य होता है या जिस शब्द से आधार का बोध होता है, उसे अधिकरण कहते हैं। जैसे – महेश चटाई पर बैठता है। यहाँ बैठना क्रिया का आधार चटाई हैं, अतः "चटाई" अधिकरण कारक है। अतः "चटाई" (कट) में सप्तमी विभक्ति लगेगी। यथा – महेशः कटे तिष्ठति।

सम्बुद्धि (सम्बोधन) – सम्बुद्धि का प्रयोग किसी को पुकारने के लिए होता है। अतः पुकारने के लिए सम्बुद्धि का प्रयोग होता है। सुम्बुद्धि में प्रथमा विभक्ति का ही प्रयोग होता है। जैसे – हे महेश यहाँ आओ। यहाँ महेश सम्बुद्धि कारक है, अतः "महेश" में प्रथमा विभक्ति लगेगी। यथा – हे महेश अत्र आगच्छतु।

नोट – सम्बुद्धि के एकवचन में विसर्ग का लोप हो जाता है।

यहाँ ध्यान रहे कि कारक और विभक्ति शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। यह आवश्यक नहीं कि कर्ता कारक सदैव प्रथमा विभक्ति में ही हो या कर्म कारक द्वितीया विभक्ति में ही। कर्मवाच्य में तो कर्ता कारक तृतीया विभक्ति में और कर्मकारक प्रथमा विभक्ति में होता है। और भाववाच्य में भी कर्ता तृतीया विभक्ति में ही होता है।

अन्य कुछैक स्थलों पर विशेष नियमों के अनुसार कारक में परिवर्तन हो जाता है।

प्रस्तुत स्वरान्त पुल्लिंग प्रकरण की विस्तृत व्याख्या का प्रकाशन "श्रीदिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति बरेला, जबलपुर" द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत कातन्त्र–रूपमाला लिंग–प्रकरण का प्रकाशन हो रहा है। यह अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है। हम भी इस व्याकरण के हृदय को समझ सकें यही प्रार्थना वीर प्रभु से करते हैं।

पं. महेश चन्द शास्त्री
पुष्प पुंज, ३० सरलाबाग, दयालबाग
आगरा (उ.प्र.) ०६३५६७–६३५०८

सन्धि विषयक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन (सिद्धान्त कौमुदी एवं कातन्त्र–रूपमाला के सन्दर्भ में) विषय पर **नीरज जैन,** खातेगाँव (देवास) म. प्र. ने **डॉ. मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी**–व्याख्याता–संस्कृत विभाग देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर के निर्देशन में एम. ए. संस्कृत उत्तरार्ध व्याकरण समूह के अष्टम प्रश्नपत्र के विकल्प के रूप में वर्ष १९९९ में लिखा गया लघु शोध प्रबन्ध।

कातन्त्र रूपमाला : एक परिचय

(क) कातन्त्र व्याकरण परिचय

"कु ईषत् तन्त्रं कातन्त्रम्" अर्थात् थोड़े से सूत्र जिसमें हैं उसे कातन्त्र कहते हैं। इस कातन्त्र व्याकरण में बहुत ही थोड़े से सूत्रों के द्वारा संस्कृत व्याकरण के सारे ही नियम बना दिये गये हैं, इसलिये कातन्त्र नाम सार्थक है। इस व्याकरण के अन्य नाम **"कलापक व्याकरण"** और **"कौमार"** व्याकरण भी प्रचलित हैं।

कातन्त्र –

कातन्त्रवृत्रि टीकाकार दुर्गासिंह आदि वैयाकरण कातन्त्र शब्द का अर्थ लघुतन्त्र करते हैं। उनके मतानुसार ईषत् लघु अर्थवाची "कु" शब्द को **"का"** आदेश होता है।

कलाप नामकरण का कारण –

"कलाप" शब्द से हस्वार्थक "क" प्रत्यय हो कर "कलापक" शब्द बनता है। कातन्त्र व्याकरण काशकृत्स्न तन्त्र का संक्षेप है।

आचार्य हेमचन्द्र भी अपने धातु परायण में लिखते हैं –

"बृहत्तन्त्रात् कलाः (आ) पिबतीति"। पुनः उणादिवृत्ति में लिखते हैं – **"आदिगृहणात् बृहत्तन्त्रात् कलाः आपिबन्तीति कलापकाः शास्त्राणि"**

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि किसी बड़े ग्रन्थ का संक्षेप होने के कारण कातन्त्र का नाम **"कलापक"** हुआ है।

कौमार –

वैयाकरणों में किंवदन्ती है कि कुमार कार्तिकेय की आज्ञा से शर्ववर्मा ने इस शास्त्र की रचना की है अतः इसे कौमार व्याकरण कहते हैं। युधिष्ठिर मीमांसक संस्कृत व्याकरण का इतिहास लिखते समय कहते हैं कि "हमारा विचार है कि कुमारों अर्थात् बालकों को व्याकरण का साधारण ज्ञान कराने के लिये प्रारम्भ में यह ग्रन्थ पढ़ाया जाता था, अतः इसका नाम कौमार रखा गया।" **"कुमाराणामिदं कौमारम्"।**

लेकिन जैन आचार्य भावसेनत्रैविद्य कातन्त्र की टीका कातन्त्र–रूपमाला में उपर्युक्त मतों का खण्डन करते हुए कहते हैं –

(१) **तेन ब्राह्म्यै कुमार्यै च कथितं पाठहेतवे।**

कालापकं तत्कौमारं नाम्ना शब्दानुशासनम्।।१।।

भावार्थ – स्त्रियों की ६४ कलायें होती हैं और पुरुषों की बहत्तर, इन सभी कलाओं को बतलाने वाले/प्राप्त कराने वाले श्री तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान् हैं। उन ऋषभदेव भगवान् ने ही **"ब्राह्मी"** और **"कुमारी"** को पढ़ाने के लिए इस व्याकरण को कहा है, अत एव यह शब्दानुशासन कालापक और कौमार नाम से भी प्रसिद्ध है।

(२) **तन्न युक्तं यतः केकी, वक्ति प्लुतस्वरानुगम्।**

त्रिमात्रं च शिखी ब्रूयादिति प्रामाणिकोक्तिः ।।२।।

न चात्र मातृकाम्नाये स्वरेषु प्लुतसङ्ग्रहः।

तस्मात् श्रीऋषभादिष्टमित्ये प्रतिपद्यताम्।।३।।

भावार्थ – कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि स्कन्दवाही शिखी की पुच्छ से ये सूत्र निकले हुए हैं, अतः इसे **"कालापक"** कहते हैं। तब आचार्य कहते हैं कि यह बात नहीं है, क्योंकि केकी– मयूर प्लुत स्वर का अनुसरण करते हुए बोलता है। वह प्लुत त्रिमात्रिक है, और वह मयूर त्रिमात्रिक बोलता है, यह बात प्रामाणिक है। किन्तु इस व्याकरण में वर्ण समुदाय में स्वरों में प्लुत का संग्रह नहीं किया है, इसलिये यह व्याकरण श्री ऋषभदेव से ही उत्पन्न हुआ है[1]।

कातन्त्र व्याकरण का रचनाकाल –

कातन्त्र व्याकरण का रचनाकाल अत्यन्त विवादास्पद है। अतः उसके कालनिर्णय में जो प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि – शर्ववर्मा ने सातवाहन नृपति को व्याकरण का बोध कराने के लिये कातन्त्र व्याकरण पढ़ाया था[2]।

यह सातवाहन नृपति आन्ध्रकुल का व्यक्ति है। कई ऐतिहासिक आन्ध्रकुल को विक्रम के पश्चात् जोड़ते हैं, परन्तु यह भूल है। आन्ध्रकुल वस्तुतः विक्रम से पूर्ववर्ती है।

कातन्त्र व्याकरण विशुद्ध लौकिक भाषा का व्याकरण है, और वह भी अत्यन्त संक्षिप्त। व्याकरणकार ऐसा मानते हैं कि यह महाभाष्य से प्राचीन ग्रन्थ है, इसका काल युधिष्ठिर मीमांसक २००० वि. पू. मानते हैं।

कातन्त्र व्याकरण के कर्ता –

गुरुपद हालकार ने अपने "व्याकरण दर्शन इतिहास" में शर्ववर्मा को कातन्त्र की विस्तृत वृत्ति का रचयिता लिखा है[3]।

---

१. कातन्त्र–रूपमाला पृ. क्र. ११२, २. कथासरित्सागर लम्बक १, तरंग ६,७, ३. द्र. पं. भगवदत्त जी कृत भारतवर्ष का इतिहास द्वि. संस्करण, पृ. ४३७

युधिष्ठिर मीमांसक मानते हैं कि वर्तमान कातन्त्र व्याकरण शर्ववर्मा द्वारा संक्षिप्त किया हुआ है। इस संक्षिप्त संस्करण का काल विक्रम से न्यूनातिन्यून ४००–५०० वर्ष प्राचीन है। इसका मूलग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन है[1]।

श्री शर्ववर्मा कातन्त्र के केवल आख्यातान्त भाग के कर्ता सिद्ध होते हैं, क्योंकि–
कातन्त्र वृत्तिकार दुर्गसिंह कृदन्त के आरम्भ में लिखते हैं –

वृक्षादिवदमी रूढाः कृतिना न कृता कृतः।
कात्यायनेन ते सृष्टा विबुद्धि–प्रतिवृद्धये।।

इस व्याकरण की रचना भी इस वाक्य **"मोदकं देहि देवेति"** के अनुसार क्रम से तीन अध्यायों में हुई है।

सन्ध्यादिक्रममादाय, यत्कलापं विनिर्मितम्।
मोदकं देहि देवेति, वचनं तन्निदर्शनम्।।

(कविराज टीका – कलापचन्द्र – मङ्गलाचरणप्रसङ्गे)

कवि राज ने इस वाक्य को **"मोदकं देहि देवेति"** कहा है जबकि सरित्सागर में **"मोदकैर्देव ! परिताडय"** कहा गया है। दोनों का अर्थ एक ही है, और दोनों वाक्यों के पहले सन्धि, फिर नाम और अन्त में क्रिया है, इस क्रम से कातन्त्र व्याकरण रचा गया है।

कुछ लोग इसे (व्याकरण को) एक जैन व्याकरण भी मानते हैं परन्तु पं. अम्बालाल शाह के शब्दों में –"सोमदेव के कथासरित्सागर के अनुसार (कातन्त्रकार) अजैन सिद्ध होते हैं, परन्तु भावसेन ने त्रिविध रत्नमाला में इनको जैन बताया है[2]।"

श्री शर्ववर्मा जैन रहे हों या न रहे हों, लेकिन इस व्याकरण की परिपूर्णता में जैन आचार्यों का भी पूरा योगदान रहा है।

कातन्त्र व्याकरण के कर्ता के बारे में कहीं कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। इतिहासकारों और टीकाकारों के अनुसार वास्तव में तो कातन्त्र व्याकरण अत्यन्त प्राचीन है, और वर्तमान प्रचलित रूप उसका संक्षिप्त रूप है। यह कातन्त्र किसी एक के द्वारा प्रणीत नहीं है, बल्कि इसके तीन भाग हैं, जिनके कर्ता भिन्न–भिन्न हैं।

(१) आख्यातान्त भाग – मूल ग्रन्थकार शर्ववर्म कृत
(२) कृदन्त भाग – वररुचि कात्यायन कृत
(३) छन्दः प्रक्रिया – परिशिष्टकार श्रीमतिदत्त कृत

कातन्त्रकार के बारे में निम्न सूचनायें इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं, जैसे –

(१) "इस व्याकरण के लेखक कथासरित्सागर (कातन्त्रवृत्ति टीकाकार) के अनुसार कोई शर्ववर्मा

---

१. संस्कृत व्याकरण का इतिहास–पृ. ५५८, २. संस्कृत वाङ्मय कोश, ग्रन्थकार खण्ड।

थे, जिसने आख्यातान्त भागों की रचना की और बाद में कृदन्त भागों की रचना किसी कात्यायन ने की। श्रीमतिदत्त ने कातन्त्र परिशिष्ट लिखकर यह व्याकरण पूरा किया।"

कातन्त्र व्याकरण पर टीका या विस्तार ग्रन्थ –

कातन्त्र व्याकरण पर कई टीकायें और वृत्तियाँ लिखी गईं उनका वर्णन निम्नानुसार है –

ग्रन्थकार	**ग्रन्थ**
(१) शर्ववर्मा	**कातन्त्र व्याकरण**
(२) श्रीपतिदत्त	**कातन्त्र परिशिष्ट**
(३) गोपीनाथतर्कचरण	**व्याख्या**
(४) दुर्गसिंह (८–९ वीं शती)	**कातन्त्रवृत्ति, कातन्त्रवृत्ति टीका**
(५) त्रिलोचन दास (११ वीं शती)	**कातन्त्रवृत्तिपंजिका**
(६) श्री गौतम पण्डित	**कलापदीपिका (दुर्गसिंह वृत्ति पर टीका ग्रन्थ)**
(७) वर्धमान (१२ वीं शती)	कातन्त्रविस्तर
(८) जगद्धर	कातन्त्रबालबोधिनी
(९) श्री त्रिविक्रम	उद्योत (कातन्त्रपंजिका की व्याख्या)
(१०) श्री भावसेन	कातन्त्ररूपमाला
(११) दुर्गसिंह	कातन्त्र धातुपाठ
(१२) श्रीमणिकाण्ठभट्टाचार्येण	**त्रिलोचन चन्द्रिका (टीका ग्रन्थ)**
(१३) पुण्डरीकाक्ष विद्यासागर (१५ वीं शती)	**कातन्त्र प्रदीप**
	आख्यात मंजरी (दुर्गसिंह कृत टीका पर टिप्पणी)
(१४) श्री विद्यानन्द	**कातन्त्रोत्तर (दुर्ग टीका पर व्याख्या)**
(१५) श्रीमती समनाम विदुषी	**कातन्त्रवाक्यविस्तर**
(१६) श्री हरिराम	**व्याख्यासार या सन्धि चन्द्रिका**
(१७) श्रीशिवानन्दशर्मा के पुत्र श्री रामदास चक्रवर्ती	**कातन्त्र चन्द्रिका**
(१८) रमानाथ चक्रवर्ती	**मनोरमा व्याख्या**
(१९) दुर्गसिंह	**कातन्त्र चैत्रकुटि वृत्ति**

"इस प्रकार व्याकरण पर अनेक विस्तार और टीका ग्रन्थ लिखे गये हैं। कातन्त्र व्याकरण अत्यन्त सुबोध शैली में लिखे जाने के कारण इसका प्रचार न केवल भारतवर्ष में अपितु विदेशों में भी था। मध्य एशिया में भूखनन से प्राप्त कुबा नामक राज्य का पता लगा है, उसमें जो प्राचीन साहित्य मिला है उससे विदित हुआ है कि उस समय वहाँ बौद्ध धर्म के अनेक मठ थे और उनमें संस्कृत पढ़ाने के लिये कातन्त्र व्याकरण का प्रयोग किया जाता था[१]।"

१. जैनहितैषी अंक ४, वीर निर्वाण संवत् २४४१, में छपा लेख "कातन्त्र व्याकरण का विदेशों में प्रचार" देखें।

इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण तथा "कातन्त्र व्याकरण" का तुलनात्मक अध्ययन करने से अवगत होता है कि पाणिनीय व्याकरण लोक और वेद दोनों का प्रतिपादक होने और प्रत्याहार पद्धति से लिखित होने के कारण दुरूह हो गया है, अतः अवैदिक परम्परा बौद्धों, जैनों तथा विदेशीय सम्प्रदायों में कातन्त्र का अत्यन्त प्रचार–प्रसार हुआ। पाणिनीयेतर व्याकरण वाङ्मय में, कातन्त्र व्याकरण का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है। "काशकृत्स्न के धातुपाठ और उपलब्ध सूत्रों से कातन्त्र धातुपाठ तथा सूत्रों की तुलना से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि कातन्त्र व्याकरण काशकृत्स्नतन्त्र का ही एक संक्षिप्त रूप है[1]।

कातन्त्रकार का परिचय

कातन्त्र व्याकरण के कर्ता भृगुकच्छ (भड़ौच–गुजरात) के निवासी थे। हाल सातवाहन ने अपनी गाथा सप्तशती की पुष्पिका में इन्हें "धी सखा" याने विद्वत्ता के कारण हुआ मित्र कहा है। कहते हैं कि कार्तिकेय की आराधना कर शर्ववर्मा ने सरल व्याकरण प्राप्त किया और हाल सातवाहन को संस्कृत छह माह में सिखा दी। कार्तिकेय के वाहन (भड़ौच) राज्य इन्हें दान में दिया था[2]।

कातन्त्र व्याकरण के प्रणयन के पीछे एक कथा प्रचलित है। यह कथा सरित्सागर से उद्धृत की गई है[3]।

बसंत का समय था। राजा सातवाहन अपनी सुंदर रानियों के साथ राजमहल की वापी (बावड़ी) में जलक्रीड़ा कर रहे थे। एक बार रानी ने बार–बार अपने ऊपर पानी की तेज छींटे पड़ने से परेशान हो कर राजा से कहा – **"मोदकैर्मां ताडय[4]।"** राजा ने इस संस्कृत वाक्य का अर्थ समझा की मुझे मोदकों से मारो, और राजा ने तुरन्त अपने सेवकों को ढेर सारे लड्डू लाने का आदेश दिया। यह सुनकर रानी हँस पड़ी और उन्होंने कहा – हे ! राजन् यहाँ जलक्रीड़ा के समय लड्डुओं का क्या काम ? मैंने तो यह कहा था कि मुझे उदक (जल) से मत मारो। रानी व्याकरण की पंडिता थी, उसने राजा को कहा कि आपको संधि के नियम भी नहीं आते और न ही प्रकरण के अनुसार वाक्य का अर्थ लगाना आता है। राजा को रानी की ये बातें चुभ गयी।

अगले दिन राजा मंत्री शर्ववर्मा से मिले, तब वे अत्यन्त उदास थे। तब मंत्री के द्वारा पूछे जाने पर राजा ने व्याकरण पढ़ने की अत्यन्त तीव्र इच्छा जाहिर की और कहा कि कोई व्यक्ति कितने दिनों में व्याकरण सीख सकता है। तब अन्य मंत्रियों ने कहा कि वैसे तो व्याकरण बारह वर्षों में सीखी जा सकती है परन्तु गुणाढ्य ने कहा कि मैं सिर्फ छह वर्ष में आपको व्याकरण सिखा दूँगा, परन्तु तब शर्ववर्मा ने कहा कि हे राजन् ! मैं आपको केवल छह माह में ही व्याकरण में पारंगत कर दूँगा।

तब स्वामी कुमार की कृपा से प्राप्त **"कातन्त्र व्याकरण"** के सहारे छह महीने में राजा को व्याकरण शास्त्र में पारंगत बना दिया। सारे राष्ट्र में उत्सव मनाया गया और श्री शर्ववर्मा को भृगुकच्छ

१. संस्कृत वाङ्मय कोश, ग्रन्थकार खण्ड। २. वही, ग्रन्थकार खण्ड। ३. कथासरित्सागर लम्बक १, छरंग के १०६ वें श्लोक के सातवें तरंगें ग्यारहवें पद्य तक। प्रणाम लंकार। ४. मोदकैर्मा ताडय : मा = मत, उदकैः = जल से, मां = मुझको, ताडय = मारो।

देश का राजा बना दिया गया।

कातन्त्ररूपमाला का परिचय

कातन्त्र रूपमाला सन् १९२६ में बम्बई से प्रकाशित वादिपर्वतभावसेन के द्वारा प्रणीत ग्रन्थ है। यह एक प्रकरण क्रमानुसारी व्याख्या ग्रन्थ है। इस समय कातन्त्र व्याकरण की मूल प्रति अनुपलब्ध होने से इसमें कुछ सूत्र छूट गये हैं।

ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम वीर को नमस्कार करते हुए बालबोध के लिये इस व्याकरण टीका ग्रन्थ का मङ्गलाचरण किया है –

"वीरं प्रणम्य सर्वज्ञं, विनष्टाशेषदोषकरम्।
कातन्त्ररूपमालेयं, बालबोधाय कथ्यते।।"

यह ग्रन्थ एक प्रक्रियानुसारी प्रणाली में लिखा गया है। इसे दो भाग में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में ५६४ सूत्र हैं तथा उत्तरार्द्ध भाग में लगभग ८०६ सूत्र हैं।

व्याकरण के प्रथम सन्दर्भ में सन्धि, लिंग, अव्यय कारक, समास एवं तद्धित प्रकरण हैं। द्वितीय सन्दर्भ में तिडन्त और कृदन्त प्रकरण हैं।

कातन्त्ररूपमाला के ग्रन्थकार आचार्य भावसेन का परिचय –

कातन्त्र रूपमाला के कर्ता आचार्य भावसेन हैं जो दक्षिणप्रान्तीय थे। जैन आचार्यों में शब्दागम – व्याकरण, तर्कागम – न्याय शास्त्र और परमागम – सिद्धान्त, इन तीन विद्याओं में निपुण आचार्य को त्रैविद्य उपाधि से अलंकृत किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि आचार्य भावसेन इन तीनों विद्याओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इस ग्रन्थ के अन्त में दी हुई प्रशस्ति से स्पष्ट है कि आचार्य भावसेन सेनगण के दिगम्बर आचार्य थे। सेनगण की पट्टावली में भी इनका उल्लेख मिलता है।

"वादिगिरिवज्रदण्ड", "वादिपर्वतवज्र" "वादिगिरिसुरेश्वर" आदि विशेषणों से स्पष्ट है कि ये शास्त्रार्थी विद्वान् थे। **"तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा"** के लेखक स्व. डॉ. नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य आरा ने तृतीय भाग में ऊहापोह कर उनका समय तेरहवीं शताब्दी का मध्य भाग निर्धारित किया है। इनके द्वारा लिखित निम्न ग्रन्थ उपलब्ध हैं[१]।

(१) प्रमाण प्रमेय, (२) कथाविचार, (३) शाकटायन व्याकरण टीका, (४) कातन्त्ररूपमाला, (५) न्यायसूत्रावलि, (६) भक्ति मुक्तिविचार, (७) सिद्धान्तसार, (८) न्यायदीपिका, (९) सप्तपदार्थी टीका, (१०) विश्वतत्त्वप्रकाश।

कातन्त्र रूपमाला के प्रथम सन्दर्भ और द्वितीय सन्दर्भ भागों को निम्न प्रकरणों में विभक्त किया है–

---

१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा तृतीय भाग पृ. २५६–२६४

प्रथम सन्दर्भ

यह इस भाग में निम्न आठ उपविभाग हैं –

(१) सञ्ज्ञा सन्धि – २२ सूत्र और २ श्लोक, (२) सन्धि – १०२ सूत्र और ६ श्लोक, (३) लिङ्ग – २४१ सूत्र और ६ श्लोक, (४) अव्यय – १ सूत्र और १ श्लोक, (५) स्त्रीप्रत्यय – १२ सूत्र और १ श्लोक, (६) कारक – ४० सूत्र और ६ श्लोक, (७) समास – ५३ सूत्र और ६ श्लोक, (८) तद्धित – ६२ सूत्र और ६ श्लोक।

द्वितीय सन्दर्भ –

(१) तिडन्त – ४६० सूत्र और १३ श्लोक, (२) कृदन्त – ३१६ सूत्र और ८ श्लोक।

कातन्त्ररूपमाला का प्रतिपाद्य

कातन्त्र व्याकरण दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में ५६४ सूत्र हैं तथा उत्तरार्द्ध में ८०६ सूत्र हैं। व्याकरण के पूर्वार्द्ध भाग में सन्धि, लिंग। १ (१. लिङ्ग ÷ धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्– अर्थात् धातु और विभक्ति से रहित अर्थवान् शब्द लिंग कहलाता है।) अव्ययकारक, समास एवं तद्धित प्रकरण हैं। तथा तिडन्त एवं कृदन्त प्रकरण व्याकरण के उत्तरार्द्ध भाग में हैं। पूर्वार्ध और उत्तरार्द्ध भाग के अन्त में श्री भावसेन ने इन श्लोकों को रचकर व्याकरण को दो भागों में विभक्त किया है –

(१) सन्धिर्नाम समासश्च तद्धितश्चेति नामतः।
चतुष्कमिति तत्प्रोक्तमित्येतच्छर्ववर्मणा।।१।।

भावसेनत्रिविद्येन वादिपर्वतवज्रिणा।
कृतायां रूपमालायां चतुष्कं पर्यपूर्यतः।।२।।

उत्तरार्ध में निम्न श्लोक के द्वारा श्रीमान् भावसेनत्रिविध मुनिराज ने इस कातन्त्र व्याकरण की "रूपमाला" नामक टीका में कृदन्त प्रकरण कहते हुए पूरा किया है –

(२) भावसेनत्रिविद्येन वादिपर्वतवज्रिणा।
कृतायां रूपमालायां कृदन्तः पर्यपूर्यत।।१।।

नीरज जैन, खातेगांव

१. कातन्त्र–रूपमाला, २. जैनेन्द्र–महावृत्ति और ३.पाणिनि–व्याकरण की समानान्तर सञ्ज्ञाएँ

कातन्त्र में	जैनेन्द्र में	पाणिनि में
वर्ण	अल्	अल्
स्वर	अच्	अच्
व्यञ्जन	हल्	हल्
समानसञ्ज्ञक	अक्	अक्
सवर्ण	स्व	सवर्ण
ह्रस्व	प्र	ह्रस्व
दीर्घ	दी	दीर्घ
	प	प्लुत
नामि	इच्	इच्
अनामि	(०)	(०)
सन्ध्यक्षर	एच्	एच्
असन्ध्यक्षर	अक्	अक्
अघोष	खर्	खर्
घोष	हश्	हश्
अशिट्	हय्	हय्
शिट्	शल्	शल्
ऊष्माण	ऊष्माण	ऊष्माण
धुट्	झल्	झल्
अधुट्	यम्	यम्
अनुनासिक	ञम्	ञम्
अन्तःस्थ	यण्	यण्
लिंग	मृत्	प्रातिपदिक

आमन्त्रण	बोध्य	सम्बोधन
सम्बुद्धि	कि	सम्बुधि
पद	पद	पद
सर्वनाम	सर्वनाम	सर्वनाम
घुट्	ध	सर्वनामस्थान
अग्नि	सु	घि
श्रद्धा		
नदी	मु	नदी
दीर्घ	अधिकरण	अधिकरण
विभक्ति	विभक्ती	विभक्ति
प्रथमा	वा	प्रथमा
द्वितीया	इप्	द्वितीया
तृतीया	भा	तृतीया
चतुर्थी	अप्	चतुर्थी
पंचमी	का	पंचमी
षष्ठी	ता	षष्ठी
सप्तमी	ईप्	सप्तमी

कातन्त्र–रूपमाला में कथित सञ्ज्ञाएँ

वर्ण – ४७, स्वर – १४, व्यञ्जन – ३३, समानसञ्ज्ञक – १०, सवर्ण – दो दो, ह्रस्व – ५, दीर्घ – ६, नामि – १२, अनामि – २, सन्ध्यक्षर – ४, असन्ध्यक्षर – १०, अघोष – १३, घोष – २०, अशिट् –२६, शिट् – ४, ऊष्माण – ४, धुट् – २४, अधुट् – ६, अनुनासिक – ५, अन्तःस्थ – ४। लिंग, आमन्त्रण, सम्बुद्धि, पद, सर्वनाम, घुट्, अग्नि, श्रद्धा, नदी, दीर्घ, विभक्ति, प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी

कातन्त्र–रूपमाला

स्वरान्त–लिङ्ग–प्रकरणम्

श्री शर्ववर्मकृतकलाप–व्याकरणस्य
वादिपर्वतवज्रश्रीमद्भावसेनत्रैविद्यकृता टीका

कातन्त्र–रूपमाला

स्वरान्त–लिंगप्रकरणम्

ग्रन्थकारस्य मङ्गलाचरणम्

वीरं प्रणम्य सर्वज्ञं, विनष्टाशेष–दोषकम्।
कातन्त्र–रूपमालेयं, बाल–बोधाय कथ्यते।।१।।

अन्वयार्थ – (विनष्ट–अशेषदोषकम्) नष्ट हो गये हैं, सम्पूर्ण दोष जिनके ऐसे **(सर्वज्ञं वीरं)** सर्वज्ञ महावीर भगवान् को अथवा चौबीसों तीर्थंकरों को **(प्रणम्य)** नमस्कार कर **(इयं कातन्त्ररूपमाला)** यह कातन्त्ररूपमाला नामक व्याकरण **(बालबोधाय)** अज्ञानी/अनभिज्ञ जनों को ज्ञान कराने के लिये **(कथ्यते)** कही जाती है अर्थात् लिखी जाती है।।१।।

भावार्थ – बाल शब्द का अर्थ मन्दबुद्धि है। अन्यत्र बाल शब्द के भिन्न अर्थ भी दृष्टिगोचर होते हैं। यथा – **बालस्त्रिविधाः प्रोक्ताः – मतिकृताः, कालकृताः शरीरपरिमाण–कृताश्चेति।** अर्थात् – बाल तीन प्रकार के हैं – बुद्धिकृत बाल, उम्र में बाल और शरीर के प्रमाण से बाल।

यहाँ मतिकृत बाल को ग्रहण करना चाहिये, अन्य को नहीं। क्योंकि दिगम्बर जैनदर्शन के अनुसार आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त की अवस्था को प्राप्त जीव, संयम को धारण कर सर्वज्ञ बन सकता है।।१।।

नमस्तस्यै सरस्वत्यै, विमल–ज्ञान–मूर्त्तये।
विचित्रालोक –यात्रेयं, यत्प्रसादात्प्रवर्तते ।।२।।

अन्वयार्थ – (विमलज्ञानमूर्त्तये) निर्मलज्ञान स्वरूप **(तस्यै)** उस **(सरस्वत्यै)** सरस्वती/जिनवाणी के लिये (नमः) नमस्कार हो । **(यत्प्रसादात्)** जिसके प्रसाद से अर्थात् जिसके माध्यम से **(इयम्)** इस **(विचित्रालोकयात्रा)** सम्पूर्ण लोक की यात्रा **(प्रवर्तते)** करता है ।।२।।

भावार्थ–जैन–आगम (दिगम्बर जैन ग्रन्थों) का अध्ययन कर तीनों लोकों की जानकारी हो जाती है।।२।।

नमो वृषभ–सेनादि,–गौतमान्त्यगणेशिने ।
मूलोत्तर–गुणाढ्याय, सर्वस्मै मुनये नमः।।३।।

अन्वयार्थ – (वृषभसेनादि) वृषभसेन को आदि लेकर **(गौतमान्त्यगणेशिने)** गौतम गणधर को अन्त कर सभी चौदह सौ उनसठ गणधरों के लिये **(नमः)** नमस्कार हो। **(मूलोत्तरगुणाढ्याय)** मूलगुण और उत्तरगुणों से युक्त **(सर्वस्मै)** उन **(मुनये)** मुनि महाराज के लिये **(नमः)** नमस्कार हो।।३।।

भावार्थ – (१) आदिनाथ भगवान् के **चौरासी** गणधर थे। (२) अजितनाथ भगवान् के **नब्बे** गणधर थे। (३) सम्भवनाथ भगवान् के **एक सौ पांच** गणधर थे। (४) अभिनन्दननाथ भगवान् के **एक सौ तीन** गणधर थे। (५) सुमतिनाथ भगवान् के **एक सौ सोलह** गणधर थे। (६) पद्मप्रभ भगवान् के **एक सौ ग्यारह** गणधर थे। (७) सुपार्श्वनाथ भगवान् के **पिंच्यानवे** गणधर थे। (८) चन्द्रप्रभ भगवान् के **तिरानवे** गणधर थे। (९) पुष्पदन्त भगवान् के **अठासी** गणधर थे। (१०) शीतलनाथ भगवान् के **सतासी** गणधर थे। (११) श्रेयांसनाथ भगवान् के **सतत्तर** गणधर थे। (१२) वासुपूज्य भगवान् के **छियासठ** गणधर थे। (१३) विमलनाथ भगवान् के **पचपन** गणधर थे। (१४) अनन्तनाथ भगवान् के **पचास** गणधर थे। (१५) धर्मनाथ भगवान् के **तैतालीस** गणधर थे। (१६) शान्तिनाथ भगवान् के **छत्तीस** गणधर थे। (१७) कुन्थुनाथ भगवान् के **पैंतीस** गणधर थे। (१८) अरनाथ भगवान् के **तीस** गणधर थे। (१९) मल्लिनाथ भगवान् के **अठाईस** गणधर थे। (२०) मुनिसुव्रतनाथ भगवान् के **अठारह** गणधर थे। (२१) नमिनाथ भगवान् के **सत्रह** गणधर थे। (२२) नेमिनाथ भगवान् के **ग्यारह** गणधर थे। (२३) पार्श्वनाथ भगवान् के **दस** गणधर थे। (२४) महावीर भगवान् के **ग्यारह** गणधर थे।

इन सभी चौदह सौ उनसठ गणधरों के लिये नमस्कार हो।

नोट – इस श्लोक में गणधरों को तथा मुनिराजों के लिये नमस्कार किया गया है। क्यों नमस्कार किया है यह नहीं दर्शाया है, जो कि होना चाहिये। क्योंकि विशेषण के बिना विशेष्य का कथन कैसे सम्भव है।।३।।

गुरुभक्त्या वयं सार्द्ध,–द्वीप–द्वितय–वर्त्तिनः।
वन्दामहे त्रिसङ्ख्योन,–नव–कोटि–मुनीश्वरान्।।४।।

अन्वयार्थ – (वयं) हम सब **(सार्द्धद्वीपद्वितयवर्त्तिनः)** ढाई द्वीप में प्रवर्तन करने वाले **(त्रिसंख्योन)** तीन कम **(नवकोटि)** नौ करोड़ **(मुनीश्वरान्)** मुनिराजों को **(गुरुभक्त्या)** गुरुभक्ति से **(वन्दामहे)** वन्दना करते हैं/वन्दना करता हूँ।।४।।

भावार्थ – ढाई द्वीप में विराजमान – छठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयत मुनिराजों की संख्या ५,९३,९८,२०६ है। सातवें गुणस्थानवर्ती अप्रमत्तसंयत मुनिराजों की संख्या २,९६,९९,१०३ है। आठवें गुणस्थानवर्ती अपूर्वकरण मुनिराजों की संख्या ८९७ है। नौवें गुणस्थानवर्ती अनिवृत्तिकरण मुनिराजों की संख्या ८९७ है। दशवें गुणस्थानवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय मुनिराजों की संख्या ८९७ है। ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशान्तकषाय मुनिराजों की संख्या २९९ है। बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणमोह मुनिराजों की संख्या ५९८ है। तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली मुनिराजों की संख्या ८,९८,५०२ है। चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगकेवली मुनिराजों की संख्या ५९८ है। इस प्रकार छठें गुणस्थान से लेकर चौदह गुणस्थान तक मुनिराजों की संख्या तीन कम नौ करोड़ होती है। अधिक से अधिक इतने मुनिराज हो सकते हैं।

अज्ञान–तिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जन–शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।५।।

अन्वयार्थ – (येन) जिन्होंने **(ज्ञानाञ्जनशलाकया)** ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका से **(अज्ञानतिमिरान्धस्य)** अज्ञान रूपी अन्धकार से आवरणीय/ढके **(चक्षुः)** नेत्र **(उन्मीलितं)** खोल दिये हैं **(तस्मै)** उन **(श्रीगुरवे)** श्री गुरु को **(नमः)** नमस्कार हो।।५।।

भावार्थ – आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीन रूपों में दिगम्बर मुनि होते हैं। ये ही सच्चे गुरु होते हैं। ऐसे गुरु महाराज हमारे अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने में समर्थ हैं। जिन्होंने हमारे नेत्र खोल दिये हैं, ऐसे गुरु महाराज के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

व्याख्याकर्तुर्मङ्गलाचरणम्

आचार्यं शर्ववर्माणं, शब्द–विद्या–महोदधिम्।
वन्दे हं भावतो नित्यं, मूलग्रन्थविधायकम्।।१।।

भावसेन–मुनिर्यस्य, त्रैविद्य – पदशोभितः।
वृत्तिं चकार कातन्त्र, – रूपमालेति विश्रुताम् ।।२।।

एतामधीत्य विद्वांसो, जातानैकविधा भुवि।
एतं मुनिद्वयं नित्यं, प्रणमामि सुभक्तितः।।३।।

इदानीं मुनिधर्मस्य, साक्षाद् रूपप्रवर्त्तकम्।
शान्तिसागरनामान –माचार्यं भुवि विश्रुतम्।।४।।

वन्दे तदीयशिष्यं च, वीरसागर – नामकम्।
तच्छिष्यं मनसा वन्दे, मुनीन्द्रं शिवसागरम्।।५।।

एको भूत् तस्य सच्छिष्यो, ज्ञानसागरनामकः।
तदीयं विश्रुतं शिष्यं, विद्यासिन्धुमहामुनिम्।।६।।

अनेके दीक्षिता येन, मुनयः सन्ति भारते।
आर्यिकामातरश्चापि, दीक्षिताः विहरन्ति च ।।७।।

एतान् सर्वान् प्रणम्याहं, मनोवाक्कायकर्मभिः।
कातन्त्ररूपमालाया, वृत्तिमेतां करोम्यहम्।।८।।

गुरवः पान्तु मां नित्यं, शब्दविद्या प्रदायकाः।
येषां प्रसादतो नूनं, कृतिरियं विराजिता।।९।।

जिनचन्द्रं नमस्कृत्य, जिनचन्द्रेण धीमता।
जिनेन्द्रं मनसि ध्यात्वा, स्वरलिंगं प्रकथ्यते।।१०।।

।। अथ स्वरान्त–लिङ्गाद्विभक्तय उच्यन्ते।।

अब लिंग से विभक्तियाँ कहीं जाती हैं। सन्धि प्रकरण अत्यन्त उपयोगी होने के कारण सर्वप्रथम कहा गया। अब लिंगान्त प्रकरण कहा जाता है। लिंगान्त प्रकरण प्रारम्भ करने के पूर्व आचार्य भगवन्त सर्वज्ञ प्रभु को नमस्कार स्वरूप मध्य मंगलाचरण कहते हैं।

सर्वज्ञं तमहं वन्दे, परं ज्योतिस्तमो पहम्।
प्रवृत्ता यन्मुखाद्देवी, सर्वभाषा सरस्वती।।१।।

श्लोकार्थ – (अहं) मैं **(तमो पहम्)** अन्धकार से रहित **(परं ज्योतिः) उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप (तम्)** उस **(सर्वज्ञम्)** सर्वज्ञप्रभु को **(वन्दे)** नमस्कार करता हूँ। **(यन्मुखात्)** जिनके मुख से **(सर्वभाषा)** सर्वभाषामयी **(सरस्वती देवी)** सरस्वती देवी **(प्रवृत्ता)** प्रवृत्त हुई।

व्याकरण–शास्त्र में – शब्द तीन प्रकार के होते हैं। लिंगान्त, तिङन्त और अव्यय। यद्यपि अव्यय भी लिंगान्त ही हैं, तथापि इन से परे सम्पूर्ण सिप् का लोप हो जाने से, इन दोनों की उन से विशेषता है।

लिंगान्त शब्दों का प्रकरण आरम्भ किया जाता है। जिन शब्दों के अन्त में सि आदि प्रत्यय हो उन्हें लिंगान्त शब्द कहते हैं। वे शब्द प्रथम दो प्रकार के होते हैं। स्वरान्त और व्यञ्जनान्त। जिन शब्दों के अन्त में स्वर हों वे शब्द स्वरान्त तथा जिन शब्दों के अन्त में व्यञ्जन हों वे शब्द व्यञ्जनान्त कहलाते हैं।

यथा–"पुरुष" शब्द के अन्त में अकार= स्वर है। अतः यह स्वरान्त शब्द है और स्वरान्तों में भी अकारान्त स्वरान्त है। "मुनि" इस शब्द के अन्त में इकार = स्वर है। अतः यह स्वरान्त है और स्वरान्तों में भी इकारान्त स्वरान्त है। इसी प्रकार शेष स्वरान्त शब्दों को जानना चाहिये।

"सुवाच्" इस शब्द के अन्त में चकार = व्यञ्जन है। अतः यह व्यञ्जनान्त शब्द है और व्यञ्जनान्तों में भी चकारान्त व्यञ्जन है। "राजन्" इस शब्द के अन्त में नकार = व्यञ्जन है। अतः यह व्यञ्जनान्त शब्द है और व्यञ्जनान्तों में भी नकारान्त व्यञ्जन है। इस प्रकार स्वरान्त और व्यञ्जनान्त के भेद से शब्द दो प्रकार के होते हैं। दो प्रकार के भी ये शब्द पुनः तीन लिंगों के भेद से छह प्रकार के हो जाते हैं।

किं लिङ्गम् ?

शंका : लिङ्ग किसे कहते हैं ?

समाधान–

(२.१)सञ्ज्ञासूत्रम् – धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्।।१२५।।

अर्थो भिधेयः। धातुविभक्तिवर्जमर्थवच्छब्दरूपं लिङ्गसञ्ज्ञं भवति। तच्च लिङ्गं द्विविधम्। स्वरान्तं व्यञ्जनान्तं चेति। तत्पुनः प्रत्येकं त्रिविधम्। पुल्लिङ्गं स्त्रीलिङ्गं नपुंसकलिङ्गं चेति। तत्रादावकारान्तात् पुल्लिङ्गात् पुरुषशब्दाद्विभक्तयो योज्यन्ते। लोकोपचारात्स्यादीनां विभक्तिसञ्ज्ञायां पुरुष इति स्थिते।।

अर्थ – धातु और विभक्ति से रहित अर्थवत् शब्दरूप की लिंग सञ्ज्ञा होती है।

और वह लिंग दो प्रकार का है, स्वरान्त तथा व्यञ्जनान्त। स्वरान्त तथा व्यञ्जनान्त भी प्रत्येक तीन प्रकार के हैं, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। स्वरान्त में अकारान्त पुल्लिंग पुरुष शब्द से विभक्तियाँ को लगाना चाहिये।

"लोकोपचाराद्ग्रहणसिद्धिः" (२२) सूत्र द्वारा सि, औ, जस् आदि की विभक्ति संज्ञा होती है।

शंका – धातु और विभक्ति से रहित लिंग संज्ञा होती है, ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर धातु और विभक्ति से रहित नहीं कहते तो "अहन्" और "वृक्षान्" की भी लिंग सञ्ज्ञा हो जाती। लिंग सञ्ज्ञा होने पर पुनः विभक्ति आती है और नया रूप बनता। फिर यह क्रम चलता ही रहता। अतः धातु और विभक्ति से रहित का कथन किया।

शंका – "अर्थवत्" हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर अर्थवत् नहीं कहते तो "वृक्ष" इस शब्द के व्, ऋ, क्, ष्, अ प्रत्येक शब्द की लिंग सञ्ज्ञा करना पड़ती।

अर्थवत् शब्द की लिंग संज्ञा होने पर **"लोकोपचाराद्ग्रहणसिद्धिः"** (२२) सूत्र से सि औ जस् आदि की विभक्ति सञ्ज्ञा होने पर "पुरुष" इस शब्द से अग्रिम सूत्र द्वारा विभक्ति लाते हैं।

(२.२)विधिसूत्रम् – तस्मात्परा विभक्तयः ।।१२६।।

तस्मादर्थवतो लिङ्गात्पराः स्यादयो विभक्तयो भवन्ति। सि औ जस्। अम् औ शस्। टा भ्याम् भिस्। ङे भ्याम् भ्यस्। ङसि भ्याम् भ्यस्। ङस् ओस् आम्। ङि ओस् सुप्। ताः पुनः सप्त। सि औ जस् इति प्रथमा। अम् औ शस् इति द्वितीया। टा भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे् भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी। ङि ओस् सुप् इति सप्तमी। एवं युगपत् सर्वप्रत्ययप्रसङ्गे वक्तुर्विवक्षया शब्दार्थप्रतिपत्तिरिति लिङ्गार्थविवक्षायाम्।

अर्थ – उस अर्थवत् लिंग से सि आदि विभक्तियाँ होती हैं।

वे विभक्तियाँ सात हैं।

विभक्तियाँ यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**	
प्रथमा	सि	औ	जस्	इति प्रथमा।
सम्बोधन	सि	औ	जस्	इति सम्बुद्धि।
द्वितीया	अम्	औ	शस्	इति द्वितीया।
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्	इति तृतीया।
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्	इति चतुर्थी।
पञ्चमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्	इति पंचमी।
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्	इति षष्ठी।
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्	इति सप्तमी।

प्रश्न – किस अर्थ में प्रथमा आदि विभक्तियाँ होती हैं।

उत्तर – यथा – प्रथमा – कर्ता ने, द्वितीया – कर्म को, तृतीया – करण से, के द्वारा, चतुर्थी – सम्प्रदान के लिये, पंचमी – अपादान से (अलग होने के अर्थ में), षष्ठी – स्वामी आदि (सम्बन्ध) – का, के, की, सप्तमी – अधिकरण में, पे, पर।

इस प्रकार एक साथ सभी प्रत्यय के प्रसंग होने पर वक्ता की विवक्षा से शब्द के अर्थ की प्रतिपत्ति होती है।

अब लिंग के अर्थ की विवक्षा में कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है, यह बताने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२२३)सञ्ज्ञासूत्रम् – प्रथमा विभक्तिर्लिङ्गार्थवचने।।१२७।।

अव्यतिरिक्तलिङ्गार्थवचने प्रथमाविभक्तिर्भवति। इति लिङ्गार्थे प्रथमा तत्रापि युगपदेकवचनादिप्राप्तौ।

अर्थ – लिंगार्थ वचन में प्रथमा विभक्ति होती है।

इस प्रकार लिंगार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रथमा विभक्ति में भी एकसाथ एकवचन, द्विवचन आदि विभक्तियाँ के प्राप्त होने पर एक के अर्थ में एकवचन, दो के अर्थ में द्विवचन, तीन या अधिक के अर्थ में बहुवचन होता है, यह बताने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०.००)विधिसूत्रम् – एकं द्वौ बहून्।।१२८।।

अर्थान् वक्तीति, एकस्मिन्नर्थे एकवचनं द्वयोरर्थयोर्द्विवचनं बहुष्वर्थेषु बहुवचनं भवति। इति लिङ्गार्थैकत्वविवक्षायां प्रथमैकवचनं सि। पुरुष सि इति स्थिते।

अर्थ– एक अर्थ में एकवचन, दो अर्थ में द्विवचन, बहुत अर्थ में बहुवचन होता है।

इस प्रकार लिङ्गार्थ के एकवचन की विवक्षा में प्रथमा के एकवचन में सि विभक्ति होती है।

नोट – "कलाप–व्याकरण" में **"प्रथमा विभक्तिर्लिङ्गार्थवचने"** (१२३) सूत्र की टीका में **"एकमर्थं द्वौ बहून् वा वक्तीत्यन्वर्थसञ्ज्ञया एकस्मिन्नर्थे एकवचनं, द्वयोर्द्विवचनम्, बहुषु बहुवचनम्।"** इत्यादि टीका द्वारा कथन किया है। मूल सूत्रपाठ में सूत्र नहीं है।

अब सर्वप्रथम अकारान्त पुरुष शब्द की लिंग सञ्ज्ञा कर, उससे सि आदि विभक्तियों का प्रयोग कर, रूप सिद्ध करते हैं।

पुरुष शब्द के प्रयोग में पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ओकारे औ औकारे च"** (४०), **"ए अय्"** (४८), **"धुड् व्यञ्जनमनन्तःस्थानुनासिकम्"** (७५)।

पुरुष शब्द से प्रथमा के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, सि आदि विभक्तिओं में जो उपयोगी नहीं हैं, उसका अनुबन्ध लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(३.४३५)अतिदेशसूत्रम् – यो नुबन्धो प्रयोगी।।१२६।।

अनुबध्यत इत्यनुबन्धः अप्रयुक्तिरप्रयोगः। यः अनुबन्धः सः अप्रयोगी अनुच्चारणीयो भवति। अनुबन्धः कः ? इजशटङपा विभक्तिष्वनुबन्धाः। एवमन्ये पि इङ्–अधीते। डुकृञ्–कुरुते। वा विरामे इति वर्तमाने।

अर्थ – जो अनुबन्ध होता है वह अप्रयोगी है। अर्थात् अनुबन्ध से उस वर्ण का अभाव (लोप) समझना चाहिये।

शंका – अनुबन्ध किसे कहते हैं ?

समाधान – विभक्तियों में इ, ज्, श्, ट्, ङ्, प् ये अनुबन्ध कहलाते हैं। ये अनुबन्ध मात्र विभक्तियों के हैं। प्रत्यय सम्बन्धि, तिङन्त सम्बन्धी भी अनेक शब्द अनुबन्ध होते हैं। जिनका उल्लेख **"एवमन्ये पि"** वार्तिक द्वारा पृथक् से कथन किया है। उन अनुबन्धों को भी इसी सूत्र से अनुबन्ध करना चाहिये।

सि औ जस् आदि विभक्तियों में सि में रहने वाली इकार अनुबन्ध को प्राप्त होती है। विभक्तियों में "स्" मात्र शेष रहता है।

जस् में जकार अनुबन्ध हो कर अस् शेष रहता है।

शस् में शकार अनुबन्ध हो कर अस् शेष रहता है।

टा में टकार अनुबन्ध हो कर आ शेष रहता है।

ङे में ङकार अनुबन्ध हो कर ए शेष रहता है।

ङसि में से ङकार और इकार अनुबन्ध हो कर अस् शेष रहता है।

ङस् में से ङकार अनुबन्ध हो कर अस् शेष रहता है।

ङि में से ङकार अनुबन्ध हो कर इ शेष रहता है।

सुप् में से पकार अनुबन्ध हो कर सु शेष रहता है।

शंका – इ, ज्, श्, ट्, ङ् और प् ये अनुबन्ध कहें हैं, फिर ङि में इकार का अनुबन्ध क्यों नहीं किया ?

समाधान – आपकी शंका उचित है, परन्तु ङि में इकार का भी अनुबन्ध करते है, तो कुछ भी शेष नहीं रहेगा। फिर प्रत्यय करना ही निरर्थक हो जायेगा।

"वा विरामे" (२४२) सूत्र की अनुवृत्ति के अनुसार वर्तमान में पुरुष शब्द से सि आदि विभक्तियाँ लाना चाहिये।

पुरुष शब्द से सि विभक्ति के आने पर, इकार का अनुबन्ध लोप हो कर, "पुरुष + स्" इस स्थिति में सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२०५)विधिसूत्रम् – रेफसोर्विसर्जनीयः ।।१३०।।

विरामे व्यञ्जनादौ च रेफसकारयोर्विसर्जनीयो भवति। परवर्णाभावो विरामः। अथवा यदनन्तरं वर्णान्तरं नोच्यते स विरामः। पुरुषः इति सिद्धं पदम्। तथैव लिङ्गार्थे द्वित्वविवक्षायां द्विवचनम् औ। सन्धिः। पुरुषौ।। तथैव लिङ्गार्थे बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं जस्। अनुबन्धलोपः। पुरुष अस् इति स्थिते। अकारे लोपमिति प्राप्ते तत्प्रतिषेधः। अकारो दीर्घं घोषवति इति वर्तते। सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्। लोपस्वरादेशयोः स्वरादेशो विधिर्बलवान्। वाधिकाराद् विभक्तिव्यञ्जने रेफस्य न स्यात्। गीर्षु, धूर्षु। भवति च सजूःषु, आशीःषु।

अर्थ – विराम और व्यञ्जन परे होने पर रेफ और सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश होता है।

विराम – पर वर्ण के अभाव को "विराम" कहते हैं। अथवा जिस वर्ण के अनन्तर वर्णान्तर नहीं होता है, उसे विराम कहते हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पुरुषः – पुरुष शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में **"तस्मात्परा विभक्तयः"** (१२६) सूत्र से सि विभक्ति के आने पर, **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६) सूत्र द्वारा सि के इकार का अनुबन्धलोप हो कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय हो कर **"पुरुषः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

एकवचन के सदृश लिंगार्थ में द्विवचन की विवक्षा में औ विभक्ति होती है।

"पुरुष + औ" यहाँ **"ओकारे औ औकारे च"** (४०) सूत्र से सन्धि करने पर, **"पुरुषौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुषौ – पुरुष शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"ओकारे औ औकारे च"** (४०) सूत्र से पुरुष के अकार के स्थान पर औकार तथा औकार का लोप हो कर "पुरुष् औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पुरुषौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन के सदृश लिंगार्थ में बहुवचन में जस् विभक्ति होती है। **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६) सूत्र द्वारा जकार का अनुबन्धलोप हो कर "पुरुष + अस्" इस स्थिति में, **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र की प्राप्ति थी, परन्तु विशेष **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र की प्राप्ति होने पर उसके अपवाद में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति हुई। एक साथ लोप तथा दीर्घ की प्राप्ति होने पर **"सर्वविधिभ्यो लोपविधि–र्बलवान्"** अर्थात् सभी विधियों से, लोप विधि बलवान् होती है। इस परिभाषा के अनुसार **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र की प्राप्ति होती है। परन्तु **"लोपस्वरादेशयोः स्वरादेशो विधि–र्बलवान्"** अर्थात् लोप और स्वरादेश की विधि में स्वरादेश विधि बलवान् होती है। इस परिभाषा के अनुसार स्वरादेश विधि हेतु लिंगान्त अकार को दीर्घ करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१५)विधिसूत्रम् – जसि।।१३१।।

लिङ्गान्तो कारो दीर्घमापद्यते जसि परे। (एकदेशविकृतमनन्यवत्)। यथा कर्णपुच्छादिस्वाङ्गेषु भिन्नेषु सत्सु श्वा न गर्दभः किन्तु श्वा श्वैव। पुनः सवर्णे दीर्घः। सस्य विसर्जनीयः। पुरुषाः। तथैवामन्त्रणार्थविवक्षायाम्।

अर्थ – जस् परे होने पर लिंगान्त अकार, दीर्घ को प्राप्त होता है।

अर्थात् दीर्घ–लोप–दीर्घ के विकल्प रहित उपर्युक्त सूत्र से लिंगान्त अकार को जस् विभक्ति के होने पर दीर्घ आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

शंका – "यो नुबन्धो प्रयोगी" (१२६) सूत्र से जस् के जकार का लोप हो जाने से, जस् तो अब है नहीं, फिर **"जसि"** (१३१) सूत्र से दीर्घ कैसे होगा ?

समाधान – "एकदेशविकृतमनन्यवत्" इस परिभाषा के अनुसार अस् ही जस् कहलायेगा। जैसे – कर्ण, पुच्छादि स्व अंग भिन्न होने पर कुत्ता गधा नहीं हो जाता है, किन्तु कुत्ता, कुत्ता ही रहता है। उसी प्रकार जस् के जकार का लोप होने पर अस्, जस् ही कहलायेगा।

उपर्युक्त सूत्र द्वारा पुरुष शब्द के अकार को दीर्घ हो कर, "पुरुषा + अस्" इस स्थिति में पुनः **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पुरुषाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुषाः – पुरुष शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६) सूत्र से जस् के जकार का अनुबन्ध लोप कर, "पुरुष + अस्" इस स्थिति में, **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु विशेष, **"अकारे लोपम्"** (१३६) तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) दोनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्"** इस परिभाषा के अनुसार **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"लोपस्वरादेशयोः स्वरादेशो विधिर्बलवान्"** इस परिभाषा के कारण, **"एकदेशविकृतमनन्यवत्"** परिभाषा के माध्यम से **"जसि"** (१३१) सूत्र से "पुरुष" शब्द को दीर्घ आदेश कर, "पुरुषा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घी भवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पुनः दीर्घ हो कर, "पुरुषा + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पुरुषाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रथमा विभक्ति की तरह ही आमन्त्रणार्थ की विवक्षा में प्रथमा विभक्ति होती है। यह बताने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२२४)विधिसूत्रम् – आमन्त्रणे च।।१३२।।

दूरस्थानामभिमुखीकरणमामन्त्रणम्। तत्र प्रथमा विभक्तिर्भवति। षष्ठ्यपवादो यम्।

अर्थ – दूरस्थान से अपनी ओर आह्वान करने को आमन्त्रण कहते हैं। आमन्त्रण में प्रथमा विभक्ति होती है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"प्रथमा विभक्तिर्लिङ्गार्थवचने"** (१२७) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

उपर्युक्त सूत्र में षष्ठी विभक्ति का अपवादक है।

पुरुष शब्द से आमन्त्रण के एकवचन की विवक्षा में सि विभक्ति के आने पर, सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५)सञ्ज्ञासूत्रम् – आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः।।१३३।।

आमन्त्रणार्थे विहितः सिः सम्बुद्धिसञ्ज्ञो भवति।

अर्थ – आमन्त्रण के अर्थ में कथित सि सम्बुद्धिसञ्ज्ञक होती है।

अर्थात् आमन्त्रण के अर्थ में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा होती है।

नोट – **"कलाप–व्याकरण"** में **"आमन्त्रिते सिः सम्बुद्धिः"** सूत्र है।

पुरुष + स् यहाँ सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा होने पर सम्बुद्धि सञ्ज्ञक सि का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७१)विधिसूत्रम् – ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्।।१३४।।

ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः परः सम्बुद्धिसञ्ज्ञकः सिर्लोपमापद्यते। कैश्चिदामन्त्रणाभिव्यक्तये अहो हे भो शब्दाः प्राक्प्रयोज्यन्ते। हे पुरुष। द्विवचनबहुवचनयोः पूर्ववत्। हे पुरुषौ। हे पुरुषाः। तथैव कर्मविवक्षायाम्।।

अर्थ – ह्रस्व सञ्ज्ञक, नदीसञ्ज्ञक तथा श्रद्धासञ्ज्ञक से परे सम्बुद्धिसञ्ज्ञक सि का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

ह्रस्व – अ, इ, उ, ऋ और ऌ ये वर्ण ह्रस्वसञ्ज्ञक हैं। ह्रस्वसंज्ञक से परे सम्बुद्धि सम्बन्धी सि विभक्ति का लोप होता है।

नदीसञ्ज्ञा – "ह्रस्वश्च ङवति" (२२१) तथा **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा होती है। नदीसंज्ञा से परे सम्बुद्धि सम्बन्धी सि विभक्ति का लोप होता है।

श्रद्धासञ्ज्ञा – "आ श्रद्धा" (२०६) सूत्र से आकारान्त स्त्रीलिंग की श्रद्धा सञ्ज्ञा होती है। श्रद्धासंज्ञा से परे सम्बुद्धि सम्बन्धी सि विभक्ति का लोप होता है।

किन्हीं के द्वारा आमन्त्रण का प्रयोग करने के लिये "अहो, हे, भो", आदि शब्द पुरुष आदि लिंग के पूर्व में प्रयोग किये जाते हैं।

हे पुरुष – पुरुष शब्द से आमन्त्रण अर्थ में **"आमन्त्रणे च"** (१३२) सूत्र से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "पुरुष + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा हो कर **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप हो कर **"हे पुरुष"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् "पुरुष + औ" – **"हे पुरुषौ"** तथा "पुरुष + जस्" – **"हे पुरुषाः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

पुरुष शब्द से कर्म आदि की विवक्षा में द्वितीया आदि विभक्ति होती हैं। यह बताने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२२५)विधिसूत्रम् – शेषाः कर्मकरण–सम्प्रदानापादान–स्वाम्याद्यधिकरणेषु ।।१३५।।

शेषा द्वितीयाद्याः षड् विभक्तयः कर्मादिषु षट्सु कारकेषु यथासङ्ख्यं भवन्ति। इति कर्मणि द्वितीया। पुरुष अम् इति स्थिते।

अर्थ – कर्म आदि छह कारकों में शेष द्वितीया आदि छह विभक्तियाँ क्रमशः होती हैं।

कर्म में द्वितीया विभक्ति, करण में तृतीया विभक्ति, सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति, अपादान में पञ्चमी विभक्ति, स्वाम्यादि (सम्बन्ध) में षष्ठी विभक्ति तथा अधिकरण में सप्तमी विभक्ति ये क्रमशः होती हैं।

पुरुष शब्द से कर्म की विवक्षा में द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर "पुरुष + अम्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र की प्राप्ति होने पर, लिंगान्त अकार का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१७)विधिसूत्रम् – अकारे लोपम्।।१३६।।

लिङ्गान्तो कारो लोपमापद्यते सामान्ये अकारे परे। पुरुषम्। द्विवचने सन्धिः। पुरुषौ। बहुत्वे – पुरुष अस् इति स्थिते।

अर्थ–सामान्य अकार परे होने पर, लिंगान्त अकार, लोप को प्राप्त होता है।

अर्थात् विभक्तियों के प्रारम्भ में अकार होगा तो लिंगान्त अकार का लोप हो जायेगा।

सामान्य अकार होने पर, अकार का लोप होता है। ऐसा कथन करने से **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२) सूत्र से आदेश होने वाले अकार का भी लोप हो जाता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पुरुषम्– पुरुष शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र की प्राप्ति होने पर **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र से लिंगान्त अकार का लोप हो कर, "पुरुष् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पुरुषम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुष शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर लिंगान्त अकार को दीर्घ तथा सकार के स्थान पर नकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१६)विधिसूत्रम् – शसि सस्य च नः।।१३७।।

शसि परे लिङ्गातो कारो दीर्घमापद्यते सस्य च नो भवति। पुनः सवर्णे दीर्घः। पुरुषान्। तथैव करणविवक्षायाम्। शेषाः कर्मेत्यादिना करणे तृतीया। पुरुष टा इति स्थिते।

अर्थ – शस् परे होने पर लिंगान्त अकार दीर्घ को प्राप्त होता है तथा सकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

अर्थात् लिंगान्त अकार पुरुष शब्द है। पुरुष के अकार को दीर्घ "पुरुषा" तथा शस् के सकार को नकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

शस् के शकार का अनुबन्ध लोप हो कर अस् शेष रहता है। "पुरुषा + अन्" यहाँ पुनः **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"पुरुषान्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका – लिंगान्त अकार को दीर्घ किस लिये किया है। वह तो **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो ही जाता?

समाधान – आपकी शंका उचित है, परन्तु आपने **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र का अर्थ से ग्रहण नहीं किया। उपर्युक्त सूत्र द्वारा यदि लिंगान्त अकार को दीर्घ नहीं करते तो **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र से शस् के अकार का लोप हो जाता।

पुरुषान् – पुरुष शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में "शस्" विभक्ति के आने पर **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६) सूत्र से शस् के शकार का अनुबन्ध लोप होने पर, "पुरुष + अस्" इस स्थिति में **"शसि सस्य च नः"** (१३७) सूत्र से पुरुष के अकार को दीर्घ तथा सकार के स्थान पर नकार आदेश हो कर, "पुरुषा + अन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पुनः दीर्घ तथा पर का लोप करने पर **"पुरुषान्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुष शब्द से करण में तृतीया विभक्ति के एकवचन में **"शेषाः कर्मकरणसम्प्रदा–नापादानस्वाम्याद्यधिकरणेषु"** (१३५) सूत्र से टा विभक्ति आने पर, टा के स्थान पर "इन" आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२३)विधिसूत्रम् – इन टा।।१३८।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परष्टा इनो भवति। सन्धिः।

अर्थ – अकारान्त लिंग से परे टा के स्थान पर इन आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अकारान्त लिंग से परे ही टा के स्थान पर इन आदेश होता है। पुरुष + टा – पुरुष +इन। यहाँ **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि हो कर "पुरुषेन" प्रयोग बन जायेगा।

शंका – "इन टा" के स्थान पर "टेनः" इस प्रकार लघु सूत्र बना देते ?

समाधान – "इन टा" के स्थान पर "टेनः" सूत्र भी बन सकता था। परन्तु बालकों को ज्ञान कराने के लिए पृथक् – पृथक् सन्धि किये विना रखा है।

"पुरुष + टा" यहाँ टा के स्थान पर "इन" आदेश कर, "पुरुष + इन" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार तथा इकार का लोप कर, **"पुरुषेन"** बना।

अब "पुरुषेन" के नकार के स्थान पर णकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२५४)विधिसूत्रम् – रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्ग–पवर्गान्तरो पि।१३६।

रेफषकारऋवर्णेभ्यः परो नन्त्यो नकारः णमापद्यते स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि शब्दान्तरो पि। स्वरान्तरस्तावत्। पुरुषेण। द्विवचने।

अर्थ – रेफ, षकार और ऋवर्ण से परे अन्त भिन्न नकार, णकार को प्राप्त होता है, स्वर, ह्, य्, व्, कवर्गान्त तथा पवर्गान्त से युक्त अथवा शब्दान्तर होने पर भी।

अर्थात् – रेफ, षकार तथा ऋकार से परे अन्त भिन्न नकार को णकार आदेश होता है, अगर रेफ, षकार तथा ऋकार तथा नकार के मध्य यदि स्वर ह्, य्, व्, कवर्ग और पवर्ग का व्यवधान होने पर भी णकार आदेश हो जाता है।

स्वर से परे – पुरुषेण। **हकार से परे** – अर्हेण। **यकार से परे** – आर्येण। **वकार से परे** – पर्वणा। **कवर्ग से परे** – अर्केण, मूर्खेण। **पवर्ग से परे** – दर्पेण, रेफेण। **विना किसी व्यवधान से परे** – शीर्णम्, तिसृणाम् इत्यादि।

परन्तु रेफ, षकार और ऋवर्ण तथा नकार के मध्य चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, लकार, शकार और सकार का व्यवधान होगा तो नकार को णकार आदेश नहीं होगा। यथा – तीर्थेन इत्यादि।

नोट – इस सूत्र का अर्थ अच्छे से हृदयंगम कर लेना चाहिये। व्याकरण पढने के बाद भी अच्छे–अच्छे इस सूत्र का अर्थ नहीं कर पाते हैं। इस सूत्र को समझने के लिये निम्न शर्तें अच्छे से स्मरण कर ले।

यथा – १. किसी भी पद में रेफ, षकार और ऋवर्ण इन तीन वर्णों में से कोई एक वर्ण होना चाहिये।

२. नकार पद के अन्त में नहीं होना चाहिये। जैसे "पुरुषान्" में नकार पद के अन्त में है। अतः उसको णकार आदेश नहीं हुआ।

३. रेफ, षकार और ऋवर्ण तथा नकार के मध्य यदि स्वर आदि का व्यवधान हो अथवा न हो तो भी नकार को णकार आदेश हो जायेगा।

४. रेफ, षकार और ऋवर्ण तथा नकार के मध्य चवर्ग आदि का व्यवधान नहीं होना चाहिये।

"पुरुषेन" यहाँ उपर्युक्त सभी शर्तें घटित होने पर नकार को णकार आदेश हो जायेगा।

पुरुषेण – पुरुष शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"इन टा"** (१३८) सूत्र से टा के स्थान पर "इन" आदेश कर, "पुरुष + इन" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार तथा इकार का लोप हो कर **"पुरुषेन"** इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"पुरुषेण"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुष शब्द से तृतीया विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, लिंगान्त अकार को दीर्घ करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१४)विधिसूत्रम् – अकारो दीर्घं घोषवति।।१४०।।

लिङ्गान्तो कारो दीर्घमापद्यते घोषवति परे। पुरुषाभ्याम्। बहुत्वे।

अर्थ – घोष परे होने पर लिंगान्त अकार दीर्घ को प्राप्त होता है।

घोषवर्ण – ग्, घ् ङ्। ज्, झ्, ञ्। ड् ढ्, ण्। द्, ध् न्। ब्, भ्, म्। य्, र्, ल्, व् और ह् ये वर्ण घोषवर्ण कहलाते हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

यह सूत्र मात्र लिंगान्त अकार को ही दीर्घ करता है। भ्याम्, भिस् भ्यस् ये विभक्तियाँ के आदि में घोषसंज्ञक वर्ण है। सामान्य नियम के अनुसार इन विभक्तियों के होने पर लिंगान्त अकार को दीर्घ हो जाता है। विशेष नियम प्रसंगानुसार बताये जायेंगे।

पुरुषाभ्याम्– पुरुष शब्द से तृतीया–चतुर्थी–पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से अकार को दीर्घ हो कर **"पुरुषाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुष शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति होने पर, इसके अपवाद स्वरूप भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१८)विधिसूत्रम् – भिसैस्वा।।१४१।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो भिस् ऐस् वा भवति। सन्धिः। पुरुषैः। वाशब्दः पक्षान्तरं सूचयति–एस् ऐस् वा। तथैव सम्प्रदानविवक्षायाम्। शेषाः कर्मेत्यादिना सम्प्रदाने चतुर्थी।

अर्थ – अकारान्त लिंग से परे भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

सूत्र में वा शब्द समुच्चय के लिये है, विकल्प के लिये नहीं। अथवा भिस् के स्थान पर एस् तथा ऐस् आदेश होता है।

जैसे – **"अपरो लोप्यो न्यस्वरे यं वा"** (१०६), **"विसर्जनीयश्चे छे वा शम्"** (२५) **"टे ठे वा षम्"** (६६), **"ते थे वा सम्"** (६७) इत्यादि सूत्रों में "वा" शब्द विकल्प के लिये नहीं है। उसी प्रकार **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र में वा का कथन भी समुच्चय के लिये है।

"पुरुष + भिस्" इस स्थिति में **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र से भिस् के स्थान पर "ऐस्" आदेश हो कर "पुरुष + ऐस्" इस स्थिति में **"एकारे ऐ ऐकारे च"** (३७) सूत्र से सन्धि कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पुरुषैः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुषैः – पुरुष शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र से भिस् के स्थान पर "ऐस्" आदेश कर "पुरुष + ऐस्" इस स्थिति में **"एकारे ऐ ऐकारे च"** (३७) सूत्र से अकार के स्थान पर ऐकार आदेश कर तथा ऐस् के ऐकार का लोप कर "पुरुषैस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पुरुषैः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुष शब्द से **"शेषाः कर्मकरणसम्प्रदानापादानस्वाम्याद्यधिकरणेषु"** (१३५) सूत्र से सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"योऽनुबन्धोऽप्रयोगी"** (१२६) सूत्र द्वारा ङकार का अनुबन्ध प्राप्त है, परन्तु सम्पूर्ण "ङे" के स्थान पर य आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२४)विधिसूत्रम् – ङेर्यः ।।१४२।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङेर्यो भवति। घोषवति दीर्घः। पुरुषाय। द्वित्वे पूर्ववत्। पुरुषाभ्याम्। बहुत्वे।

अर्थ – अकारान्त लिंग से परे ङे के स्थान पर "य" आदेश होता है।

सम्पूर्ण ङे के स्थान पर य आदेश अकारो दीर्घं घोषवति सूत्र से दीर्घ करने के लिये है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

ङे के स्थान पर होने वाले आदेश अकार सहित है। "य" आदेश ङे के स्थान पर हुआ है। अतः "य" भी स्थानीवत् होने से विभक्ति सम्बन्धी प्रत्यय कहलायेगा।

पुरुषाय – पुरुष शब्द से चतुर्थी के एकवचन में "ङे" विभक्ति के आने पर **"ङेर्यः"** (१४२) सूत्र से "ङे" के स्थान पर "य" आदेश हो कर "पुरुष + य" इस स्थिति में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से लिंगान्त अकार को दीर्घ हो कर **"पुरुषाय"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुष शब्द से चतुर्थी विभक्ति के बहुवचन में "भ्यस्" विभक्ति के आने पर .....।

(२.१३)सञ्ज्ञासूत्रम् – धुड् व्यञ्जनमनन्तःस्थानुनासिकम्।।७५।।

अन्तःस्थानुनासिकवर्जितं व्यञ्जनं धुट् सञ्ज्ञं भवति। क ख ग घ। च छ ज झ। ट ठ ड ढ। त थ द ध। प फ ब भ। श ष स ह इति।

अर्थ – अन्तःस्थ तथा अनुनासिक को छोड़कर शेष व्यञ्जन धुट् सञ्ज्ञक होते हैं।

अर्थात् य्, व्, ल्, र्, ङ्, ञ्, ण्, न्, म् इन नौ व्यञ्जन से भिन्न क् आदि २४ व्यञ्जनों की धुट् सञ्ज्ञा होती है।

धुट् संज्ञक वर्ण – यथा– क् ख् ग् घ्। च् छ् ज् झ्। ट् ठ् ड् ढ्। त् थ् द् ध्। प् फ् ब् भ्। श् ष् स् ह् इन चौबीस वर्णों की धुट् सञ्ज्ञा होती है।

अधुट् संज्ञक वर्ण – यथा – य्, व्, ल्, र्, ङ् ञ्, ण्, न्, म् इन नौ वर्णों की अधुट् संज्ञा होती है।

पुरुष शब्द से चतुर्थी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की प्राप्ति होने पर, लिंगान्त अकार को एकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१६) विधिसूत्रम् – धुटि बहुत्वे त्वे।।१४३।।

लिङ्गान्तो कार ए भवति बहुत्वे धुटि परे। पुरुषेभ्यः। तथैव अपादानविवक्षायां शेषाः कर्मेत्यादिना अपादाने पञ्चमी।

अर्थ – बहुवचन सम्बन्धी धुट् परे होने पर लिंगान्त अकार के स्थान पर एकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

धुट्संज्ञक वर्ण – क्, ख्, ग्, घ। च्, छ्, ज्, झ। ट्, ठ्, ड्, ढ। त्, थ्, द्, ध। प्, फ्, ब्, भ। श्, ष्, स्, ह्, ये वर्ण धुट् सञ्ज्ञक होते हैं।

भ्यस् विभक्ति में भकार धुट् सञ्ज्ञक और बहुवचन होने से अकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"पुरुषेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुषेभ्यः – पुरुष शब्द से चतुर्थी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की प्राप्ति थी। परन्तु **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर "पुरुषेभ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पुरुषेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका – "भ्यस्" विभक्ति का आदि भकार घोष संज्ञक तथा धुट्संज्ञक भी है। फिर "अकारो दीर्घं घोषवति" (१४०) सूत्र से दीर्घ क्यों नहीं किया ?

समाधान – आपकी शंका उचित है, परन्तु सामान्य और विशेष विधि में विशेष विधि बलवान् होती है। अतः **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) से दीर्घ करना, सामान्य विधि है। और धुट् परे होने पर एकार आदेश केवल बहुवचन सम्बन्धी विभक्तियों के आने पर ही होता है। एकवचन और द्विवचन सम्बन्धी धुट् होने पर इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी। इतना विशेष जानना चाहिये।

शंका – बहुवचन सम्बन्धी धुट् हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर धुट् परे हो ऐसा नहीं कहते तो "पुरुषाणाम्" यहाँ बहुवचन तो है, परन्तु धुट् नहीं होने से अकार को एकार आदेश नहीं हुआ।

पुरुष शब्द से **"शेषाः कर्मकरणसम्प्रदानापादानस्वाम्याद्यधिकरणेषु"** (१३५) सूत्र से अपादान में पंचमी विभक्ति के एकवचन में ङसि विभक्ति के आने पर, **"योऽनुबन्धोऽप्रयोगी"** (१२६) सूत्र द्वारा ङकार–इकार का अनुबन्ध प्राप्त है, परन्तु सम्पूर्ण "ङसि" के स्थान पर आत् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२१)विधिसूत्रम् – ङसिरात्।।१४४।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङसिराद् भवति। पुरुषात्। द्वित्वबहुत्वयोः पूर्ववत्। दीर्घोच्चारणं किमर्थम्। अकारे लोपे प्राप्ते सति तन्निमित्तम्। पुरुषाभ्याम्। पुरुषेभ्यः। तथैव स्वाम्यादिविवक्षायां शेषाः कर्मेत्यादिना स्वाम्यादौ षष्ठी।

अर्थ – अकारान्त लिंग से परे "ङसि" के स्थान पर "आत्" आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

शंका – सूत्र में "आत्" का ग्रहण क्यों किया अत् के कथन करने से **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर काम चल जाता?

समाधान – आपका प्रश्न ठीक है। परन्तु **"ङसि"** के स्थान पर "अत्" आदेश करने पर **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र से लिंगान्त अकार का लोप हो जाता। लोप होने पर "पुरुषत्" रूप बनता जो कि अशुद्ध है। अतः सूत्रकार ने "आत्" का ग्रहण किया है।

पुरुषात् – पुरुष शब्द से पञ्चमी विभक्ति के एकवचन में "ङसि" विभक्ति के आने पर **"ङसिरात्"** (१४४) सूत्र से ङसि के स्थान पर "आत्" आदेश हो कर "पुरुष + आत्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पुरुष शब्द के अकार को दीर्घ आदेश तथा "आत्" के आकार का लोप हो कर "पुरुषात्" इस स्थिति में **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र से तकार के स्थान पर दकार या तकार आदेश होने पर **"पुरुषात्"**, अथवा **"पुरुषाद्"** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

द्विवचन तथा बहुवचन में पूर्ववत् – पुरुष + भ्याम् = **"पुरुषाभ्याम्"** तथा पुरुष + भ्यस्= **"पुरुषेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

पुरुष शब्द से **"शेषाः कर्मकरणसम्प्रदानापादानस्वाम्याद्यधिकरणेषु"** (१३५) सूत्र से स्वामी आदि (सम्बन्ध आदि) के होने पर, षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङस् विभक्ति के आने पर, **"योऽनुबन्धोऽप्रयोगी"** (१२६) सूत्र द्वारा ङकार का अनुबन्ध प्राप्त है, परन्तु सम्पूर्ण "ङस्" के स्थान पर स्य आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२२)विधिसूत्रम् – ङस् स्यः।।१४५।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङस् स्यो भवति। पुरुषस्य। द्वित्वे, धुटि बहुत्वे त्वे इति वर्त्तते।

अर्थ – अकारान्त लिंग से परे ङस् के स्थान पर स्य आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पुरुषस्य – पुरुष शब्द से षष्ठी विभक्ति के एकवचन में "ङस्" विभक्ति के आने पर **"ङस् स्यः"** (१४५) सूत्र से "ङस्" के स्थान पर स्य आदेश हो कर **"पुरुषस्य"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन की विवक्षा में ओस् विभक्ति आने पर लिंगान्त अकार को एकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२०)विधिसूत्रम् – ओसि च।।१४६।।

लिङ्गान्तो कार ए भवति ओसि च परे। सन्धिः। ए अय्। रेफसोर्विसर्जनीयः। पुरुषयोः। बहुत्वे – पुरुष आम् इति स्थिते। ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्य इति वर्त्तते।

अर्थ – ओस् परे होने पर लिंगान्त अकार को एकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की तथा **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"पुरुष + ओस्" यहाँ उपर्युक्त सूत्र से पुरुष के अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "पुरुषे + ओस्" यहाँ **"ए अय्"** (४८) सूत्र से अय् आदेश कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"पुरुषयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुषयोः – पुरुष शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में "ओस्" विभक्ति के आने पर, "पुरुष + ओस्" इस स्थिति में **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से पुरुष शब्द के अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर, "पुरुषे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से ए के स्थान पर अय् आदेश हो कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "पुरुषयोस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"पुरुषयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुष शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, आम् के लिये नु का आगम करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७२)विधिसूत्रम् – आमि च नुः।।१४७।।

ह्रस्वनदीश्रद्धाशब्देभ्यः परो नुरागमो भवति आमि परे।

अर्थ – आम् परे होने पर ह्रस्व, नदीसंज्ञा, श्रद्धासंज्ञा से परे नु का आगम होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

ह्रस्व – अ, इ, उ, ऋ और ऌ ये वर्ण ह्रस्वसञ्ज्ञक हैं।

नदीसञ्ज्ञा – "ह्रस्वश्च ङवति" (२२१), **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) तथा **"स्त्र्याख्याावियुवौ वामि"** (२३३) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा होती है।

श्रद्धासञ्ज्ञा – "आ श्रद्धा" (२०६) सूत्र से आकारान्त स्त्रीलिंग की श्रद्धा सञ्ज्ञा होती है। ह्रस्व–नदी–श्रद्धा से परे आम् को "नु" का आगम होता है।

शंका – "नु" का आगम आम् के लिये किया है, वह आगम आम् के पूर्व होगा या पर?

समाधान – शंका के निराकरण हेतु अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७)नियमसूत्रम् – तृतीयादौ तु परादिः।।१४८।।

उदनुबन्ध आगमः परादिर्भवति तृतीयादौ विभक्तौ।

अर्थ – तृतीया आदि विभक्ति के परे होने पर उ अनुबन्ध जिसका हुआ है, ऐसा आगम जिसके लिये कहा है, उसके आदि में होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"आगम उदनुबन्धः स्वरादन्त्यात्परः"** (   ) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

भावार्थ – तृतीया विभक्ति के एकवचन से लेकर सप्तमी विभक्ति के बहुवचनान्त के अन्तर्गत जो भी प्रत्यय होंगे, उनमें यदि उकार का अनुबन्ध लोप होता है। तो वह प्रत्यय उस विभक्ति के आदि में होकर, वह उसका ही अवयव हो जायेगा। यथा – पुरुष + आम् – पुरुष + न् आम् – पुरुष + नाम्। अर्थात् "नु" का आगम आम् के लिये कहा है। आम् तृतीयादि टा, भ्याम्, भिस्, ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ङस्, ओस्, ङि, ओस्, सुप् के अन्तर्गत है। अतः नु का आगम आम् के पूर्व हो कर "पुरुष न् आम्" बना।

अब "पुरुष न् आम्" इस स्थिति में लिंगान्त अकार को दीर्घ करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)विधिसूत्रम् – दीर्घमामि सनौ।।१४९।।

ह्रस्वान्तं लिङ्गं दीर्घमापद्यते सनावामि परे। रषृवर्णेत्यादिना णत्वं घोषवति दीर्घः। पुरुषाणाम्। तथैव अधिकरणे सप्तमी। अनुबन्धलोपः। सन्धिः। पुरुषे। द्विवचने पूर्ववत्। पुरुषयोः। बहुत्वे धुटि एत्वं च।

अर्थ – नु परक आम् परे होने पर ह्रस्वान्त लिंग को दीर्घ आदेश होता है।

नोट – संस्कृत टीकाकार ने जो टीका में लिखा है **"घोषवति दीर्घः"** अर्थात् दीर्घ होता है। इस कथन पर एक प्रश्न उठता है।

शंका – **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र किसको दीर्घ करता है लिंगान्त अकार को या लिंगान्त आकार को ?

समाधान – "अकारो दीर्घं घोषवति" (१४०) सूत्र लिंगान्त अकार को दीर्घ करता है।

शंका – "दीर्घमामि सनौ" (१४६) सूत्र से दीर्घ होने पर अब लिंगान्त अकार तो है नहीं, फिर दीर्घ किसको होगा ?

समाधान – "दीर्घमामि सनौ" (१४६) अथवा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) इन दोनों सूत्रों में से किसी एक सूत्र से दीर्घ होगा। युगपत् दो सूत्रों के प्राप्त होने पर, जो सूत्र पर होता है वह लगता है। अतः **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से दीर्घ होने पर **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ नहीं होगा ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र पर है।

नोट – "कातन्त्र–रूपमाला" के क्रमानुसार यह पर सूत्र है। परन्तु **"कलाप–व्याकरण"** में उपर्युक्त सूत्र है ही नहीं।

नोट – "कलाप–व्याकरण" में **"दीर्घमामि सनौ"** (१४०) सूत्र नहीं है। अतः पूर्व और पर का विभाग हो नहीं सकता है। **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र को जो पर कहा है, वह अपनी बुद्धि–अनुसार कहा है।

नियमानुसार "नु" का आगम, आम् का अवयव हो जाने से, नाम का आदि नकार घोषसंज्ञक वर्ण है। अतः **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ होगा। दोनों अवस्थाओं में दीर्घ ही होना है। अतः किसी एक सूत्र से दीर्घ करना चाहिये।

शंका – "दीर्घमामि सनौ" में "सनौ" का ग्रहण क्यों किया ?

समाधान – "दीर्घमामि सनौ" में "सनौ" का ग्रहण होने से पहले "नु" का आगम होगा तत्पश्चात् लिंगान्त को दीर्घ आदेश होगा।

पुरुषाणाम् – पुरुष शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर "पुरुष + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम **"तृतीयादौ तु परादिः"** (१४८) सूत्र के अनुसार हो कर "पुरुष न् आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "पुरुष + नाम्" इस स्थिति में युगपत् **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) तथा **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्रों की प्राप्ति होने पर **"सामान्य–विशेषयोर्विशेषविधिर्बलवान्"** इस परिभाषा के कारण **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर, **"पुरुषाणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुषे – पुरुष शब्द से **"शेषाः कर्मकरणसम्प्रदानापादानस्वाम्याद्यधिकरणेषु"** (१३५) सूत्र से अधिकरण की विवक्षा में सप्तमी विभक्ति के एकवचन में "ङिः" विभक्ति के आने पर, अनुबन्ध लोप हो कर "पुरुष + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश तथा इकार का लोप हो कर **"पुरुषे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् पुरुष + ओस् = **"पुरुषयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पुरुष शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर पकार का अनुबन्ध लोप हो कर, **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "पुरुषे + सु" इस स्थिति में सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२५३)विधिसूत्रम् – नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि।।१५०।।

नामिकरेभ्यः परः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षमापद्यते नुविसर्जनीयषान्तरो पि। पुरुषेषु। नीतकः – पुरुषः पुरुषौ पुरुषाः। हे पुरुष हे पुरुषौ हे पुरुषाः। पुरुषम् पुरुषौ पुरुषान्। पुरुषेण पुरुषाभ्याम् पुरुषैः। पुरुषाय पुरुषाभ्याम् पुरुषेभ्यः। पुरुषात् पुरुषाभ्याम् पुरुषेभ्यः। पुरुषस्य पुरुषयोः पुरुषाणाम्। पुरुषे पुरुषयोः पुरुषेषु। एवं धर्मवीरवेद–वृक्ष–सूर्य–सागर–स्तम्भ–बाण–मृग–दन्त–राघव–मास–पक्ष–शिव–शैल–गुह्यक–व्रात–गण्ड–<u>कटक–पाट</u>–नाग–शङ्कर–घट–पटादयः।।

अर्थ – नामि, ककार तथा रेफ से परे प्रत्यय सम्बन्धी, विकार सम्बन्धी, तथा आगम सम्बन्धी सकार, षकार को प्राप्त होता है, नु, विसर्जनीय और षकार का अन्तर होने पर भी।

अर्थात् –सकार को षकार आदेश नामि, ककार और रेफ से परे होने पर होगा। वह सकार तीन प्रकार का होना चाहिये।

प्रत्यय सम्बन्धी सुप् आदि, विकार सम्बन्धी – एतद् शब्द के तकार को सकार आदेश होकर "एषः" बनेगा। तथा आगम सम्बन्धी–सर्वनाम संज्ञक शब्दों से **"सुरामि सर्वतः"** (१५५) सूत्र से सु का आगम होकर "सर्वेषाम्" प्रयोग बनेगा।

१. **प्रत्यय सम्बन्धी** – सुप् आदि। २. **विकार सम्बन्धी** – एस आदि। तथा ३. **आगम सम्बन्धी** – सर्वेसाम् आदि सकार को नामि, ककार और रेफ तथा सकार के मध्य नु, विसर्ग और षकार का व्यवधान होने पर भी सकार को षकार आदेश हो जायेगा।

सकार को षकार आदेश करने के लिये नामि, ककार और रेफ का होना जरुरी है।

प्रत्यय सम्बन्धी सकार को **नामिपरक** – पुरुषेषु, अग्निषु, वायुषु ग्लौषु, गोषु आदि।

प्रत्यय सम्बन्धी सकार को **ककारपरक** – दिक्षु आदि।

प्रत्यय सम्बन्धी सकार को **रेफपरक** – गीर्षु धूर्षु आदि।

विकार सम्बन्धी सकार को **नामिपरक** –एतद् शब्द से **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२) सूत्र से दकार के स्थान पर अकार आदेश तथा **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र से अकार का लोप होकर, "एत" इस स्थिति में **"तस्य च"** (२८७) सूत्र से तकार के स्थान पर सकार आदेश करने पर "एस" बना। यह विकार सम्बन्धी सकार है, अतः नामि एकार होने के कारण उपर्युक्त सूत्र से सकार को षकार आदेश हो जायेगा।

आगम सम्बन्धी सकार को **नामिपरक** – सर्व शब्द से आम् विभक्ति आने पर **"सुरामि सर्वतः"** (१५५) सूत्र से आम् के लिये सु का आगम कर **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर "सर्वे + साम्" बना। यह आगम सम्बन्धी सकार है, अतः उपर्युक्त सूत्र से सकार को षकार आदेश हो जायेगा।

नामि और सकार के मध्य नु का व्यवधान होने पर – सर्पीं + सि – सर्पींषि, धनूं + सि – धनूंषि।

नामि और सकार के मध्य विसर्ग का व्यवधान होने पर – सुपीः + सु – सुपीःषु, सुतूः + सु – सुतूःषु।

नामि और सकार के मध्य षकार का व्यवधान होने पर – सर्पिष् + सु – सर्पिष्षु, धनुष् + षु – धनुष्षु।

अपि शब्द से समास आदि में भी जानना चाहिये। यथा – अङ्गुलेः सङ्गस्य – अङ्गुलिषङ्गः।

पुरुषेषु – पुरुष शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप हो कर "पुरुष + सु" इस स्थिति में **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "पुरुषे + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"पुरुषेषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – पुरुष शब्द की सिद्धि सूत्रों सहित कण्ठस्थ कर लेना चाहिये।

पुरुष (आत्मा) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	पुरुषः	पुरुषौ	पुरुषाः
सम्बोधन	हे पुरुष	हे पुरुषौ	हे पुरुषाः
द्वितीया	पुरुषम्	पुरुषौ	पुरुषान्
तृतीया	पुरुषेण	पुरुषाभ्याम्	पुरुषैः
चतुर्थी	पुरुषाय	पुरुषाभ्याम्	पुरुषेभ्यः
पञ्चमी	पुरुषात्, पुरुषाद्	पुरुषाभ्याम्	पुरुषेभ्यः
षष्ठी	पुरुषस्य	पुरुषयोः	पुरुषाणाम्
सप्तमी	पुरुषे	पुरुषयोः	पुरुषेषु

नोट – उपर्युक्त सातों विभक्तियों का एक साथ उल्लेख दिगम्बर जैनाचार्य प्रतिक्रमण पाठ में वीर शब्द तथा धर्म शब्द के साथ सुव्यवस्थित कथन करते हैं।

वीरः सर्व–सुरा सुरेन्द्र–महितो, वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्म–निचयो, वीराय भक्त्या नमः।
वीरात् तीर्थमिदं प्रवृत्त–मतुलं, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीद्युतिकान्तिकीर्तिधृतयो, हे वीर भद्रं त्वयि।।

धर्मः सर्व–सुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव–सुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भव–भृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म मां पालय।।

इसी प्रकार धर्म, वीर, वेद, वृक्ष, सूर्य, सागर, स्तम्भ, बाण, मृग, दन्त, राघव, मास, पक्ष, शिव, शैल, गुह्यक, व्रात, गण्ड, कटक, पाट, नाग, शंकर, घट, पट आदि के रूप जानना चाहिये।

नोट – उपर्युक्त शब्दों के साथ रेफ, षकार, ऋवर्ण के अभाव में अथवा चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा ल, श, स के व्यवधान में नकार को णकार आदेश नहीं होगा।

यथा – स्तम्भ, बाण, मास आदि में रेफ आदि नहीं होने पर नकार को णकार नहीं होगा। तथा व्रात में रेफ तो है परन्तु तकार का व्यवधान होने से णकार आदेश नहीं होगा। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

नोट – इस नियम को अच्छे से हृदयंगम कर लेना चाहिए।

अब पद संज्ञा करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(१.२०)सञ्ज्ञासूत्रम् – पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम्।।१५१।।

तयोः प्रकृतिविभक्त्योरर्थोपलब्धौ सत्यां समुदायस्य पदसञ्ज्ञा भवति। पूर्वपरयोरिति को र्थः। प्रकृतिविभक्त्योरित्यर्थः। प्रकृतयः काः। पुरुषादि शब्दा भूप्रभृतयो धातवश्च प्रकृतयो भवन्ति। विभक्तयः काः। स्यादिस्त्यादिश्च। एवं विभक्त्यन्तानां सर्वत्र पदसञ्ज्ञा भवति। सर्वशब्दस्य क्वचिद्विशेषः। सर्वः सर्वौ। जसि–सर्वनाम्न इति वर्तते।

अर्थ – पूर्व और पर का क्या अर्थ है ? प्रकृति और विभक्ति के अर्थ को बताने के लिये पूर्व और पर कहा है।

शंका – प्रकृति किसे कहते हैं ?
समाधान – पुरुष आदि शब्द तथा भू आदि धातुओं को प्रकृति कहते हैं।

शंका – विभक्ति किसे कहते हैं ?
समाधान – सि, औ, जस् तथा ति तस् अन्ति को विभक्ति कहते हैं।

सूत्रार्थ – प्रकृति और विभक्ति के अर्थ की उपलब्धि होने पर समुदाय की पदसञ्ज्ञा होती है।

इस प्रकार विभक्ति के अन्त की सर्वत्र पदसञ्ज्ञा होती है।

अर्थात् पुरुष आदि शब्दों से सि आदि विभक्तियाँ आने पर "पुरुषः", "पुरुषौ" ये जो रूप बन जाते हैं। इस विभक्ति सहित वाक्य की पद सञ्ज्ञा होती है। इसी प्रकार भू आदि धातुओं से "भवति" आदि बनने पर पद सञ्ज्ञा होती है।

अकारान्त सर्वशब्द में कुछ विशेषता है। "सर्व" शब्द सर्वनाम सञ्ज्ञक है। सर्वनाम सञ्ज्ञा अन्वर्थ अर्थात् अर्थानुसारी है – **"सर्वेषां नामानि सर्वनामानि"**। सर्वनाम सञ्ज्ञक शब्दों की विभक्तियाँ में जहाँ परिवर्तन होता है। उनका सूत्रों द्वारा उल्लेख क्रमशः होगा।

सर्वादिगण के अकारान्त शब्दों का प्रायः "जस्, ङे, ङसि, आम् और ङि" इन पांच विभक्तियों में पुरुष शब्द की अपेक्षा अन्तर होता है। शेष विभक्तियों में पुरुष शब्दवत् रूप बनते हैं। पुरुष शब्द में जिन सूत्रों का प्रयोग हुआ है, उन सूत्रों का प्रयोग यहाँ भी होगा। अतः उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ओकारे औ औकारे च"** (४०), **"ए अय्"** (४८), **"धुड् व्यञ्जनमनन्तःस्थानुनासिकम्"** (७५), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"जसि"** (१३१), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"अकारे लोपम्"** (१३६), **"शसि सस्य च नः"** (१३७), **"इन टा"** (१३८), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३९), **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०), **"भिसैस्वा"** (१४१), **"ङेर्यः"** (१४२), **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३), **"ङसिरात्"** (१४४), **"ङस् स्यः"** (१४५), **"ओसि च"** (१४६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४९), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"वा विरामे"** (२४२)।

पुरुष शब्द से जैसे सि आदि विभक्तियाँ आती हैं, उसी प्रकार सर्व शब्द से सि आदि विभक्तियों को लाना चाहिये।

सर्वशब्द का अर्थ "सब" अर्थात् समूचा समुदाय है। समुदाय दो प्रकार का होता है – (१) उद्भूतावयव (२) अनुद्भूतावयव। जहाँ वक्ता का अभिप्राय समुदाय कहने के साथ–साथ तदन्तकार्य व्यक्तियों से भी हुआ करता है वहाँ उद्भूतावयव समुदाय होता है। जहाँ वक्ता की केवल समुदाय कहने की इच्छा होती है वहाँ अनुद्भूतावयव समुदाय होता है। अतः अनुद्भूतावयवसमुदाय की विवक्षा में एकवचन और उद्भूतावयव की विवक्षा में द्विवचन और बहुवचन होगा।

सर्व आदि शब्दों की "सर्वनाम" सञ्ज्ञा **"लोकोपचाराद्ग्रहणसिद्धिः"** (२२) सूत्र की सहायता से की गई है।

सर्वः – सर्व शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर "सर्व + सि" इस स्थिति में अनुबन्धलोप हो कर सर्व + स् इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सर्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वौ – सर्व शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "सर्व + औ" इस स्थिति में **"ओकारे औ औकारे च"** (४०) सूत्र से सर्व के अकार के स्थान पर औकार तथा औकार का लोप हो कर **"सर्वौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्व शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, जस् के स्थान पर इकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.३०) विधिसूत्रम् – जस् सर्व इः।।१५२।।

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो जस् सर्व इर्भवति। सर्वे। हे सर्व। हे सर्वौ। हे सर्वे। सर्वम्। सर्वौ। सर्वान्। सर्वेण। सर्वाभ्यां। सर्वैः। ङयि।

अर्थ – अकारान्त सर्वनाम से परे सम्पूर्ण जस् के स्थान पर इ आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"सर्व + जस्" इस स्थिति में उपर्युक्त सूत्र से जस् के स्थान पर "इकार" आदेश कर, सन्धि करने पर **"सर्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वे– सर्व शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर "सर्व + जस्" इस स्थिति में **"जस् सर्व इः"** (१५२) सूत्र से जस् के स्थान पर "इ" आदेश कर, "सर्व + इ" इस स्थिति में, **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सर्व के अकार के स्थान पर एकार तथा इकार का लोप हो कर **"सर्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका – अकारान्त सर्वनामसञ्ज्ञक हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर अकारान्त सर्वनामसञ्ज्ञक शब्द नहीं कहते तो स्त्रीलिंग में आकारान्त "सर्वा" शब्द से भी जस् के स्थान पर "इ" आदेश हो जाता।

आमन्त्रण की विवक्षा में **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सम्बुद्धिसञ्ज्ञक सि का लोप हो कर **"हे सर्व"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन तथा बहुवचन में पूर्ववत् **"हे सर्वौ"** तथा **"हे सर्वे"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सर्वम्– सर्व शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र की प्राप्ति होने पर **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र से लिंगान्त अकार का लोप हो कर, "सर्व् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"सर्वम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वान् – सर्व शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में "शस्" विभक्ति के आने पर **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६) सूत्र से शस् के शकार का अनुबन्ध लोप होने पर, "सर्व + अस्" इस स्थिति में **"शसि सस्य च नः"** (१३७) सूत्र से सर्व के अकार को दीर्घ तथा सकार के स्थान पर नकार आदेश हो कर, "सर्वा + अन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पुनः दीर्घ आदेश तथा पर का लोप करने पर **"सर्वान्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वेण – सर्व शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"इन टा"** (१३८) सूत्र से टा के स्थान पर "इन" आदेश हो कर, "सर्व + इन" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश तथा इकार का लोप हो कर **"सर्वेन"** इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"सर्वेण"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वाभ्याम् – सर्वा शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से अकार को दीर्घ हो कर **"सर्वाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वैः – सर्व शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की प्राप्ति होने पर **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र से भिस् के स्थान पर "ऐस्" आदेश हो कर "सर्व + ऐस्" इस स्थिति में **"एकारे ऐ ऐकारे च"** (३७) सूत्र से अकार के स्थान पर ऐकार आदेश तथा ऐस् के ऐकार का लोप हो कर "सर्वैस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सर्वैः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्व शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर "सर्व + ङे" इस स्थिति में **"ङेर्यः"** (१४२) सूत्र की प्राप्ति थी, परन्तु ङे के स्थान पर स्मै आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२५)विधिसूत्रम् – स्मै सर्वनाम्नः ।।१५३ ।।

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङे स्मै भवति। सर्वस्मै। सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः। ङसौ।

अर्थ – अकारान्त सर्वनाम से परे सम्पूर्ण ङे के स्थान पर स्मै आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

सर्व शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "ङे" के स्थान पर उपर्युक्त सूत्र से "स्मै" आदेश करने पर **"सर्वस्मै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वस्मै – सर्व शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "सर्व + ङे" इस स्थिति में **"ङेर्यः"** (१४२) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"स्मै सर्वनाम्नः"** (१५३) सूत्र से ङे के स्थान पर "स्मै" आदेश हो कर **"सर्वस्मै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वेभ्यः – सर्व शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सर्वेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्व शब्द से पञ्चमी विभक्ति के एकवचन में "ङसि" विभक्ति के आने पर "सर्व + ङसि" इस स्थिति में **"ङसिरात्"** (१४४) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु ङसि के स्थान पर स्मात् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२६)विधिसूत्रम् – ङसिः स्मात्।।१५४।।

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङसिः स्माद् भवति। सर्वस्मात्। सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः। सर्वस्य। सर्वयोः।

अर्थ – अकारान्त सर्वनाम से परे सम्पूर्ण "ङसि" के स्थान पर "स्मात्" आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

सर्व शब्द से "ङसि" विभक्ति के आने पर, ङसि के स्थान पर "स्मात्" आदेश करने पर, **सर्वस्मात्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वस्मात् – सर्व शब्द से पञ्चमी विभक्ति के एकवचन में "ङसि" विभक्ति के आने पर, "सर्व + ङसि" इस स्थिति में **"ङसिरात्"** (१४४) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"ङसिः स्मात्"** (१५४) सूत्र से ङसि के स्थान पर "स्मात्" आदेश हो कर **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र से तकार के स्थान पर दकार अथवा तकार आदेश हो कर **"सर्वस्माद्–सर्वस्मात्"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सर्वस्य – सर्व शब्द से षष्ठी विभक्ति के एकवचन में "ङस्" विभक्ति के आने पर "सर्व + ङ्स्" इस स्थिति में **"ङस् स्यः"** (१४५) सूत्र से ङस् के स्थान पर "स्य" आदेश हो कर **"सर्वस्य"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वयोः – सर्व शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में "ओस्" विभक्ति के आने पर "सर्व + ओस्" इस स्थिति में **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "सर्वे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से "एकार" के स्थान पर अय् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "सर्वयोस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सर्वयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्व शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु के आगम की प्राप्ति थी परन्तु सर्वनाम सञ्ज्ञक शब्दों को सु का आगम करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२६)विधिसूत्रम् – सुरामि सर्वतः।।१५५।।

सर्वनाम्नः परः सुरागमो भवत्यामि परे। धुटि एत्वम्। नामिकरपरेत्यादिना षत्वम्। सर्वेषाम्। ङौ।

अर्थ – आम् परे होने पर सर्वनाम से परे सु का आगम होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की तथा **"स्मै सर्वनाम्नः"** (१५३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

सु के उ का अनुबन्धलोप हो जाता है।

उकार का अनुबन्ध लोप होने पर **"तृतीयादौ तु परादिः"** (१४८) सूत्र की सहायता से आम् के आदि में सु का आगम हो जायेगा।

शंका – सूत्र में "सर्वतः" पद का ग्रहण किस लिये किया है।

समाधान – "सर्वतः" पद का ग्रहण होने से सर्वनामसञ्ज्ञक अकारान्त पुल्लिंग और नपुंसकलिंग तथा आकारान्त स्त्रीलिंग आदि सभी लिंगों में आम् के होने पर सु का आगम जायेगा।

सर्वेषाम् – सर्व शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु के आगम की प्राप्ति होने पर, उसके अपवाद स्वरूप, **"सुरामि सर्वतः"** (१५५) सूत्र से सु का आगम करने पर, उकार का अनुबन्धलोप हो कर "सर्व + साम्" इस स्थिति में साम् का आदि सकार धुट्संज्ञक है तथा बहुवचन भी, अतः **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर "सर्वे + साम्" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"सर्वेषाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्व शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में "ङि" विभक्ति के आने पर **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र की प्राप्ति थी, परन्तु ङि के स्थान पर स्मिन् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२७)विधिसूत्रम् – ङिः स्मिन्।।१५६।।

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङिः स्मिन् भवति। सर्वस्मिन्। सर्वयोः। सर्वेषु।। नीतकः – सर्वः, सर्वौ, सर्वे। हे सर्व, हे सर्वौ, हे सर्वे। सर्वम्, सर्वौ, सर्वान्। सर्वेण, सर्वाभ्याम्, सर्वैः। सर्वस्मै, सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः। सर्वस्मात्, सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः। सर्वस्य, सर्वयोः, सर्वेषाम। सर्वस्मिन्, सर्वयोः, सर्वेषु। किं तत्सर्वनाम। सर्व–विश्व–उभ–उभय–अन्य–अन्यतर–अन्यतम–इतर–इतम–कतर–कतम–यतर–यतम–ततर–ततम–एकतर–एकतम (एते डतरडतमप्रत्ययान्ताः। वृत्।) त्व–नेम–सम–सिम–पूर्व–पर–अवर–दक्षिण–उत्तर–अपर–अधर–स्वअन्तर (वृत्) त्यद्, तद्, यद्, अदस्, इदम्, एतद्, किम्, एक, द्वि, युष्मद्–अस्मद्–भवत्–इति सर्वादि। अल्पशब्दस्य तु भेदः। अल्पः। अल्पौ। जसि।

अर्थ – अकारान्त सर्वनाम से परे "ङि" के स्थान पर स्मिन् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की तथा **"स्मै सर्वनाम्नः"** (१५३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

सर्वस्मिन् – सर्व शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र की प्राप्ति थी, परन्तु **"ङिः स्मिन्"** (१५६) सूत्र से ङि के स्थान पर स्मिन् आदेश हो कर **"सर्वस्मिन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वेषु – सर्व शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर "सर्वे + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"सर्वेषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्व शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्माद, सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

इसी प्रकार – **विश्व** = सम्पूर्ण/सब, **उभ** = दोनों, (यह सदा द्विवचनान्त ही प्रयुक्त होता है।), **उभय** = दो अवयवों वाला (इसका प्रयोग द्विवचन में नहीं होता), **अन्य** = दूसरा, **अन्यतर** = दो में से एक, **अन्यतम** = बहुतों में से एक, (पुरुषवत्) **इतर** = भिन्न,

इतम = ________, **कतर** – दो में कौन, **कतम** = बहुतों में कौन, **यतर** = दो में जो, **यतम** = बहुतों में जो, **ततर** = दो में वह, **ततम** – बहुत में वह/बहुतों में कौन, **एकतर** – दो में एक, **एकतम** – बहुतोंमें एक, **स्व** = आप् और अपना, **त्व** = भिन्न, **नेम** = अर्ध (आधा), **सम** = सब/तुल्य, (सब अर्थ में सर्वनाम संज्ञा, तुल्य अर्थ में नहीं), **सिम** = सब, **पूर्व** = पूर्व दिशा स्थित – पूर्वकाल/दिशा–विशेष (काशी पूर्वा। कुतः? प्रयागातः। यहाँ "पूर्वा" शब्द का अर्थ पूर्वदिशास्थित काशी देश है। काशी किससे पूर्व है? काशी प्रयाग से पूर्व है। पूर्वे रावणादयः।

केभ्यः ? कंसादिभ्यः। यहाँ "पूर्व" शब्द का अर्थ पूर्वकालस्थित रावण आदि व्यक्ति हैं। रावण आदि किससे पूर्व हैं? कंस आदि से पूर्व है। पूर्वस्यां रविरुदेति। यहाँ "पूर्व" शब्द का अर्थ दिशा–विशेष है। दिशा विशेषों का संकेत सुमेरुपर्वत की अपेक्षा से अनादिकाल से चला आ रहा है।

पूर्वादि शब्द तीन प्रकार के हैं – (१) देशवाची, यथा– काशी पूर्वा। (२) कालवाची, यथा – पूर्वे रावणादयः। (३) दिशावाची, यथा – पूर्वस्यां रविरुदेति।

पूर्व = प्रथम आदि, **पर** = दूसरा आदि, **अवर** = न्यून आदि, **दक्षिण** = दाहिना आदि, **उत्तर** = अगला आदि, **अपर** = दूसरा आदि, **अधर** = नीचा आदि।

स्व = आत्मा/आत्मीय, (स्वशब्द के चार अर्थ होते हैं – (१) आत्मा–खुद अथवा स्वयम्) (२) आत्मीय–खुद का, अपना), (३) ज्ञाति – बान्धव, रिश्तेदार, (४) धान। प्रथम दो अर्थों में स्वशब्द की सर्वनाम सञ्ज्ञा होती है। अन्तिम दो अर्थों में नहीं।)

अन्तर = बाह्य या परिधानीय, **प्रथम** = पहला, **चरम** = अन्तिम, **द्वितय** = दो अवयवों वाला/जोड़ा, **अल्प** = थोड़ा, **अर्ध** = आधा, **कतिपय** = कुछ और **नेम** = आधा, **द्वितीया** = दूसरा, **तृतीया** = तीसरा (ये दोनों शब्द ङवन्ति में विकल्प से सर्वनामसञ्ज्ञक होते हैं।), **त्यद्** = जो, **तद्** = वह, **यद्** = जो, **अदस्** – वह, **इदम्** – यह, **एतद्** = यह, **किम्** = कौन, **एक** = एक, **द्वि** = दो, **युष्मद्** = तुम, **अस्मद्** = मैं, **भवत्** = आप, ये सभी सर्वादिगण के शब्द हैं। इन सभी के रूप समान चलते हैं। कोई – कोई शब्द विसदृश भी चलते हैं। उन शब्दों को यथास्थान उल्लेख करेंगे।

विश्व आदि शब्दों के रूप भी सर्व शब्द की तरह जानना चाहिये।

नोट –"सर्वनाम" सञ्ज्ञक शब्दों में सम्बोधन नहीं होता है। परन्तु वृत्तिकार ने सम्बोधन का उल्लेख किया है।

अल्प शब्द में कुछ विशेषता है। अल्प शब्द सर्वनामसञ्ज्ञक नहीं है। अतः इसके प्रयोग पुरुष शब्द के समान सिद्ध होंगे। परन्तु जस् विभक्ति में सर्व के समान "पूर्वे" प्रयोग विकल्प से सिद्ध होगा। विकल्प के अभाव में पुरुषवत् "पूर्वाः" प्रयोग सिद्ध होगा। शेष सभी प्रयोग पुरुषवत् सिद्ध होगें। अतः उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ओकारे औ औकारे च"** (४०), **"ए अय्"** (४८) **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"जसि"** (१३१), **"आमन्त्रणे च"** (१३२), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः**

सिर्लोपम्" (१३४), **"अकारे लोपम्"** (१३६), **"शसि सस्य च नः"** (१३७), **"इन टा"** (१३८), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०), **"भिसैस्वा"** (१४१), **"ङेर्यः"** (१४२), **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३), **"ङसिरात्"** (१४४), **"ङस् स्यः"** (१४५), **"ओसि च"** (१४६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"तृतीयादौ तु परादिः"** (१४८), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"वा विरामे"** (२४२)।

अल्पः – अल्प शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय हो कर **"अल्पः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पौ – अल्प शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"ओकारे औ औकारे च"** (४०) सूत्र से सन्धि करने पर **"अल्पौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्प शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, सर्वप्रथम **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ की, **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र से अकार लोप की, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से पुनः दीर्घ की तथा **"जसि"** (१३१) सूत्र से पुनः दीर्घ की इत्यादि सूत्रों की क्रमशः प्राप्ति होने पर, जस् के स्थान पर वैकल्पिक इकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.३१)विधिसूत्रम् – अल्पादेर्वा ।।१५७।।

अल्पादेर्गणात्परो जस् सर्व इर्भवति वा। अल्पे, अल्पाः। अन्यत्र पुरुषशब्दवत्। को ल्पादिर्गणः। अल्प–प्रथम–चरम–त्रितय–द्वय–त्रय (एते तयअयप्रत्ययान्ताः) कतिपय–नेम–अर्द्ध–पूर्व–पर–अवर–दक्षिण–उत्तर–अपर–अधर–स्व–अन्तर (वृत्) इति अल्पादिः। पूर्वशब्दस्य तु भेदः। पूर्वः, पूर्वौ, पूर्वे, पूर्वाः। हे पूर्व, हे पूर्वौ, हे पूर्वे, हे पूर्वाः। पूर्वम्, पूर्वौ, पूर्वान्। पूर्वेण, पूर्वाभ्याम्, पूर्वैः। पूर्वस्मै, पूर्वाभ्याम्, पूर्वेभ्यः। ङसिङ्यो।

अर्थ – अल्प आदि शब्द से परे सम्पूर्ण जस् के स्थान पर विकल्प से "इ" आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की तथा **"जस् सर्व इः"** (१५२) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

विकल्प के अभाव में, पुरुष शब्दवत् दीर्घ आदेश हो कर, **"अल्पाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका – "अल्पादि" गण किसे कहते हैं ?

समाधान– अल्प, प्रथम, चरम, त्रितय, द्वय, त्रय (ये तय और अय प्रत्ययान्त शब्द हैं।) कतिपय, नेम, अर्द्ध, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर इत्यादि शब्द अल्प आदि कहलाते हैं।

अल्प आदि शब्दों के प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में **"अल्पे"** तथा **"अल्पाः"** ये दो रूप बनते हैं।

अल्पे, अल्पाः – अल्प शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, **"अल्पादेर्वा"** (१५७) सूत्र द्वारा जस् के स्थान पर विकल्प से "इ" आदेश हो कर "अल्प + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा इकार का लोप हो कर **"अल्पे"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"जसि"** (१३१) सूत्र से दीर्घ आदेश कर, "अल्पा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पुनः दीर्घ कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अल्पाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीया आदि विभक्तियों में पुरुषवत् प्रयोग सिद्ध होते हैं। परन्तु अल्प शब्द में रेफ, षकार तथा ऋकार नहीं होने से तृतीया और षष्ठी विभक्ति सम्बन्धी नकार को णकार आदेश नहीं होगा।

हे अल्प – अल्प शब्द से आमन्त्रण अर्थ में प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "अल्प + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे च"** (१३२) सूत्र से **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा हो कर **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप हो कर **"हे अल्प"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् "अल्प + औ" – **"हे अल्पौ"** तथा "अल्प + जस्" – **"हे अल्पाः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

अल्पम्– अल्प शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"अकारे लोपम्"**

(१३६) सूत्र से लिंगान्त अकार का लोप हो कर, "अल्प् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पुरुषम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पान् – अल्प शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में "शस्" विभक्ति के आने पर, "अल्प + अस्" इस स्थिति में **"शसि सस्य च नः"** (१३७) सूत्र से अकार को दीर्घ तथा सकार के स्थान पर नकार आदेश हो कर, "अल्पा + अन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पुनः दीर्घ तथा पर का लोप करने पर **"अल्पान्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पेन – अल्प शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"इन टा"** (१३८) सूत्र से टा के स्थान पर "इन" आदेश कर, "अल्प + इन" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार तथा इकार का लोप हो कर **"अल्पेन"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पाभ्याम् – अल्प शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से अकार को दीर्घ हो कर **"अल्पाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पैः – अल्प शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र से भिस् के स्थान पर "ऐस्" आदेश कर "अल्प + ऐस्" इस स्थिति में **"एकारे ऐ ऐकारे च"** (३७) सूत्र से सन्धि कर, "पुरुषैस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अल्पैः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पाय – अल्प शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में "ङे" विभक्ति के आने पर, **"ङेर्यः"** (१४२) सूत्र से "ङे" के स्थान पर "य" आदेश कर, "अल्प + य" इस स्थिति में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से लिंगान्त अकार को दीर्घ हो कर **"अल्पाय"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पेभ्यः – अल्प शब्द से चतुर्थी–पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की प्राप्ति थी। परन्तु **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर "अल्पेभ्यस्" इस स्थिति में

"रेफसोर्विसर्जनीयः" (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"अल्पेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पात् – अल्प शब्द से पञ्चमी विभक्ति के एकवचन में "ङसि" विभक्ति के आने पर, **"ङसिरात्"** (१४४) सूत्र से ङसि के स्थान पर "आत्" आदेश कर, "पुरुष + आत्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से सन्धि कर, "अल्पात्" इस स्थिति में **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र से तकार के स्थान पर दकार या तकार आदेश होने पर **"पुरुषात्"**, अथवा **"पुरुषाद्"** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

अल्पस्य – अल्प शब्द से षष्ठी विभक्ति के एकवचन में "ङस्" विभक्ति के आने पर, **"ङस् स्यः"** (१४५) सूत्र से "ङस्" के स्थान पर स्य आदेश हो कर **"अल्पस्य"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पयोः – अल्प शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में "ओस्" विभक्ति के आने पर, "अल्प + ओस्" इस स्थिति में **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से अल्प शब्द के अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर, "अल्पे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"अल्पयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पानाम् – अल्प शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "अल्प + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "पुरुष + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से दीर्घ करने पर, **"अल्पानाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पे – अल्प शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में "ङिः" विभक्ति के आने पर, अनुबन्ध लोप हो कर "पुरुष + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश तथा इकार का लोप हो कर **"अल्पे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पेषु – अल्प शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप हो कर "अल्प + सु" इस स्थिति में **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "अल्पे + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः**

प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि" (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"अल्पेषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्प शब्द की रूपमाला यथा –

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	अल्पः	अल्पौ	अल्पे, अल्पाः
सम्बोधन	हे अल्प	हे अल्पौ	हे अल्पे, हे अल्पाः
द्वितीया	अल्पम्	अल्पौ	अल्पान्
तृतीया	अल्पेन	अल्पाभ्याम्	अल्पैः
चतुर्थी	अल्पाय	अल्पाभ्याम्	अल्पेभ्यः
पञ्चमी	अल्पात्, अल्पाद्	अल्पाभ्याम्	अल्पेभ्यः
षष्ठी	अल्पस्य	अल्पयोः	अल्पानाम्
सप्तमी	अल्पे	अल्पयोः	अल्पेषु

इसी प्रकार प्रथम, चरम आदि के रूप जानना चाहिये।

किन्तु पूर्व आदि शब्दों में कुछ विशेषता है। पूर्व आदि शब्द सर्वनामसंज्ञक हैं। अतः सर्व शब्द में प्रयोग हुये सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ओकारे औ औकारे च"** (४०), **"ए अय्"** (४८), **"धुड् व्यञ्जनमनन्तःस्थानुनासिकम्"** (७५), **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"जसि"** (१३१), **"आमन्त्रणे च"** (१३२), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"शेषाः कर्मकरणसम्प्रदानापादानस्वाम्याद्यधिकरणेषु"** (१३५), **"अकारे लोपम्"** (१३६), **"शसि सस्य च नः"** (१३७), **"इन टा"** (१३८), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३९), **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०), **"भिसैस्वा"** (१४१), **"ङेर्यः"** (१४२), **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३), **"ङसिरात्"** (१४४), **"ङस् स्यः"** (१४५), **"ओसि च"** (१४६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"तृतीयादौ तु परादिः"** (१४८), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४९), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"जस् सर्व इः"** (१५२), **"स्मै सर्वनाम्नः"** (१५३), **"ङसिः स्मात्"** (१५४), **"सुरामि सर्वतः"** (१५५), **"ङिः स्मिन्"** (१५६), **"वा विरामे"** (२४२)।

पूर्वादि शब्द अल्पादि शब्दों में भी कहें हैं। अतः जस् विभक्ति में विकल्प रहेगा। पंचमी तथा सप्तमी विभक्ति में विकल्प रहेगा। अतः प्रथमा, पंचमी तथा सप्तमी विभक्ति में पुरुषवत् तथा सर्ववत् दो – दो प्रयोग रहेंगे।

प्रथमा विभक्ति से तृतीया विभक्ति तक "अल्प" शब्द के समान रूप जानना चाहिये। चतुर्थी विभक्ति में सर्व शब्दवत् प्रयोग जानना चाहिये। पंचमी और सप्तमी के एकवचन में अल्प और सर्वशब्द के समान प्रयोग जानना चाहिये।

पूर्व शब्द में रेफ होने के कारण तृतीया विभक्ति के एकवचन में तथा षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में नकार को **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से णकार आदेश हो जायेगा।

पूर्वः – पूर्व शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में **"तस्मात्परा विभक्तयः"** (१२६) सूत्र से सि विभक्ति के आने पर, **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६) सूत्र द्वारा सि के इकार का अनुबन्धलोप हो कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय हो कर **"पूर्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वौ – पूर्व शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"ओकारे औ औकारे च"** (४०) सूत्र से पूर्व के अकार के स्थान पर औकार तथा औकार का लोप हो कर "पूर्व् औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पूर्वौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वे, पूर्वाः – पूर्व शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६) सूत्र से जस् के जकार का अनुबन्ध लोप कर, "पूर्व + अस्" इस स्थिति में, **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु विशेष, **"अकारे लोपम्"** (१३६) तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) दोनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्"** इस परिभाषा के अनुसार **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"लोपस्वरादेशयोः स्वरादेशो विधिर्बलवान्"** इस परिभाषा के कारण, **"एकदेशविकृतमनन्यवत्"** परिभाषा के माध्यम से **"अल्पादेर्वा"** (१५७) सूत्र द्वारा जस् के स्थान पर विकल्प से "इ" आदेश हो कर "पूर्व + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा इकार का लोप हो कर **"अल्पे"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"जसि"** (१३१) सूत्र से दीर्घ आदेश

कर, "पूर्वा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पुनः दीर्घ कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पूर्वाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे पूर्व – पूर्व शब्द से आमन्त्रण अर्थ में **"आमन्त्रणे च"** (१३२) सूत्र से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "पूर्व + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा हो कर **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप हो कर **"हे पूर्व"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् "पूर्व + औ" – **"हे पूर्वौ"** तथा "पूर्व + जस्" – **"हे पूर्वे, हे पूर्वाः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

पूर्वम्– पूर्व शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र से लिंगान्त अकार का लोप हो कर, "पूर्व् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पूर्वम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वान् – पूर्व शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में "शस्" विभक्ति के आने पर **"यो नुबन्धो प्रयोगी"** (१२६) सूत्र से शस् के शकार का अनुबन्ध लोप होने पर, "पूर्व + अस्" इस स्थिति में **"शसि सस्य च नः"** (१३७) सूत्र से पूर्व के अकार को दीर्घ तथा सकार के स्थान पर नकार आदेश हो कर, "पूर्वा + अन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पुनः दीर्घ तथा पर का लोप करने पर **"पूर्वान्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वेण – पूर्व शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"इन टा"** (१३८) सूत्र से टा के स्थान पर "इन" आदेश कर, "पूर्व + इन" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार तथा इकार का लोप हो कर **"पूर्वेन"** इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३९) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"पूर्वेण"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वाभ्याम्– पूर्व शब्द से तृतीया–चतुर्थी–पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से अकार को दीर्घ हो कर **"पूर्वाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वैः – पूर्व शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र से भिस् के स्थान पर "ऐस्" आदेश कर "पूर्व + ऐस्" इस स्थिति में **"एकारे ऐ ऐकारे च"** (३७) सूत्र से अकार के स्थान पर ऐकार आदेश कर तथा ऐस् के ऐकार का लोप कर "पूर्वैस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पूर्वैः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वस्मै – पूर्व शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "पूर्व + ङे" इस स्थिति में **"ङेर्यः"** (१४२) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"स्मै सर्वनाम्नः"** (१५३) सूत्र से ङे के स्थान पर "स्मै" आदेश हो कर **"पूर्वस्मै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वेभ्यः – पूर्व शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पूर्वेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्व शब्द से पंचमी – सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङसि – ङि विभक्ति के आने पर, **"ङसिरात्"** (१४४), **"ङसि स्मात्"** (१५६) तथा **"ङि स्मिन्"** (१५६), सूत्र की प्राप्ति होने पर, ङसि–ङि के स्थान पर वैकल्पिक स्मात्–स्मिन् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२८) विधिसूत्रम् – विभाष्येते पूर्वादेः ।।१५८।।

पूर्वादेर्गणात्परयोर्ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ विभाष्येते। पूर्वस्मात् पूर्वात्। पूर्वाभ्याम्। पूर्वेभ्यः। पूर्वस्य। पूर्वयोः। पूर्वेषाम्। ङौ तथैव विकल्पः। पूर्वस्मिन, पूर्वे। पूर्वयोः। पूर्वेषु। कः पूर्वादिः। प्रागेवोक्तः। इत्यकारान्ताः। आकारान्तः पुल्लिङ्गं क्षीरपाशब्दः । ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ। क्षीरपाः। क्षीरपौ। क्षीरपाः। सम्बुद्धाववविशेषः। क्षीरपाम्। क्षीरपौ। शसादौ तु विशेषः।

अर्थ – पूर्वादि गण से परे ङसि और ङि के स्थान पर क्रमशः स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प से होते हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१२५) सूत्र की, **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र की तथा **"स्मै सर्वनाम्नः"** (१५३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर इत्यादि शब्द पूर्व आदि कहे गये हैं।

पूर्वस्मात्, पूर्वात् – पूर्व शब्द से पञ्चमी विभक्ति के एकवचन में ङसि विभक्ति के आने पर, **"ङसिरात्"** (१४४) सूत्र की तथा **"ङसिः स्मात्"** (१५४) सूत्र की युगपत् प्राप्ति थी। परन्तु **"विभाष्येते पूर्वादेः"** (१५८) सूत्र से ङसि के स्थान पर विकल्प से स्मात् आदेश हो कर, **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र से तकार के स्थान पर दकार अथवा तकार आदेश हो कर **"पूर्वस्माद्–पूर्वस्मात्"** प्रयोग सिद्ध होते हैं। विकल्प के अभाव में **"ङसिरात्"** (१४४) सूत्र से ङसि के स्थान पर, आत् आदेश कर, **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र से तकार के स्थान पर दकार अथवा तकार आदेश हो कर **"पूर्वाद्–पूर्वात्"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

पूर्वस्य – पूर्व शब्द से षष्ठी विभक्ति के एकवचन में "ङस्" विभक्ति के आने पर, **"ङस् स्यः"** (१४५) सूत्र से "ङस्" के स्थान पर स्य आदेश हो कर **"पूर्वस्य"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वयोः – पूर्व शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में "ओस्" विभक्ति के आने पर, "पूर्व + ओस्" इस स्थिति में **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से पूर्व शब्द के अकार के स्थान पर, "एकार" आदेश कर, "पूर्वे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से ए के स्थान पर अय् आदेश हो कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "पूर्वयोस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"पूर्वयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वेषाम् – पूर्व शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु के आगम की प्राप्ति होने पर, उसके अपवाद स्वरूप, **"सुरामि सर्वतः"** (१५५) सूत्र से सु का आगम करने पर, उकार का अनुबन्धलोप हो कर "पूर्व + साम्" इस स्थिति में साम् का आदि सकार धुट्संज्ञक है तथा बहुवचन भी, अतः **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर "पूर्वे + साम्" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"पूर्वेषाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वस्मिन्, पूर्वे – पूर्व शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "पूर्व + ङि" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र की तथा **"ङि स्मिन्"** (१५६) सूत्र की क्रमशः प्राप्ति थी परन्तु **"विभाष्येते पूर्वादेः"** (१५८) सूत्र द्वारा विकल्प से ङि के स्थान पर, स्मिन् आदेश हो कर **"पूर्वस्मिन्"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि करने पर, **"पूर्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्वेषु – पूर्व शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप हो कर "पुरुष + सु" इस स्थिति में **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "पूर्वे + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"पूर्वेषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पूर्व शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
सम्बोधन	हे पूर्व	हे पूर्वौ	हे पूर्वे, पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पञ्चमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात् पूर्वस्माद्, पूर्वाद्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

इसी प्रकार पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर आदि की रूपमाला जानना चाहिये।

।। इस प्रकार अकारान्त पुल्लिंग शब्द का विवेचन पूर्ण हुआ।।

अब आकारान्त पुल्लिंग शब्द में क्षीरपा शब्द का विवेचन करते हैं।

क्षीरपा शब्द की सिद्धि में पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"औकारे औ औकारे च"** (४०), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) तथा **"आधातोरघुट् स्वरे"** (१६०)।

क्षीरपाः – क्षीरपा शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "क्षीरपा + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्ग आदेश करने पर, **"क्षीरपाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपौ – क्षीरपा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "क्षीरपा + औ" इस स्थिति में **"औकारे औ औकारे च"** (४०) सूत्र से आकार के स्थान पर औकार तथा औकार का लोप हो कर **"क्षीरपौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपाः – क्षीरपा शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "क्षीरपा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"क्षीरपाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपा शब्द से सम्बोधन में **हे क्षीरपाः, हे क्षीरपौ, हे क्षीरपाः** प्रथमा विभक्ति के समान ही जानना चाहिये।

क्षीरपाम् – क्षीरपा शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "क्षीरपा + अम्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"क्षीरपाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सि, औ, जस् इत्यादि विभक्तियाँ दो रूप में प्रयोग की जाती हैं, घुट् और अघुट्। प्रारम्भ की पांच विभक्तियों की घुट् सञ्ज्ञा करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.३)सञ्ज्ञासूत्रम् – पञ्चादौ घुट्।।१५६।।

स्यादीनामादौ पञ्चवचनानि घुट् सञ्ज्ञानि भवन्ति।

अर्थ – सि, औ, जस्, अम्, औ ये पांच विभक्तियाँ घुट् सञ्ज्ञक होती हैं।

अर्थात् प्रारम्भ की पांच विभक्तियाँ घुट्सञ्ज्ञक हैं, तथा शेष सोलह विभक्तियाँ अघुट् सञ्ज्ञक हैं, ऐसा जानना चाहिये।

अघुट् विभक्तियाँ भी दो रूप में प्रयोग होती हैं। स्वरादि अघुट् तथा व्यञ्जनादि अघुट्।

स्वरादि अघुट् विभक्तियाँ – शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस् इत्यादि।

व्यञ्जनादि अघुट् विभक्तियाँ – भ्याम्, भिस्, भ्यस्, तथा सुप् इत्यादि।

पूर्व में अन्तस्थ और अनुनासिक रहित व्यञ्जन की धुट् सञ्ज्ञा कहीं है। उस धुट् और इस घुट् के अन्तर को अच्छे से हृदयंगम कर लेना चाहिये। नहीं तो कभी धुट् में घुट् तथा घुट् में धुट् प्रवेश कर जाता है।

क्षीरपा शब्द की सिद्धि में घुट् विभक्तिओं में कोई अन्तर नहीं है। परन्तु स्वरादि अघुट् विभक्तियों के आने पर, क्षीरपा शब्द के आकार का लोप हो जाता है।

क्षीरपा शब्द से द्वितीय विभक्ति के बहुवचन आदि में शस् आदि विभक्ति के आने पर, यहाँ शस् आदि विभक्ति अघुट् विभक्ति हैं, अतः क्षीरपा के आकार का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३२)विधिसूत्रम् – आधातोरघुट्स्वरे।।१६०।।

धातोराकारस्य लोपो भवति अघुट्स्वरे परे। धातोरिति किम्। शन्तृङन्तक्विबन्तौ धातुत्वं न त्यजत इति। एतदुपलक्षणम्। उपलक्षणं किं ? स्वस्य स्वसदृशस्य च ग्राहकमुपलक्षणम्। तेन विजन्तमपि धातुत्वं न जहाति। क्षीरपः। क्षीरपा, क्षीरपाभ्याम्, क्षीरपाभिः। क्षीरपे, क्षीरपाभ्याम्, क्षीरपाभ्यः। क्षीरपः, क्षीरपाभ्याम्, क्षीरपाभ्यः। क्षीरपः, क्षीरपोः, क्षीरपाम्। क्षीरपि, क्षीरपोः, क्षीरपासु। एवं सोमपा–सीधुपा–कीलालपा–सौवीरपा–मण्डपा–अग्रेगा–विवस्वा–अब्जजा–उदधिका–हाहा–पुरोगादयः। इत्याकारान्ताः। इकारान्तः पुल्लिङ्गो मुनिशब्दः। ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ। मुनिः। द्वित्वे।

अर्थ – अघुट् स्वर परे होने पर धातु के आकार का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"पञ्चादौ घुट्" (१५६) सूत्र द्वार प्रारम्भ की पांच विभक्तियाँ घुट सञ्ज्ञक तथा शेष विभक्तियाँ अघुट्सञ्ज्ञक कही हैं। अघुट् विभक्तियाँ भी दो भागों में विभाजित होती है। (१) स्वरादि अघुट् तथा (२) व्यञ्जनादि अघुट्।

स्वरादि अघुट् – शस् = अस्, टा = आ, ङे = ए, ङसि = अस्, ङस् = अस्, ओस्, आम्, ङि = इ, ओस् ये नौ विभक्तियाँ स्वरादि अघुट् कहलाती हैं।

व्यञ्जनादि अघुट् – भ्याम्, भिस्, भ्याम्, भ्यस्, भ्याम्, भ्यस्, सुप् ये सात विभक्तियाँ व्यञ्जनादि अघुट् कहलाती हैं।

उपर्युक्त सूत्र द्वारा स्वरादि अघुट् विभक्ति के होने पर क्षीरपा शब्द के आकार का लोप होता है। क्षीरपा शब्द के आकार का लोप होने पर, क्षीरप् शब्द में स्वरादि अघुट् विभक्तियों को **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से विभक्ति जोड़कर प्रयोग सिद्ध करना चाहिये।

क्षीरपा शब्द क्षीर उपपद रहते पा पाने धातु से बना है। क्षीरपा (दूध पीने वाला) किसी की संज्ञा है। परन्तु पा पूर्व में धातु थी इसलिये उसने अपने पूर्व के स्वभाव को नहीं छोड़ा है। इसीलिये आचार्य भगवन्त ने आधातोः कहा है। अर्थात् धातु सम्बन्धी आकार का लोप होता है।

व्यञ्जनादि अघुट् विभक्तियों के आने पर क्षीरपा शब्द में कोई परिवर्तन नहीं होता है। **"क्षीरपाभ्याम्"** विभक्ति जोड़कर प्रयोग सिद्ध होते हैं।

शंका – धातु के आकार का लोप होता है, ऐसा क्यों कहा ?
समाधान – शन्तृङन्त तथा क्विबन्त प्रत्यय होने पर धातु का त्याग नहीं होता है। यह उपलक्षण है।

शंका – उपलक्षण किसे कहते हैं।
समाधान – अपने तथा अपने समान के ग्रहण करने को उपलक्षण कहते हैं।

शन्तृङ् प्रत्यय तथा क्विप् प्रत्यय जिन धातु से होते हैं वे धातुएँ प्रत्यय होने के बाद सञ्ज्ञा को प्राप्त होती हैं। परन्तु अपने धातुत्व से युक्त होती हैं।

विच् अन्त वाली धातुएँ भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ती हैं।

अघुट् स्वर वाली विभक्तियाँ निम्नलिखित हैं – शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम् तथा ङि। अर्थात् इन विभक्तियों के आने पर "क्षीरपा" आदि शब्दों के आकार का लोप होता है।

क्षीरपः – क्षीरपा शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर अनुबन्ध लोप कर, "क्षीरपा + अस्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से अस् की अघुट् सञ्ज्ञा होने पर, **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से "क्षीरपा" के आकार का लोप कर, "क्षीरप् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "क्षीरपस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"क्षीरपः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपा – क्षीरपा शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "क्षीरपा + आ" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से आ की अघुट् सञ्ज्ञा होने पर, **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से "क्षीरपा" के आकार का लोप कर, "क्षीरप् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"क्षीरपा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपाभ्याम् – क्षीरपा शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"क्षीरपाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपाभिः – क्षीरपा शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश होकर **"क्षीरपाभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपे – क्षीरपा शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे (ए) विभक्ति के आने पर, **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से "क्षीरपा" के आकार का लोप कर, "क्षीरप् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"क्षीरपे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपाभ्यः – क्षीरपा शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "क्षीरपा + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर, **"क्षीरपाभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपः – क्षीरपा शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से "क्षीरपा" के आकार का लोप कर, "क्षीरप् + अस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"क्षीरपः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपोः – क्षीरपा शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से "क्षीरपा" के आकार का लोप कर, "क्षीरप् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"क्षीरपोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपाम् – क्षीरपा शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से "क्षीरपा" के आकार का लोप कर, "क्षीरप् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"क्षीरपाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपि – क्षीरपा शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से "क्षीरपा" के आकार का लोप कर, "क्षीरप् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"क्षीरपि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपासु – क्षीरपा शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"क्षीरपासु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्षीरपा शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	क्षीरपाः	क्षीरपौ	क्षीरपाः
सम्बोधन	हे क्षीरपाः	हे क्षीरपौ	हे क्षीरपाः
द्वितीया	क्षीरपाम्	क्षीरपौ	क्षीरपः
तृतीया	क्षीरपा	क्षीरपाभ्याम्	क्षीरपाभिः
चतुर्थी	क्षीरपे	क्षीरपाभ्याम्	क्षीरपाभ्यः
पञ्चमी	क्षीरपः	क्षीरपाभ्याम्	क्षीरपाभ्यः
षष्ठी	क्षीरपः	क्षीरपोः	क्षीरपाम्
सप्तमी	क्षीरपि	क्षीरपोः	क्षीरपासु

इसी प्रकार – विश्वपा, शखध्मा, सोमपा, सीधुपा, कीलालपा (जल पीने वाला), सौवीरपा, मण्डपा, मधुपा, अग्रेगा, विवस्वा, अब्जजा, उदधिका, पुरोगा इत्यादि शब्द जानना चाहिये।

।। इस प्रकार आकारान्त पुल्लिंग शब्दों का विवेचन पूर्ण हुआ।।

अब इकारान्त और उकारान्त पुल्लिंग शब्दों का विवेचन करते हैं। क्रमानुसार इकार के बाद ईकार का फिर उकार का प्रयोग होता है। परन्तु सूत्रकार युगपत् इकारान्त और उकारान्त शब्दों की सिद्धि कर रहे हैं, अतः मैं भी एक साथ प्रयोग सिद्ध कर रहा हूँ। दोनों की सिद्धि युगपत् होने से पाठकगण को एक ही बार में दो प्रयोग आत्मसात् हो जायेंगे।

इकारान्त पुल्लिंग में मुनि शब्द तथा उकारान्त पुल्लिंग शब्द में साधु शब्द की सिद्धि करते हैं।

मुनि और साधु शब्द की सिद्धि में पूर्वकथित निम्न सूत्रों का प्रयोग होता है। अतः उन सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"वमुवर्णः"** (४५), **"ए अय्"** (४८), **"ओ अव्"** (५०), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"औकारः पूर्वम्"** (१६२), **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३), **"सम्बुद्धौ च"** (१६४), **"अग्नेरमो कारः"** (१६५), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७), **"ङे"** (१६८), **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६), **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१)।

मुनिः – मुनि शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"मुनिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधुः – साधु शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"साधुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, इकारान्त और उकारान्त शब्दों की अग्नि संज्ञा करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८)सञ्ज्ञासूत्रम् – इदुदग्निः।।१६१।।

इकारान्तमुकारान्तञ्च लिङ्गं अग्निसञ्ज्ञं भवति। तपरकरणमसन्देहार्थम्।

अर्थ – इकारान्त और उकारान्त लिंग की अग्निसञ्ज्ञा होती है।

सूत्र में इत् और उत् का कथन सन्देह के निराकरण के लिये किया है। अर्थात् इकारान्त और उकारान्त शब्दों की ही अग्नि सञ्ज्ञा होती है।

नोट – सामान्य इकारान्त और उकारान्त का कथन होने से स्त्रीलिंग में भी इकारान्त और उकारान्त शब्दों की अग्निसञ्ज्ञा हो जायेगी।

शंका – इदुदग्नि सूत्र में इकारान्त और उकारान्त शब्दों की अग्नि संज्ञा कही है। हम कैसे जानेंगे कि अग्निसंज्ञा पुल्लिंग में होगी या स्त्रीलिंग में।

समाधान – **"इदुदग्निः"** (१६१) सामान्य सूत्र है। आगे विशेष सूत्रों द्वारा नदी सञ्ज्ञा की जायेगी। यथा – **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) अर्थात् ङे, ङसि, ङस्, ङि विभक्तियों में इकारान्त–उकारान्त स्त्रीलिंग की वैकल्पिक नदीसञ्ज्ञा होती है। यानी नदी सञ्ज्ञा के अभाव में इकारान्त–उकारान्त स्त्रीलिंग की अग्निसञ्ज्ञा होती है।

पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग में इकारान्त–उकारान्त की नदी संज्ञा नहीं होती है। अतः पुल्लिंग और नपुंसकलिंग में तो अग्निसंज्ञा ही होती है। ऐसा विशेष जानना चाहिये।

शंका – सि विभक्ति के आने पर क्या अग्निसञ्ज्ञा नहीं होती ?

समाधान – अग्निसञ्ज्ञा समस्त विभक्तियों में होती है। सि विभक्ति में अग्निसञ्ज्ञक कोई कार्य नहीं होने से पूर्व में अग्नि सञ्ज्ञा नहीं कही। सम्बुद्धि सम्बन्धी सि विभक्ति के आने पर **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र की प्रवृत्ति होगी।

अब मुनि + औ, साधु + औ में अग्नि संज्ञा की सार्थकता हेतु औ के स्थान पर इकार–उकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५१)विधिसूत्रम् – औकारः पूर्वम्।।१६२।।

अग्निसञ्ज्ञकात्पर औकारः पूर्वस्वरूपमापद्यते। सन्धिः। मुनी। जसि।

अर्थ – अग्निसञ्ज्ञक से परे औकार पूर्वस्वरूप (स्वर) रूप होता है।

अर्थात् – प्रथमा–द्वितीया विभक्ति सम्बन्धी औकार के होने पर, अग्निसञ्ज्ञक इकार होगा तो औकार इकार रूप तथा उकार होगा तो औकार उकार रूप हो जाता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अग्नेरमो कारः"** (१६५) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

मुनि + औ तथा साधु + औ। यहाँ मुनि में इकार तथा साधु में उकार है। अतः औकार कौ क्रमशः इकार–उकार आदेश होकर "मुनि + इ" तथा "साधु + उ", यहाँ दोनों प्रयोग में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ सन्धि करने पर **"मुनी"** तथा **"साधू"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुनी – मुनि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "मुनि + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मुनि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से औकार के स्थान पर इकार आदेश कर, "मुनि + इ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पूर्व इकार को दीर्घ आदेश कर तथा इकार का लोप हो कर, **"मुनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधू – साधु शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "साधु + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से साधु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से औकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "साधु + उ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पूर्व उकार को दीर्घ आदेश कर तथा उकार का लोप हो कर **"साधू"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मुनि तथा साधु शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर इकार के स्थान पर एकार तथा उकार के स्थान पर ओकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५५)विधिसूत्रम् – इरेदुरोज्जसि।।१६३।।

अग्निसञ्ज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति जसि परे। मुनयः।

अर्थ – जस् परे होने पर अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर "एकार" तथा उकार के स्थान पर "ओकार" आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अग्नेरमो कारः"** (१६५) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

अर्थात् जस् विभक्ति होने पर मुनि के इकार को एकार तथा साधु के उकार को ओकार आदेश होता है।

मुनयः – मुनि शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, अनुबन्ध लोप हो कर, "मुनि + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मुनि शब्द के इकार की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर, "मुने + अस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर, अय् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"मुनयः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधवः – साधु शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, अनुबन्ध लोप कर, "साधु + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से साधु शब्द के उकार की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार आदेश हो कर "साधो + अस्" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"साधवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मुनि शब्द से सम्बुद्धि में सि विभक्ति आने पर, अग्नि सञ्ज्ञक इकार तथा उकार के स्थान पर क्रमशः एकार तथा औकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५६)विधिसूत्रम् – सम्बुद्धौ च।।१६४।।

अग्निसञ्ज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति सम्बुद्धौ परतः। प्रत्ययलोपे प्रत्यय–लक्षणमिति न्यायात्। हे मुने। हे मुनी। हे मुनयः।

अर्थ – सम्बुद्धि परे होने पर अग्नि सञ्ज्ञक इकार तथा उकार के स्थान पर क्रमशः एकार तथा ओकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अग्नेरमो कारः"** (१६५) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

अर्थात् सम्बुद्धि सम्बन्धी सि विभक्ति के होने पर मुनि शब्द के इकार को एकार तथा साधु शब्द के उकार को ओकार आदेश होते हैं।

"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः" (१३३) सूत्र से आमन्त्रण में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा होती है।

सम्बुद्धि की विवक्षा में "मुनि + स्" तथा "साधु + स्" इस स्थिति में **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप हो जाता है।

शंका – "ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्" (१३४) सूत्र से सम्बुद्धि सञ्ज्ञक सकार का लोप हो जाने पर "सम्बुद्धि" के अभाव में इकार– उकार को एकार–ओकार आदेश कैसे होगा?

समाधान – "प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्" अर्थात् प्रत्यय के लोप होने पर प्रत्यय सम्बन्धी कार्य देखा जाता है। इसलिये सम्बुद्धि का लोप हो जाने पर भी **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र को सम्बुद्धि दृष्टिगोचर हो रही है। अतः इकार –उकार के स्थान पर एकार तथा ओकार आदेश हो जाता है।

हे मुने – मुनि शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर अनुबन्धलोप हो कर, "मुनि + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर, **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायात्"** इस परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"हे मुने"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे साधो – साधु शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "साधु + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर, **"प्रत्यय– लोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायात्"** इस परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार आदेश हो कर **"हे साधो"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे मुनी"** तथा **"हे साधो"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

बहुवचन में पूर्ववत् – **"हे मुनयः"** तथा **"हे साधवः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुनि तथा साधु शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति आने पर अम् के अकार का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५०) विधिसूत्रम् – अग्नेरमो कारः।।१६५।।

अग्निसञ्ज्ञकात्परस्य अमो कारो लोपमापद्यते। मुनिम्। मुनी। शसादौ।

अर्थ – अग्निसञ्ज्ञक से परे अम् के अकार का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

मुनिम् – मुनि शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में "अम्" विभक्ति के आने पर "मुनि + अम्" इस स्थिति में **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"मुनिम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधुम् – साधु शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में "अम्" विभक्ति के आने पर "साधु + अम्" इस स्थिति में **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"साधुम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – मुनि + औ = **"मुनी"** तथा साधु + औ **"साधू"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुनि तथा साधु शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, शस् के स्थान पर इन् – उन् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५२)विधिसूत्रम् – शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्।।१६६।।

अग्निसञ्ज्ञकात्परस्य शसो कारः पूर्वस्वररूपमापद्यते सर्वत्र सस्य च नो भवति अस्त्रियाम्। मुनीन्।

अर्थ – अग्निसञ्ज्ञक से परे शस् के अकार को पूर्व स्वर रूप आदेश तथा स्त्रीलिंग को छोड़कर शस् के सकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अग्नेरमो कारः"** (१६५) सूत्र की तथा **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

अर्थात् शस् विभक्ति में से अस् शेष रहता है। पद के अन्त में इकार होगा तो अस् के स्थान पर इन् आदेश होगा और उकार होगा तो उन् आदेश होगा। परन्तु स्त्रीलिंग में पद के अन्त में इकार होगा तो अस् के स्थान पर इस् आदेश होगा। तथा उकार होगा तो उस् आदेश होगा। अर्थात् स्त्रीलिंग में सकार के स्थान पर नकार आदेश नहीं होगा।

अर्थात् मुनि शब्द से अस् के स्थान पर इन् तथा साधु शब्द से अस् के स्थान पर उन् आदेश होगा।

नोट – ऋकारान्त शब्द से परे शस् को **"अग्निवच्छसि"** (१६७) सूत्र द्वारा अग्निवत् कहने पर, ऋकारान्त शब्द से परे शस् के स्थान पर ऋन् आदेश होगा।

तीनों प्रयोगों में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर क्रमशः मुनीन्, साधून्, पितॄन् प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुनीन् – मुनि शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, शकार का अनुबन्ध लोप कर, "मुनि + अस्" इस स्थिति में **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर इन् आदेश हो कर "मुनि + इन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ आदेश तथा इकार का लोप हो कर **"मुनीन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधून् – साधु शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, शकार का अनुबन्ध लोप कर, "साधु + अस्" इस स्थिति में **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर उन् आदेश हो कर "साधु + उन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ आदेश तथा उकार का लोप हो कर **"साधून्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मुनि तथा साधु शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि संज्ञा कर टा के स्थान पर ना आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५३)विधिसूत्रम् – अस्त्रियां टा ना।।१६७।।

अग्निसञ्ज्ञकात्परस्य टा ना भवत्यस्त्रियाम्। मुनिना। मुनिभ्याम्। मुनिभिः। ङयि।

अर्थ – स्त्रीलिंग से भिन्न अग्नि सञ्ज्ञक से परे टा के स्थान पर ना आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"शसोकारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात् अग्नि संज्ञक इकारान्त और उकारान्त पुल्लिंग–नपुंसकलिंग से परे सम्पूर्ण टा के स्थान पर ना आदेश होता है।

स्त्रीलिंग से रहित इकारान्त और उकारान्त शब्दों से टा विभक्ति के होने पर, टा के स्थान पर ना आदेश होता है। स्त्रीलिंग में टा विभक्ति के होने पर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश तथा **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश हो कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुनिना – मुनि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से "टा" के स्थान पर "ना" आदेश हो कर **"मुनिना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधुना – साधु शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से "टा" के स्थान पर "ना" आदेश हो कर **"साधुना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – "कलाप व्याकरण" में **"अस्त्रियां टा ना"** के स्थान पर **"टा ना"** (२.५३) सूत्र है। जो कि उचित है, क्योंकि उपर्युक्त सूत्र में "अस्त्रियां" की अनुवृत्ति **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से आ रही है।

द्विवचन में "मुनि + भ्याम् = **मुनिभ्याम्**" तथा **"साधुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

बहुवचन में "मुनि + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"मुनिभिः"** तथा **"साधुभिः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुनि तथा साधु शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति आने पर, मुनि के इकार को एकार तथा साधु के उकार को ओकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५७)विधिसूत्रम् – ङे।।१६८।।

अग्निसञ्ज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति ङयि परे। मुनये। मुनिभ्याम्। मुनिभ्यः।

अर्थ – ङे परे होने पर अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर "एकार" और "उकार" के स्थान पर "ओकार" आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अग्नेरमो कारः"** (१६५) सूत्र की तथा **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

अर्थात् ङे विभक्ति होने पर मुनि के इकार को एकार (मुने + ङे) तथा साधु के उकार को ओकार (साधो + ङे) आदेश होता है।

मुनये – मुनि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, ङकार का अनुबन्ध लोप कर, "मुनि + ए" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मुनि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर एकार हो कर, "मुने + ए" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश हो कर **"मुनये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधवे – साधु शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, ङकार का अनुबन्ध लोप कर, "साधु + ए" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से साधु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक उकार के स्थान पर ओकार हो कर, "साधो + ए" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"साधवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में मुनि + भ्याम् = **"मुनिभ्याम्"** तथा साधु + भ्याम् = **"साधुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

बहुवचन में "मुनि + भ्यस्" तथा "साधु + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"मुनिभ्यः"** तथा **"साधुभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुनि तथा साधु शब्द से पंचमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर मुनि के इकार को एकार तथा साधु के उकार को ओकार आदेश और ङसि–ङस् के अकार का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५८)विधिसूत्रम् – ङसिङसोरलोपश्च।।१६६।।

अग्निसञ्ज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद् भवति ङसिङसोः परतः तयोरकारश्च लोप्यो भवति। मुनेः। मुनिभ्याम्। मुनिभ्यः। मुनेः। मुन्योः। आमि नुरागमः।

अर्थ – ङसि और ङस् के परे होने पर अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर एकार तथा उकार के स्थान पर ओकार आदेश और ङसि ङस् के अकार का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अग्नेरमो कारः"** (१६५) सूत्र की तथा **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

मुनि शब्द के इकार के स्थान पर, एकार तथा साधु शब्द के उकार के स्थान पर ओकार आदेश होता है तथा ङसि–ङस् के अकार का लोप होता है। यथा – "मुनि + अस्" = "मुने + स्", तथा "साधु + अस्" = "साधो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"मुनेः"** तथा **"साधोः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुनेः – मुनि शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर "मुनि + अस्" इस स्थिति में, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मुनि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर एकार तथा अस् के अकार का लोप कर, "मुने + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"मुनेः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधोः – साधु शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "साधु + अस्" इस स्थिति में, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से साधु की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक उकार के स्थान पर ओकार तथा अस् के अकार का लोप हो कर, "साधो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"साधोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में मुनि + भ्याम् = **"मुनिभ्याम्"** तथा साधु + भ्याम् = **"साधुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

बहुवचन में "मुनि + भ्यस्" तथा "साधु + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"मुनिभ्यः"** तथा **"साधुभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मुन्योः – मुनि शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "मुनि + ओस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर, सकार के स्थान पर **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से विसर्जनीय आदेश हो कर **"मुन्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साध्वोः – साधु शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "साधु + ओस्" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश हो कर, सकार के स्थान पर **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से विसर्जनीय आदेश हो कर **"साध्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मुनि तथा साधु शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर "मुनि + नाम्" तथा "साधु + नाम्" इस स्थिति में पूर्वकथित **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से दीर्घ हो सकता है। परन्तु दीर्घ करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६२)विधिसूत्रम् – दीर्घमामि सनौ ।।१७०।।

नाम्यन्तं लिङ्गं दीर्घमापद्यते सनावामि परे। मुनीनाम्।

अर्थ – नु परक आम् परे होने पर नाम्यन्त लिंग को दीर्घ होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

नाम्यन्त कहने से ह्रस्व – इकार, उकार और ऋकार को दीर्घ होता है।

नोट – सूत्र में सनौ का ग्रहण होने से पहले नु का आगम होगा पश्चात् दीर्घ होगा।

मुनीनाम् – मुनि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "मुनि + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "मुनि + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से इकार के स्थान पर ईकार दीर्घ आदेश हो कर **"मुनीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधूनाम् – साधु शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "साधु + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "साधु + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से उकार के स्थान पर ऊकार दीर्घ आदेश हो कर **"साधूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – यह सूत्र (१४६) नम्बर पर आ चुका है। परन्तु वहाँ – "ह्रस्वान्तम्" को दीर्घ होता है। यहाँ "नाम्यन्तम्" को दीर्घ होता है। "ह्रस्वान्तम्" के कथन से "नाम्यन्तम्" का भी ग्रहण हो जाता है। अतः यह सूत्र .... है।

"कलाप व्याकरण" में भी एक बार ही यह सूत्र आया है, परन्तु **"कलाप व्याकरण"** की संस्कृत टीका में **"नाम्यन्त"** को ही दीर्घ कहा है।

नाम्यन्त के कथन से ह्रस्व अकार को दीर्घ आदेश नहीं होगा। अतः अकारान्त शब्दों के लिये **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से दीर्घ होगा। नाम्यन्त शब्दों के लिये **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ होगा।

मुनि तथा साधु शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, मुनि के इकार तथा साधु के उकार और ङि के स्थान पर औकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६०)विधिसूत्रम् – ङिरौ सपूर्वः।।१७१।।

अग्निसञ्ज्ञकात्परो ङि पूर्वस्वरेण सह और्भवति। मुनौ। मुन्योः मुनिषु। एवमग्नि–गिरि–रवि–ऋषि–यति–कवि–विधि–राशि–शीतरश्मि–शालि–दानवारि–दैत्यारि– सौरि–सूरि–विघ्नारि–हेमाद्रि–अद्रि–हरि–सारिवह्नि–शकुनि–पाकशासनि–धूमयोनि–पद्म–योनि–अपाम्पति–अतिथि–ग्रन्थि–पदाति–मैत्रि–बलि–ध्वनि–पाणि–कपि–अलि–मणि–जलधि–अब्धि–पयोधि–निधि–उपाधि–नीरधि–व्याधि–शेवध्यादयः। द्विशब्दस्य तु भेदः तस्य द्वि – अर्थवाचित्वात्– द्विवचनमेव भवति। द्वि औ इति स्थिते।

अर्थ – अग्निसञ्ज्ञक से परे ङि के स्थान पर पूर्वस्वर सहित औ आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अग्नेरमो कारः"** (१६५) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

अर्थात् – पूर्व स्वर इकार अथवा उकार सहित ङि के स्थान पर औ आदेश होता है।

मुनि + ङि तथा साधु + ङि यहाँ मुनि के इकार और ङि विभक्ति के स्थान पर तथा साधु के उकार और ङि विभक्ति के स्थान पर औकार आदेश होगा। यथा – "मुनि + ङि = मुन् + औ = मुनौ" तथा "साधु + ङि = साध् + औ = साधौ"।

मुनौ – मुनि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "मुनि + ङि" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मुनि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से ङि तथा इकार के स्थान पर "औकार" आदेश हो कर, "मुन् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"मुनौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधौ – साधु शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "साधु + ङि" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से साधु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से ङि तथा उकार के स्थान पर "औकार" आदेश हो कर, "साध् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"साधौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मुनिषु – मुनि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप कर, "मुनि + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"मुनिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

साधुषु – साधु शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप कर, "साधु + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"साधुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मुनि शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	मुनिः	मुनी	मुनयः
सम्बोधन	हे मुने	हे मुनी	हे मुनयः
द्वितीया	मुनिम्	मुनी	मुनीन्
तृतीया	मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः
चतुर्थी	मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
पञ्चमी	मुनेः	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
षष्ठी	मुनेः	मुन्योः	मुनीनाम्
सप्तमी	मुनौ	मुन्योः	मुनिषु

साधु शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	साधुः	साधू	साधवः
सम्बोधन	हे साधो	हे साधू	हे साधवः
द्वितीया	साधुम्	साधू	साधून्
तृतीया	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभिः
चतुर्थी	साधवे	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
पञ्चमी	साधोः	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
षष्ठी	साधोः	साध्वोः	साधूनाम्
सप्तमी	साधौ	साध्वोः	साधुषु

इसी प्रकार – अग्नि, गिरि, रवि इत्यादि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

मुनि शब्द की अपेक्षा सखि, पति, कति, त्रि, द्वि, पन्थि, मन्थि, ऋभुक्षि शब्दों में कुछ अन्तर है।

किन्तु द्वि शब्द में भेद है। दो के अर्थ के लिए द्विशब्द का प्रयोग होता है। इसके रूप द्विवचन में ही चलते हैं। द्विशब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"ओकारे औ औकारे च"** (४०), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०), **"ओसि च"** (१४६), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"औकारः पूर्वम्"** (१६२)।

द्वि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "द्वि + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि संज्ञा होने पर, **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से औकार को पूर्व स्वर की प्राप्ति थी, परन्तु द्विशब्द के इकार को अकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१७१)विधिसूत्रम् – त्यदादीनाम विभक्तौ।।१७२।।

त्यदादीनामन्तः अकारो भवति विभक्तौ परतः। सन्धिः। द्वौ। द्वौ। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः। सर्वनामान्तर्गणो द्विपर्यन्त इह त्यदादिः। विभक्ताविति किम्? त्यदीयः। त्रिशब्दस्य तु भेदः। तस्य बह्वर्थवाचित्वात् बहुवचनमेव भवति। त्रयः। हे त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः। त्रिभ्यः। आमि।

अर्थ – विभक्ति परे होने पर त्यद् आदि शब्दों के अन्त के स्थान पर अकार आदेश होता है।

अर्थात् – सि, औ जस् इत्यादि विभक्ति के होने पर त्यद्, तद्, यद् अदस्, इदम्, एतद् किम् ("किं कः", सूत्र से किम् के स्थान पर क आदेश हो जाता है। एक शब्द को त्यदादि करने पर, अकार ही रहेगा।) एक, द्वि शब्दों के अन्त को अकार आदेश होता है। सर्वनाम शब्दों में त्यद् आदि शब्दों से द्विशब्द पर्यन्त ही त्यद् आदि शब्द कहलाते हैं। त्यद् आदि में व्यञ्जन अन्त में हो तो व्यञ्जन के स्थान पर अकार आदेश होता है और स्वर अन्त में हो तो स्वर के स्थान पर अकार आदेश होता है। जैसे "त्यद्" शब्द के अन्त में दकार है। अतः दकार के स्थान पर अकार आदेश हो कर "त्य + अ" यहाँ **"अकारे लोपम्"** (१३६) सूत्र से अकार का लोप हो कर **"त्य"** शेष रहता है।

इसी प्रकार द्वि शब्द के अन्त में इकार है। अतः इकार के स्थान पर अकार आदेश हो कर "द्व + औ" इस स्थिति में **"ओकारे औ औकारे च"** (४०) सूत्र से सन्धि हो कर **"द्वौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वौ – द्वि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर "द्वि + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से द्वि शब्द की अग्नि संज्ञा होने पर **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से औकार को पूर्व स्वर की प्राप्ति थी परन्तु **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश हो कर "द्व् + अ" यहाँ **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "द्व + औ" इस स्थिति में **"ओकारे औ औकारे च"** (४०) सूत्र से सन्धि हो कर **"द्वौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वाभ्याम् – द्वि शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, "द्वि + भ्याम्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से द्वि शब्द की अग्नि संज्ञा होने पर, **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश हो कर "द्व् + अ" यहाँ **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "द्व + भ्याम्" इस स्थिति में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"द्वाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वयोः – द्वि शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्तियों के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "द्वि + ओस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से द्वि शब्द की अग्नि संज्ञा होने पर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश की प्राप्ति थी। परन्तु **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश कर "द्व् + अ" यहाँ **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "द्व + ओस्" इस स्थिति में **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "द्वे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर, अय् आदेश कर, "द्वयोस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"द्वयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वि शब्द की रूपमाला यथा–

द्वौ, द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः।

त्रि शब्द में भी भेद है। तीन के अर्थ के लिए त्रि शब्द का प्रयोग होता है। इसके रूप बहुवचन में ही चलते हैं। त्रि शब्द के षष्ठी के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, त्रि शब्द के स्थान पर त्रय आदेश हो जाता है।

नोट – ध्यान रहे कि प्रधान होने पर ही त्रि शब्द नित्य बहुवचनान्त होता है, गौण अवस्था में तो इससे एकवचन और द्विवचन भी हुआ करते हैं। जैसे – प्रियत्रि शब्द त्रिवचनान्त है। प्रियाः त्रयः यस्य सः प्रियत्रिः (जिसे तीन प्रियें हों उसे प्रियत्रि कहते हैं।) प्रियत्रि शब्द से आम् विभक्ति के आने पर त्रय आदेश हो जायेगा। शेष प्रयोग मुनि के समान ही सिद्ध होते हैं।

त्रि शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्ग–पवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नु"** (१४७), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६)।

त्रयः – त्रि शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से त्रि शब्द के इकार की अग्नि संज्ञा कर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश होकर, **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश होकर **"त्रयः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रीन् – त्रि शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, शकार का अनुबन्ध लोप कर, "त्रि + अस्" इस स्थिति में **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर इन् आदेश हो कर "त्रि + इन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ आदेश तथा इकार का लोप हो कर **"त्रीन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रिभिः – त्रि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "त्रि + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"त्रिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रिभ्यः – त्रि शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "त्रि + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"त्रिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रिशब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर **"आमि च नु"** (१४७) सूत्र की प्राप्ति थी। परन्तु "त्रि" शब्द के स्थान पर "त्रय" आदेश तथा नु का आगम करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७३)विधिसूत्रम् – त्रेस्त्रयश्च।।१७३।।

त्रिशब्दस्य त्रयादेशो भवति नुरागमश्चामि परे। त्रयाणाम् त्रिषु। कतिशब्दस्य तु भेदः। तस्यापि बहुवचनमेव भवति।

अर्थ – आम् परे होने पर त्रि शब्द के स्थान पर त्रय आदेश तथा नु का आगम होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"आमि च नु"** (१४७) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात् उपर्युक्त सूत्र से दो कार्य होते हैं। प्रथमकार्य त्रि शब्द के स्थान पर अकार सहित "त्रय" आदेश होता है। द्वितीय कार्य आम् विभक्ति के लिये नु का आगम होता है।

त्रयाणाम् – त्रि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर "त्रि + आम्" इस स्थिति में **"त्रेस्त्रयश्च"** (१७३) सूत्र से त्रि के स्थान पर त्रय आदेश कर तथा नु का आगम हो कर अनुबन्ध लोप करने पर "त्रय न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से लिंगान्त अकार को दीर्घ आदेश कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वर–हयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"त्रयाणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रिषु – त्रि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर "त्रि + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"त्रिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रि शब्द की रूपमाला यथा–

त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः, त्रिभ्यः, त्रयाणाम्, त्रिषु।

कति (कितने) शब्द में भी भेद है। कति शब्द का प्रयोग बहुवचन के लिए होता है। कति शब्द त्रिलिंगी है। इस शब्द का प्रयोग प्रश्नवाचक रूप में होता है। यथा – अत्र कति मुनयः सन्ति? तत्र कति आर्यिकाः सन्ति? अत्र तत्र कति पुस्तकानि सन्ति? इत्यादि।

कितने मुनिराज हैं।) इत्यादि।

कति शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमि च नु"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०)।

कति शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञा होने पर **"इरेदुरोज्जसि"** (१६६) सूत्र की प्राप्ति थी। परन्तु जस् का लुक् करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७६)विधिसूत्रम् – कतेश्च जस्शसोर्लुक्।।१७४।।

सङ्ख्यायाः ष्णान्तायाः कतेश्च परयोर्जस्शसोर्लुग्भवति। (सर्वविधिभ्यो लोपविधि–र्बलवान्) प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति प्राप्ते सति।

अर्थ – संख्यावाची षकारान्त, नकारान्त तथा कति शब्द से परे जस् और शस् का लुक् होता है।

संख्यावाची षकारान्त शब्द षष् तथा नकारान्त शब्द पञ्चन्, सप्तन् आदि हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में "" (२६६) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

कति शब्द की **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा होने पर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से एकार आदेश की प्राप्ति हुई तथा **"कतेश्च जस्शसोर्लुक्"** (१७४) सूत्र से जस् शस् के लुक् की प्राप्ति हुई। युगपत् दो सूत्रों की प्राप्ति होने पर **"सर्वविधिभ्यो लोप–विधिर्बलवान्"** अर्थात् सभी विधियों में लोप विधि बलवान् होती है। इस परिभाषा की सहायता से **"कतेश्च जस्शसोर्लुक्"** (१७४) सूत्र से जस् शस् का लुक् (लोप) हो जाने पर **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** अर्थात् प्रत्यय के लोप होने पर प्रत्यय सम्बन्धी कार्य होता है। अतः जस् शस का लुक् होने पर प्रत्यय सम्बन्धी कार्य **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश होना चाहिये। इसके निराकरण के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)विधिसूत्रम् – लुग्लोपे न प्रत्ययकृतम्।।१७५।।

लुगिति लोपे सति प्रत्ययलोपे परे यत्कृतं कार्यं प्रकृतेस्तन्न भवति। इरेदुरोज्जसीत्येत्वं न भवति। कति। कति। कतिभिः। कतिभ्यः। कतिभ्यः। कतीनाम्। कतिषु। सखिशब्दस्य तु भेदः। सावनन्त इति वर्त्तते।

अर्थ – लुक् शब्द से प्रत्यय का लोप हो जाने पर प्रत्यय सम्बन्धी कार्य नहीं होता है।

अर्थात् **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा से प्राप्त **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र का निषेध हो जाता है। निषेध होने पर **"कति"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कति – कति शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, कति शब्द के इकारान्त होने से **"इदुदग्नि"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश की प्राप्ति तथा **"कतेश्च जस्शसोर्लुक्"** (१७४) सूत्र से जस् के लुक् की प्राप्ति हुई। युगपत् दो सूत्रों की प्राप्ति होने पर **"सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्"** परिभाषा की सहायता से **"कतेश्च जस्शसोर्लुक्"** (१७४) सूत्र से जस् का लुक् (लोप) हो जाने पर **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा के कारण **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र की प्राप्ति का **"लुग्लोपे न प्रत्ययकृतम्"** (१७५) सूत्र द्वारा निषेध होने पर "कति" प्रयोग सिद्ध होता है।

कति – कति शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, कति शब्द के इकारान्त होने से **"इदुदग्नि"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"कतेश्च जस्शसोर्लुक्"** (१७४) सूत्र से शस् का लुक् (लोप) हो जाने पर **"कति"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में भी **"कति"** शब्द बनता है। परन्तु द्वितीया विभक्ति सम्बन्धी "कति" प्रयोग में **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र नहीं लगेगा। **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र के नहीं लगने पर **"सर्वविधिभ्योलोपविधिर्बलवान्"** आदि परिभाषा भी नहीं लगेंगी।

कतिभिः – कति शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कतिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कतिभ्यः – कति शब्द से चतुर्थी–पञ्चमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कतिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कतीनाम् – कति शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में "आम्" विभक्ति आने पर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से "नु" का आगम कर तथा **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"कतीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कतिषु – कति शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश होने पर **"कतिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखि शब्द में भेद है। सखि (मित्र) शब्द के रूप किसी भी रूप से नहीं मिलते हैं।

सखि शब्द के प्रयोग में पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"ऐ आय्"** (४६), **"अन्त्यात्पूर्व उपधा"** (७६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्यय–विकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"औकारः पूर्वम्"** (१६२), **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३), **"सम्बुद्धौ च"** (१६४), **"अग्नेरमो कारः"** (१६५), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७), **"ङे"** (१६८), **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१)।

सखि शब्द इकारान्त शब्द है। इकारान्त होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा होती है। टा आदि विभक्तियों के होने पर **"न सखि टादावग्निः"** (१८१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा का निषेध हो जायेगा। परन्तु प्रथमा–द्वितीया–विभक्ति में तो अग्नि सञ्ज्ञा हो ही जायेगी। अग्नि सञ्ज्ञा का फल सम्बुद्धि के एकवचन में, द्वितीया और षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में, दृष्टिगोचर होगा।

सखि शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "सखि" के इकार के स्थान पर "अन्" आदेश करने के लिये अग्रिम् सूत्र कहते हैं।

(२.१००)विधिसूत्रम् – सख्युश्च।।१७६।।

सख्युरन्तो न् भवति असम्बुद्धौ सौ परे।

अर्थ – सम्बुद्धि भिन्न सि परे होने पर सखि शब्द के इकार के स्थान पर अन् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"उशनस्पुरुदंसो नेहसां सावनन्तः"** (३१७) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

सि विभक्ति का प्रथमा के एकवचन में तथा सम्बोधन के एकवचन में प्रयोग होता है। उपर्युक्त सूत्र में "असम्बुद्धि" का कथन होने से सम्बुद्धि में उपर्युक्त सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी।

शंका – सम्बुद्धि भिन्न सि हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर सम्बुद्धि भिन्न नहीं कहते तो सम्बुद्धि में भी सि के होने पर इकार को अन् आदेश हो कर "हे सखन्" रूप बन जाता। परन्तु सम्बुद्धि में मुनि शब्द के समान **"हे सखे"** रूप सिद्ध होता है।

सखि शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, अनुबन्ध लोप हो कर "सखि + स्" इस स्थिति में **"सख्युश्च"** (१७६) सूत्र से सखि शब्द के इकार के स्थान पर अन् आदेश हो कर, "सखन् + स्" इस स्थिति में, अन् के अकार को दीर्घ करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६४)विधिसूत्रम् – घुटि चासम्बुद्धौ।।१७७।।

नान्तस्य चोपधाया दीर्घो भवति असम्बुद्धौ घुटि परे।

अर्थ – सम्बुद्धि भिन्न घुट् के परे होने पर नकारान्त उपधा को दीर्घ होता है।

सि, औ, जस्, अम् और औ ये पांच घुट् विभक्तियाँ कहलाती हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) तथा **"नान्तस्य चोपधायाः"** (३००) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

शंका– सम्बुद्धि भिन्न घुट् हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर सम्बुद्धि भिन्न घुट् नहीं कहते तो "हे राजन्" यहाँ भी दीर्घ हो जाता।

"अन्त्यात्पूर्व उपधा" (७६) सूत्र द्वारा अन्तिम वर्ण से पूर्व वर्ण की उपधासञ्ज्ञा होती है। "सखन्" यहाँ नकार अन्तिम वर्ण है, उससे पूर्व वर्ण अकार है। अतः उपर्युक्त सूत्र से उपधाभूत अकार को दीर्घ होकर "सखान् + स्" इस स्थिति में सकार का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४६)विधिसूत्रम् – व्यञ्जनाच्च।।१७८।।

व्यञ्जनाच्च परः सिर्लोपमापद्यते।

अर्थ – व्यञ्जन से परे सि का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६) सूत्र की तथा **"ईकारान्तात्सिः"** (२२७) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

"सखान् + स्" यहाँ नकार व्यञ्जन है। अतः सकार का लोप हो कर "सखान्" इस स्थिति में नकार का भी लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१६८)विधिसूत्रम् – लिङ्गान्तनकारस्य।।१७६।।

लिङ्गान्तनकारस्य लोपो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च। सखा।

अर्थ – विराम अथवा व्यञ्जन के परे होने पर लिंगान्त नकार का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"विरामव्यञ्जनादिष्वनडुन्नहिवन्सीनां च"** (३१६) सूत्र की तथा **"संयोगान्तस्य लोपः"** (२५६) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

विराम – परवर्णाभावो विरामः। अथवा यदनन्तरं वर्णान्तरं नोच्यते स विरामः।

अर्थात् पर वर्ण के अभाव को "विराम" कहते हैं। अथवा जिस वर्ण के अनन्तर वर्णान्तर नहीं होता है, उसे विराम कहते हैं।

यहाँ सखान् शब्द का नकार विराम में होने से अर्थात् नकार के बाद कोई भी वर्ण नहीं होने से नकार का लोप हो जायेगा। नकार का लोप हो कर **"सखा"** रूप सिद्ध होता है।

भ्याम् भिस् आदि विभक्तियों में व्यञ्जन आदि में है। अतः ये व्यञ्जनादि विभक्तियाँ कहलाती हैं। नकारान्त "राजन्" आदि शब्दों की सिद्धि के समय उपर्युक्त सूत्र की प्रवृत्ति जानना चाहिये। इस सूत्र का अर्थ और सूत्र कण्ठस्थ रहना चाहिये।

सखा – सखि शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "सखि + स्" इस स्थिति में **"सख्युश्च"** (१७६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, "सखन् + स्" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ कर, "सखान् + स्" इस स्थिति मे **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८) सूत्र से सि का लोप कर, "सखान्" इस स्थिति मे **"लिङ्गान्तनकारस्य"** (१७६) सूत्र से नकार का भी लोप हो कर **"सखा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका– लिंगान्त नकार हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर लिंगान्त नकार नहीं कहते तो हन् धातु के ह्यस्तनी के "अहन्" के नकार का भी लोप हो जाता है।

सखि शब्द से प्रथमा विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र की प्राप्ति थी। परन्तु सखि के इकार के स्थान पर ऐकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१०१)विधिसूत्रम् – घुटि त्वैः ।।१८०।।

सख्युरन्तः ऐर्भवति असम्बुद्धौ घुटि परे। सखायौ। सखायः। सम्बुद्धौ मुनिशब्दवत्। सखीन्। टादौ।

अर्थ – सम्बुद्धि भिन्न घुट् परे होने पर सखि शब्द के इकार के स्थान पर ऐकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"सख्युश्च"** (१७६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

सि, औ, जस्, अम्, और औ ये पाञ्च घुट् विभक्तियाँ कहलाती हैं।

सखायौ – सखि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "सखि + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६६) सूत्र से सखि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ विभक्ति की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"घुटि त्वैः"** (१८०) सूत्र से इकार के स्थान पर ऐकार आदेश कर, "सखै + औ" इस स्थिति में **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश हो कर **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"सखायौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखायः – सखि शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "सखि + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६६) सूत्र से सखि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से जस् विभक्ति की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"घुटि त्वैः"** (१८०) सूत्र से इकार के स्थान पर ऐकार आदेश कर, "सखै + अस्" इस स्थिति में **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश होकर **"सखायः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे सखे – सखि शब्द से सम्बोधन के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा होने पर **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायात्"** इस परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश करने पर **"हे सखे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् **हे सखायौ। हे सखायः।** द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सखि + अम्= **"सखायम्"**। द्विवचन में पूर्ववत् – **"सखायौ"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सखीन् – सखि शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर इन् आदेश कर, "सखि + इन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ तथा इकार का लोप कर **"सखीन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में "टा" विभक्ति के आने पर **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से सामान्यतया अग्निसञ्ज्ञा की प्राप्ति थी। परन्तु तृतीया आदि विभक्ति में अग्निसञ्ज्ञा का निषेध करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७८)विधिसूत्रम् – न सखिष्टादावग्निः ।।१८१।।

सखिशब्दष्टादौ स्वरे परे नाग्निर्भवति। सख्या। सखिभ्याम्। सखिभिः। सख्ये। सखिभ्याम्। सखिभ्यः।।

अर्थ – टा आदि स्वर परे होने पर सखि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा नहीं होती है।

भावार्थ – अग्निसञ्ज्ञा का फल प्रथमा–द्वितीया विभक्ति में दर्शा दिया गया है। तृतीया–चतुर्थी–पञ्चमी–सप्तमी विभक्ति के एकवचन में अग्निसञ्ज्ञा का कार्य होता है। अग्निसञ्ज्ञा के अभाव में उपर्युक्त विभक्तियों में अग्निसञ्ज्ञक कार्य नहीं होगा।

नोट – भ्याम् भिस् आदि व्यञ्जनादि विभक्तियों के होने पर अग्निसञ्ज्ञक कोई कार्य नहीं होता है। परन्तु टीकाकार द्वारा **"टादौ स्वरे"** कहकर, स्वर का ग्रहण मेरी समझ के बाहर है।

सख्या – सखि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति थी, परन्तु **"न सखिष्टादावग्निः"** (१८१) सूत्र द्वारा निषेध होने पर, **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से प्राप्त अग्नि सञ्ज्ञक कार्य नहीं होने पर **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"सख्या"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखिभ्याम् – सखि शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"सखिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखिभिः – सखि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"सखिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सख्ये – सखि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में "ङे" विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति थी, परन्तु **"न सखिष्टादावग्निः"** (१८१) सूत्र द्वारा निषेध होने पर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"सख्ये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखिभ्यः – सखि शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्ग आदेश करने पर **"सखिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखि शब्द में पंचमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, अनुबन्ध लोप कर "सखि + अस्" इस स्थिति में अग्निसञ्ज्ञा का निषेध होने पर "अस्" के स्थान पर "उस्" आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६२)विधिसूत्रम् – ङसिङसोरुमः ।।१८२।।

सखिपतिभ्यां परयोर्ङसिङसोरकार उमापद्यते। सख्युः। सखिभ्याम्। सखिभ्यः। सख्युः। सख्योः। सखीनाम्।

अर्थ – सखि और पति शब्द से परे ङसि और ङस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"सखिपत्योर्ङिः"** (१८३) सूत्र की अनुवृति आ रही है।

सम्प्रति सखि शब्द की प्रक्रिया चल रही है। पति शब्द की प्रक्रिया सखि शब्द के बाद दर्शायेंगे।

सख्युः – सखि शब्द से पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "सखि + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति थी, परन्तु **"न सखिष्टादावग्निः"** (१८१) सूत्र द्वारा निषेध होने पर, **"ङसिङसोरुमः"** (१८२) सूत्र से अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "सखि + उस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सख्युः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सख्योः – सखि शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "सखि + ओस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"सख्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखीनाम् – सखि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "सखि + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर,"सखि + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"सखीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "ङि" के स्थान पर "औ" आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६१)विधिसूत्रम् – सखिपत्योर्ङिः ।।१८३।।

सखिपतिभ्यां परो ङिरेव और्भवति। पुनर्ङिग्रहणं किमर्थं ? सपूर्वस्वरनिवृत्त्यर्थं सख्यौ। सख्योः। सखिषु। एवं सुसखि–अतिसखि–असखि–प्रभृतयः। पतिशब्दस्य तु भेदः। पतिः। पती। पतयः। हे पते। हे पती। हे पतयः। पतिम्। पती। पतीन्। टादौ।

अर्थ– सखि और पति शब्द से परे ङि के स्थान पर ही औ आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

भावार्थ – "ङिरौ सपूर्वः" (१७१) सूत्र द्वारा अग्निसञ्ज्ञक तथा ङि के स्थान पर "औ" आदेश होता है। "सखि" शब्द में अग्निसञ्ज्ञा का निषेध होने से, मात्र ङि के स्थान पर ही **"सखिपत्योर्ङिः"** (१८३) सूत्र से औ आदेश होगा।

शंका – पुनः "ङि" का ग्रहण किसलिये किया है ?

समाधान – "ङिरौ सपूर्वः" (१७१) सूत्र से लिंग के अन्त "स्वर" तथा "ङि" ये दोनों के स्थान पर "औ" आदेश होता था। अतः ङि के पुनः ग्रहण होने से मात्र ङि के स्थान पर ही औ आदेश होगा, इकार और ङि के स्थान पर नहीं।

सख्यौ – सखि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "सखि + ङि" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति थी, परन्तु **"न सखिष्टादावग्निः"** (१८१) सूत्र द्वारा निषेध होने पर, **"सखिपत्योर्ङिः"** (१८३) सूत्र से ङि के स्थान पर "औ" आदेश कर, "सखि + औ" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"सख्यौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखिषु – सखि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "सखि + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर, **"सखिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सखि शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
सम्बोधन	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु

इसी प्रकार सुसखि, अतिसखि, असखि इत्यादि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

पति शब्द में भेद है। पति (स्वामी) शब्द के रूप प्रथमा, सम्बोधन तथा द्वितीया विभक्ति में मुनि शब्द के समान तथा तृतीया आदि में सखि शब्द के समान चलते हैं।

पति शब्द के प्रयोग में पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे च"** (१३२), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"औकारः पूर्वम्"** (१६२), **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३), **"सम्बुद्धौ च"** (१६४), **"अग्नेरमो कारः"** (१६५), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"न सखिष्टादावग्निः"** (१८१), **"ङसिङसोरुमः"** (१८२), **"सखिपत्योर्ङिः"** (१८३)।

पतिः – पति शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पतिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पती – पति शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर "पति + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से पति शब्द के इकार की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से औकार के स्थान पर इकार आदेश कर, "पति + इ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पूर्व इकार को दीर्घ आदेश कर तथा पर इकार का लोप हो कर **"पती"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पतयः – पति शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, अनुबन्ध लोप हो कर "पति + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से पति शब्द के इकार की अग्नि सञ्ज्ञा करने पर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "पते + अस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर, अय् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"पतयः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे पते – पति शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर अनुबन्धलोप कर, "पति + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सम्बुद्धिसञ्ज्ञक सि का लोप कर, **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायात्"** इस परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"हे पते"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे पती"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुवचन में पूर्ववत् – **"हे पतयः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पतिम् – पति शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में "अम्" विभक्ति के आने पर "पति + अम्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से पति शब्द के इकार की अग्नि सञ्ज्ञा करने पर, **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"पतिम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पतीन् – पति शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर शकार का अनुबन्ध लोप कर, "पति + अस्" इस स्थिति में **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर इन् आदेश हो कर (अकार के स्थान पर इकार आदेश तथा सकार के स्थान पर नकार आदेश) "पति + इन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पूर्व इकार को दीर्घ कर तथा पर इकार का लोप हो कर **"पतीन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पति शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से प्राप्त अग्निसञ्ज्ञा का निषेध करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७६)निषेधसूत्रम् – पतिरसमासे।।१८४।।

पतिशब्दो समासे टादौ स्वरे परे नाग्निर्भवति। पत्या। पतिभ्याम्। पतिभिः। पत्ये। पतिभ्याम्। पतिभ्यः। पत्युः। पतिभ्याम्। पतिभ्यः। पत्युः। पत्योः। पतीनाम्। पत्यौ। पत्योः। पतिषुः। भूपत्यादि शब्दानां समासत्वान्मुनिशब्दवत्। पन्थिशब्दस्य तु भेदः। पन्थि स् इति स्थिते। अम्शसोरा इति वर्त्तते।

अर्थ – टा आदि स्वर परे होने पर पति शब्द की असमास में अग्नि सञ्ज्ञा नहीं होती।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"न सखिष्टादावग्निः"** (१८१) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात्– पति शब्द समास के साथ होगा तो अग्निसञ्ज्ञा होगी अन्यथा नहीं होगी।

भूपति, नरपति, नृपति, मृगपति, गृहपति, पृथ्वीपति, क्षितिपति, लोकपति, देशपति, पशुपति, गणपति, सेनापति, आदि शब्द समासान्त कहलाते हैं। भूपति आदि शब्दों के रूप मुनि शब्द के समान चलते हैं।

पत्या – पति शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से प्राप्त अग्नि सञ्ज्ञा का **"पतिरसमासे"** (१८४) सूत्र से निषेध हो कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"पत्या"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पतिभ्याम् – पति शब्द से तृतीया–चतुर्थी–पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"पतिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पतिभिः – पति शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "पति + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"पतिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पत्ये – पति शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से प्राप्त अग्निसञ्ज्ञा का **"पतिरसमासे"** (१८४) सूत्र से निषेध हो कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"पत्ये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पतिभ्यः – पति शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "पति + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"पतिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पत्युः – पति शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि – ङस् विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से प्राप्त अग्नि सञ्ज्ञा का **"पतिरसमासे"** (१८४) सूत्र से निषेध हो कर, "पति + अस्" इस स्थिति में **"ङसिङसोरुमः"** (१८२) सूत्र से अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर, "पति + उस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पत्युः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पत्योः – पति शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "पति + ओस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पत्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पतीनाम् – पति शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "पति + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "पति + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"पतीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पत्यौ – पति शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "पति + ङि" इस स्थिति में **"सखिपत्योर्ङिः"** (१८३) सूत्र से ङि के स्थान पर "औ" आदेश कर तथा **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"पत्यौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पतिषु – पति शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर "पति + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर, **"पतिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पति शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
सम्बोधन	हे पते	हे पती	हे पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु

भूपति, नरपति आदि शब्दों का समास होने से मुनिशब्दवत् रूप चलेंगे।

भूपति (राजा) शब्द की सिद्धि में पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीय–षान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"औकारः पूर्वम्"** (१६२), **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३), **"सम्बुद्धौ च"** (१६४), **"अग्नेरमो कारः"** (१६५), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७), **"ङे"** (१६८), **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६), **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१),।

भूपतिः – भूपति शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भूपतिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपती – भूपति शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर "भूपति + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से भूपति शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से औकार के स्थान पर इकार आदेश हो कर "भूपति + इ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पूर्व इकार को दीर्घ आदेश कर तथा पर इकार का लोप हो कर **"भूपती"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतयः – भूपति शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, अनुबन्ध लोप हो कर "भूपति + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से पति शब्द के इकार की अग्नि सञ्ज्ञा करने पर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर, "भूपते + अस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्ग आदेश हो कर **"भूपतयः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे भूपते – भूपति शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "भूपति + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर, **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायात्"** इस परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"हे भूपते"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे भूपती"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुवचन में पूर्ववत् – **"हे भूपतयः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतिम् – भूपति शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में "अम्" विभक्ति के आने पर "भूपति + अम्" इस स्थिति में **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"भूपतिम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतीन् – भूपति शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर शकार का अनुबन्ध लोप कर, "भूपति + अस्" इस स्थिति में **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर इन् आदेश हो कर "भूपति + इन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से पूर्व इकार को दीर्घ आदेश तथा पर इकार का लोप हो कर **"भूपतीन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतिना – भूपति शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से भूपति शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से "टा" के स्थान पर "ना" आदेश हो कर **"भूपतिना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतिभ्याम् – भूपति शब्द से तृतीया–चतुर्थी–पंचमी–विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **भूपतिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतिभिः – भूपति शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "भूपति + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"भूपतिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतये – भूपति शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, ङकार का अनुबन्ध लोप कर, "भूपति + ए" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से भूपति शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर एकार हो कर, "भूपते + ए" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश हो कर **"भूपतये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतिभ्यः – भूपति शब्द से चतुर्थी–पंचमी–विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "भूपति + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भूपतिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतेः – भूपति शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "भूपति + अस्" इस स्थिति में, **"इदुदग्निः"** (१६६) सूत्र से भूपति शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर एकार तथा अस् के अकार का लोप हो कर, "भूपते + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"भूपतेः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपत्योः – भूपति शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "भूपति + ओस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर, सकार के स्थान पर **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से विसर्जनीय आदेश हो कर **"भूपत्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतीनाम् – भूपति शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर "भूपति + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर "भूपति + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ आदेश हो कर **"भूपतीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतौ – भूपति शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "भूपति + ङि" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा हो कर **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से ङि तथा इकार के स्थान पर "औकार" आदेश हो कर "भूपत् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"भूपतौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपतिषु – भूपति शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप कर, "भूपति + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"भूपतिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भूपति शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
सम्बोधन	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः
द्वितीया	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्

तृतीया	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
चतुर्थी	भूपतये	भूपतिभ्याम्	भूपतिभ्यः
पञ्चमी	भूपतेः	भूपतिभ्याम्	भूपतिभ्यः
षष्ठी	भूपतेः	भूपत्योः	भूपतीनाम्
सप्तमी	भूपतौ	भूपत्योः	भूपतिषु

पन्थि शब्द में भेद है। **"अम्शसोराः"** (२०७) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पन्थि (मार्ग) शब्द को अन्य व्याकरण में तथा शब्दकोशकार ने पथिन् नकारान्त शब्द स्वीकार किया है। पन्थि, मन्थि, ऋभुक्षि शब्द के रूप किसी भी रूप से नहीं मिलते हैं।

पन्थि–मन्थि शब्द के प्रयोग में पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"अग्नेरमो कारः"** (१६५)।

पन्थि शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन की विवक्षा में सि विभक्ति के आने पर, इकार अनुबन्ध लोप होकर "पन्थि–स्" इस स्थिति में इकार के स्थान पर आकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.११२)विधिसूत्रम् – पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ।।१८५।।

पन्थ्यादीनामन्त आकारो भवति सौ परे। पन्थाः।

अर्थ – सि परे होने पर पन्थि, मन्थि, ऋभुक्षि शब्दों के इकार के स्थान पर आकार अन्तादेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अम्शसोराः"** (२०७) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पन्थाः – पन्थि शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ"** (१८५) सूत्र से इकार के स्थान पर आकार आदेश हो कर, "पन्था + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"पन्थाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पन्थि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा होने पर, पन्थि शब्द के इकार के स्थान पर अन् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.११३) विधिसूत्रम् – अनन्तो घुटि।।१८६।।

पन्थ्यादीनामन्तो न् भवति घुटि परे। पन्थानौ। पन्थानः। सम्बोधने अपि तद्वत्। हे पन्थाः। हे पन्थानौ। हे पन्थानः। अग्नेरमोकार इति प्राप्ते। अन्तरङ्गबहिरङ्गयो–रन्तरङ्गो विधिर्बलवान्। अल्पाश्रितमन्तरङ्गम्। बह्वाश्रितं बहिरङ्गम्। पन्थानम्। पन्थानौ।

अर्थ – घुट् परे होने पर पन्थि मन्थि, ऋभुक्षि शब्दों के अन्त इकार के स्थान पर अन् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ"** (१८५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"पंचादौ घुट्" (१५६) सूत्र द्वारा सि, औ, जस्, अम् और औ इन पांच विभक्तियों की घुट् संज्ञा होती है।

पन्थानौ – पन्थि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "पन्थि + औ" इस स्थिति में **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा होने पर, **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, "पन्थन् + औ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से अन् के अकार को दीर्घ हो कर **"पन्थानौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पन्थानः – पन्थि शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + अस्" इस स्थिति में **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से जस् की घुट् संज्ञा होने पर, **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, "पन्थन् + अस्" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से अन् के अकार को दीर्घ कर, "पन्थान् + अस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्ग आदेश करने पर, **"पन्थानः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति के समान **"हे पन्थाः"। हे पन्थानौ। हे पन्थानः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + अम्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से पन्थि शब्द की अग्निसञ्ज्ञा होने पर, **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से अम् के अकार का लोप तथा **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा होने पर, **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश युगपत् प्राप्त है। एक साथ दो सूत्रों की प्राप्ति होने पर, **"अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्गो विधिर्बलवान्"** अर्थात् – अन्तरंग और बहिरंग विधि में अन्तरंग विधि बलवान् होती है।

शंका– अन्तरंग विधि किसे कहते हैं ?
समाधान– अल्प शब्दों के आश्रित रहने वाले सूत्र को अन्तरंग कहते हैं।

शंका – बहिरंग किसे कहते हैं ?
समाधान – बहुत शब्दों के आश्रित रहने वाले सूत्र को बहिरंग कहते हैं।

इन परिभाषाओं के माध्यम से **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से सभी अग्नि सञ्ज्ञक शब्दों से परे अम् के अकार का लोप होता है। परन्तु **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र से मात्र पन्थि, मन्थि, ऋभुक्षि शब्दों के इकार के स्थान पर अन् आदेश होता है। अतः अन्तरंग कार्य **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र से होगा। तथा बहिरंग कार्य **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से होगा।

पन्थानम् – पन्थि शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + अम्" इस स्थिति में **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा होने पर, **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र से अन्तरंग कार्य इकार के स्थान पर अन् आदेश कर "पन्थन् + अम्" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से अकार की उपधा को दीर्घ आदेश हो कर, **"पन्थानम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पन्थि शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर पन्थि शब्द के इकार का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.११४)विधिसूत्रम् – अघुट्स्वरे लोपम्।।१८७।।

पन्थ्यादीनामन्तो लोपमापद्यते अघुटस्वरे परे।

अर्थ – अघुट् स्वर परे होने पर पन्थि, मन्थि, ऋभुक्षि शब्दों के इकार का लोप होता है।

(३.४२६देखना है)

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ"** (१८५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अघुट् स्वर – शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस् आम्, ङि. ओस् कहलाते हैं। इकार का लोप होने पर पन्थ्, मन्थ्, ऋभुक्ष् शेष रहता है।

"पन्थि + अस्" इस स्थिति में उपर्युक्त सूत्र से इकार का लोप हो कर "पन्थ् + अस्" इस स्थिति में "पन्थ्" शब्द के नकार का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.११५)विधिसूत्रम् – व्यञ्जने चैषां निः ।।१८८।।

पन्थ्यादीनां नकारो लोपमापद्यते व्यञ्जने चाघुट्स्वरे परे। पथः। पथा। पथिभ्याम्। पथिभिः। पथे। पथिभ्याम्। पथिभ्यः। पथः। पथिभ्याम्। पथिभ्यः। पथः। पथोः। पथाम्। पथि। पथोः। पथिषु। एवं मन्थि–ऋभुक्षि–शब्दौ। इति इकारान्ताः। ईकारान्तः पुल्लिङ्गो यवक्री शब्दः। ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ–यवक्रीः। स्वरादौ। आधातोरिति वर्तमाने।

अर्थ – व्यञ्जन अथवा अघुट् स्वर परे होने पर पन्थि, मन्थि, के नकार का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ"** (१८५) सूत्र की तथा **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अघुट् स्वर – शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस् ये अघुट स्वर वाली विभक्तियाँ हैं।

व्यञ्जन – भ्याम्, भिस्, भ्याम्, भ्यस्, भ्याम्, भ्यस्, सुप् ये व्यञ्जन वाली विभक्तियाँ हैं।

"पन्थ् + अस्" यहाँ स्वर वाली विभक्ति होने पर नकार का लोप हो कर **"पथः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथः – पन्थि शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + अस्" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप कर "पन्थ् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप कर "पथ् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "पथस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पथः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथा – पन्थि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "पन्थि + आ" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "पन्थ् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप हो कर "पथ् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पथा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथिभ्याम् – पन्थि शब्द से तृतीया–चतुर्थी–पञ्चमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर "पन्थि + भ्याम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप हो कर **"पथिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथिभिः – पन्थि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + भिस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप हो कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"पथिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथे – पन्थि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "पन्थि + आ" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "पन्थ् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप हो कर "पथ् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पथे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथिभ्यः – पन्थि शब्द से चतुर्थी – पञ्चमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + भ्यस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप हो कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"पथिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथः – पन्थि शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + अस्" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप कर, "पन्थ् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप कर, "पथ् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"पथः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथोः – पन्थि शब्द से षष्ठी सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + ओस्" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "पन्थ् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप हो कर "पथ् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"पथोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथाम् – पन्थि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + आम्" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "पन्थ् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप हो कर "पथ् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पथाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथि – पन्थि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "पन्थि + इ" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "पन्थ् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप हो कर "पथ् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पथि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पथिषु – पन्थि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर "पन्थि + सु" इस स्थिति में **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र से नकार का लोप कर, "पथि + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने पर **"पथिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका – सूत्र में **"एषां"** पद का ग्रहण क्यों किया ?

समाधान – सूत्र में "एषां" पद के ग्रहण करने से मात्र पन्थि आदि के ही नकार का लोप होगा, अन्य शब्दों का नहीं।

पन्थि (मार्ग) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
सम्बोधन	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पञ्चमी	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
षष्ठी	पथः	पथोः	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु

इसी प्रकार मन्थि तथा ऋभुक्षि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

मन्थि (मथनी) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मन्थाः	मन्थानौ	मन्थानः
सम्बोधन	हे मन्थाः	हे मन्थानौ	हे मन्थानः
द्वितीया	मन्थानम्	मन्थानौ	मथः
तृतीया	मथा	मथिभ्याम्	मथिभिः
चतुर्थी	मथे	मथिभ्याम्	मथिभ्यः
पञ्चमी	मथः	मथिभ्याम्	मथिभ्यः
षष्ठी	मथः	मथोः	मथाम्
सप्तमी	मथि	मथोः	मथिषु

नोट – ऋभुक्षि शब्द में नकार नहीं है। अतः **"व्यञ्जने चैषां निः"** (१८८) सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी।

औ, जस्, अम् विभक्तियों के आने पर, **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र द्वारा इकार के स्थान पर अन् आदेश तथा **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से दीर्घ कर, "ऋभुक्षानौ" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"ऋभुक्षाणौ"** आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

ऋभुक्षाः – ऋभुक्षि शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ"** (१८५) सूत्र से इकार के स्थान पर आकार आदेश कर, "ऋभुक्षा + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"ऋभुक्षाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षाणौ – ऋभुक्षि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा होने पर, **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र द्वारा इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से दीर्घ कर, "ऋभुक्षानौ" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"ऋभुक्षाणौ"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

ऋभुक्षाणम् – ऋभुक्षि शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "पन्थि + अम्" इस स्थिति में **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा होने पर, **"अनन्तो घुटि"** (१८६) सूत्र से अन्तरंग कार्य इकार के स्थान पर अन् आदेश कर "पन्थन् + अम्" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से अकार की उपधा को दीर्घ आदेश कर, **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"ऋभुक्षाणम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षः– ऋभुक्षि शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "ऋभुक्षि + अस्" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर, "ऋभुक्ष् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "ऋभुक्षस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ऋभुक्षः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षा– ऋभुक्षि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "ऋभुक्षि + आ" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "ऋभुक्ष् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ऋभुक्षा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षिभ्याम् – ऋभुक्षि शब्द से तृतीया–चतुर्थी–पञ्चमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"ऋभुक्षिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षिभिः – ऋभुक्षि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"ऋभुक्षिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षे – ऋभुक्षि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "ऋभुक्षि + आ" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "ऋभुक्ष् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ऋभुक्षे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षिभ्यः – ऋभुक्षि शब्द से चतुर्थी – पञ्चमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"ऋभुक्षिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षः – ऋभुक्षि शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "ऋभुक्षि + अस्" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप कर, "ऋभुक्ष् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"ऋभुक्षः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षोः – ऋभुक्षि शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "ऋभुक्षि + ओस्" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "ऋभुक्ष् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"ऋभुक्षोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षाम् – ऋभुक्षि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "ऋभुक्षि + आम्" इस स्थिति में **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप हो कर "ऋभुक्ष् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ऋभुक्षाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षि – ऋभुक्षि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "ऋभुक्षि + इ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति होने पर, **"अघुट्स्वरे लोपम्"** (१८७) सूत्र से इकार का लोप कर, "ऋभुक्ष् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ऋभुक्षि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षिषु – ऋभुक्षि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने पर **"ऋभुक्षिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋभुक्षि (इन्द्र) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	ऋभुक्षाः	ऋभुक्षाणौ	ऋभुक्षाणः
सम्बोधन	हे ऋभुक्षाः	हे ऋभुक्षाणौ	हे ऋभुक्षाणः
द्वितीया	ऋभुक्षाणम्	ऋभुक्षाणौ	ऋभुक्षः
तृतीया	ऋभुक्षा	ऋभुक्षिभ्याम्	ऋभुक्षिभिः
चतुर्थी	ऋभुक्षे	ऋभुक्षिभ्याम्	ऋभुक्षिभ्यः
पञ्चमी	ऋभुक्षः	ऋभुक्षिभ्याम्	ऋभुक्षिभ्यः
षष्ठी	ऋभुक्षः	ऋभुक्षोः	ऋभुक्षाम्
सप्तमी	ऋभुक्षि	ऋभुक्षोः	ऋभुक्षिषु

।। इस प्रकार इकारान्त पुल्लिंग शब्दों का प्रकरण समाप्त हुआ।।

अब ईकारान्त पुल्लिंग, शब्दों का प्रकरण प्रारम्भ होता है।

ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की सिद्धि में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। अतः सर्वप्रथम ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों कि सिद्धि के लिये निम्ननियम हृदयंगम कर लें।

(१) ईकारान्त शब्द में "यवक्री" और "सेनानी" शब्द हैं। यवक्री शब्द में "क्री" शब्द में "क् र् ई" इस प्रकार "क्" और "र्" दो व्यञ्जन होने पर संयोग भी हो गया। अतः संयोग होने पर "औ", "जस्" आदि स्वरान्त विभक्तियों के आने पर ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर प्रयोग सिद्ध करना चाहिये।

(२) "सेनानी" शब्द के अन्त में भी ईकार है परन्तु "नी" में संयोग नहीं होने के कारण स्वर आदि विभक्तियों के होने पर ईकार के स्थान पर "य्" आदेश कर के प्रयोग सिद्ध करना चाहिये।

(३) ऊकारान्त शब्द में "कटप्रू" और "खलपू" शब्द हैं। कटप्रू शब्द में "प्रू" शब्द में "प् र् उ" इस प्रकार प् और र् दो व्यञ्जन होने पर, संयोग भी हो गया। अतः संयोग होने पर औ, जस् आदि स्वरान्त विभक्तियों के आने पर ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करके प्रयोग सिद्ध करना चाहिये।

(४) "खलपू" शब्द के अन्त में भी ऊकार है। परन्तु "पू" में संयोग नहीं होने के कारण स्वर आदि विभक्तियों के होने पर ऊकार के स्थान पर व् आदेश करके प्रयोग सिद्ध करना चाहिये।

(५) अगर किसी भी ईकारान्त शब्द में संयोग नहीं हो और उस पद में एक ही स्वर हो तो "ईकार" के स्थान पर इय् आदेश करना चाहिये। जैसे – "नी" शब्द यद्यपि संयोग से रहित है। परन्तु उसमें एक ही स्वर है। अतः एक स्वर होने के कारण इय् आदेश होगा। सेनानी शब्द में अनेक स्वर हैं। अतः ईकार के स्थान पर "य्" आदेश होगा।

(६) अगर किसी भी ऊकारान्त शब्द में संयोग नहीं हो और उस पद में एक ही स्वर हो तो ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करना चाहिये। जैसे – "लू" शब्द यद्यपि संयोग से रहित है। परन्तु उसमें एक ही स्वर है। अतः एक स्वर होने के कारण ऊकार को उव् आदेश होगा।

नोट – एकस्वर वाले ईकारान्त – ऊकारान्त शब्द यदि संयोग से सहित है तो भी पूर्व नियम के अनुसार स्वर वाली विभक्तियों के आने पर "ईकार" के स्थान पर इय् आदेश तथा ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करना चाहिये।

यवक्री (जौ खरीदने वाला) तथा कटप्रू ( ) शब्द के प्रयोग में पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०)।

यवक्रीः – यवक्री शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में "सि" विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"यवक्रीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूः – कटप्रू शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में "सि" विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कटप्रूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन आदि में **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से धातु की अनुवृत्ति आ रही है।

यवक्री तथा कटप्रू शब्द से प्रथमा–द्वितीय विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर "यवक्री" शब्द के ईकार के स्थान पर इय् आदेश तथा कटप्रू शब्द के ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३३)विधिसूत्रम् – ईदूतोरियुवौ स्वरे।।१८६।।

धातोरीदूतोरियुवौ भवन्तो विभक्तिस्वरे परे। पुनः स्वर ग्रहणं किमर्थम्। अघुट्स्वरे निवृत्त्यर्थम्। यवक्रियौ। यवक्रियः। सम्बोधने पि तद्वत्। यवक्रियम्। यवक्रियौ। यवक्रियः। यवक्रिया। यवक्रीभ्याम्। यवक्रीभिः। इत्यादि। एवं सुश्रीनीप्रभृतयः। सेनानी शब्दस्य तु भेदः। सौ–सेनानीः। स्वरादावीदूतोरिति प्राप्ते।

अर्थ – स्वर वाली विभक्ति परे होने पर धातु के ईकार और ऊकार के स्थान पर इय् और उव् आदेश होता है।

स्वरादि विभक्तियाँ – औ, जस्, अम्, औ, शस् टा, ङे, ङसि, ङस् ओस्, आम्, ङि ये स्वर वाली विभक्तियाँ कहलाती हैं।

शंका – पुनः स्वर का ग्रहण किसलिये किया है ?

समाधान – "अघुट्स्वर" की निवृत्ति के लिये पुनः स्वर का ग्रहण किया है। अर्थात् **"आधातोरघुट्स्वरे"** (१६०) सूत्र से अघुट्स्वर की अनुवृत्ति आती है। अतः अघुट् स्वर की निवृत्ति करने के लिये तथा मात्र स्वर वाली विभक्तियों का ग्रहण करने के लिये, पुनः स्वर का ग्रहण किया है।

यवक्रियौ – यवक्री शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश हो कर "यवक्रिय् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"यवक्रियौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवौ – कटप्रू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर "कटप्रुव् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रियः – यवक्री शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में "जस्–शस्" विभक्ति के आने पर, "यवक्री + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "यवक्रिय् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"यवक्रियः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवः – कटप्रू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में "जस्–शस्" विभक्ति के आने पर, "कटप्रू + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "कटप्रुव् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कटप्रुवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी इसी प्रकार **हे यवक्रीः, हे यवक्रियौ, हे यवक्रियः।** तथा **हे कटप्रूः, हे कटप्रुवौ हे कटप्रुवः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

यवक्रियम् – यवक्री शब्द से द्वितीय विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश हो कर "यवक्रिय् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"यवक्रियम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवम्– कटप्रू शब्द से द्वितीय विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर "कटप्रुव् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रिया – यवक्री शब्द से तृतीय विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश हो कर "यवक्रिय् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"यवक्रिया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवा– कटप्रू शब्द से तृतीय विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर "कटप्रुव् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रीभ्याम् — यवक्री शब्द से तृतीय – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"यवक्रीभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूभ्याम् — कटप्रू शब्द से तृतीय – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"कटप्रूभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रीभिः — यवक्री शब्द से तृतीय विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"यवक्रीभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूभिः — कटप्रू शब्द से तृतीय विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"कटप्रूभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रिये — यवक्री शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश हो कर "यवक्रिय् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"यवक्रिये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवे— कटप्रू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर "कटप्रुव् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रीभ्यः — यवक्री शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"यवक्रीभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूभ्यः — कटप्रू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"कटप्रूभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रियः – यवक्री शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "यवक्री + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश हो कर "यवक्रिय् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"यवक्रियः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवः – कटप्रू शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "कटप्रू + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "कटप्रुव् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"कटप्रुवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रियोः – यवक्री शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "यवक्री + ओस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "यवक्रिय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"यवक्रियोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवोः – कटप्रू शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "कटप्रू + ओस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "कटप्रुव् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"कटप्रुवोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रियाम् – यवक्री शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "यवक्री + आम्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "यवक्रिय् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"यवक्रियाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवाम् – कटप्रू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "कटप्रू + आम्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर "कटप्रुव् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्रीषु – यवक्री शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"यवक्रीषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूषु – कटप्रू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"कटप्रूषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

यवक्री (जौ खरीदने वाला) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	यवक्रीः	यवक्रियौ	यवक्रियः
सम्बोधन	हे यवक्रीः	हे यवक्रियौ	हे यवक्रियः
द्वितीया	यवक्रियम्	यवक्रियौ	यवक्रियः
तृतीया	यवक्रिया	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभिः
चतुर्थी	यवक्रिये	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभ्यः
पञ्चमी	यवक्रियः	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभ्यः
षष्ठी	यवक्रियः	यवक्रियोः	यवक्रियाम्
सप्तमी	यवक्रियि	यवक्रियोः	यवक्रीषु

कटप्रू शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	कटप्रूः	कटप्रुवौ	कटप्रुवः
सम्बोधन	हे कटप्रूः	हे कटप्रुवौ	हे कटप्रुवः
द्वितीया	कटप्रुवम्	कटप्रुवौ	कटप्रुवः
तृतीया	कटप्रुवा	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभिः
चतुर्थी	कटप्रुवे	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभ्यः
पञ्चमी	कटप्रुवः	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभ्यः
षष्ठी	कटप्रुवः	कटप्रुवोः	कटप्रुवाम्
सप्तमी	कटप्रुवि	कटप्रुवोः	कटप्रूषु

इसी प्रकार सुश्री और नी आदि शब्द जानना चाहिये।

सुश्री ( ) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सुश्रीः	सुश्रियौ	सुश्रियः
सम्बोधन	हे सुश्रीः	हे सुश्रियौ	हे सुश्रियः
द्वितीया	सुश्रियम्	सुश्रियौ	सुश्रियः
तृतीया	सुश्रिया	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभिः
चतुर्थी	सुश्रिये	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः
पञ्चमी	सुश्रियः	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः
षष्ठी	सुश्रियः	सुश्रियोः	सुश्रियाम्
सप्तमी	सुश्रियि	सुश्रियोः	सुश्रीषु

नी (ले जाने वाला) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	नीः	नियौ	नियः
सम्बोधन	हे नीः	हे नियौ	हे नियः
द्वितीया	नियम्	नियौ	नियः
तृतीया	निया	नीभ्याम्	नीभिः
चतुर्थी	निये	नीभ्याम्	नीभ्यः
पञ्चमी	नियः	नीभ्याम्	नीभ्यः
षष्ठी	नियः	नियोः	नियाम्
सप्तमी	नियाम्	नियोः	नीषु

सेनानी शब्द में भेद है।

सेनानी और खलपू (खलिहान को साफ करने वाला) शब्द के रूप एक समान रहते हैं। अन्तर केवल इतना है की सेनानी शब्द से स्वरादि विभक्तियों के होने पर ईकार के स्थान पर यकार आदेश होता है। तथा खलपू शब्द से स्वरादि विभक्तियों के होने पर ऊकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

सेनानी और खलपू शब्द के प्रयोग में पूर्वकथित जिन सूत्रों का उपयोग होता है। उन सूत्रों को आप अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा– **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०)।

सेनानीः – सेनानी शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, इकार का अनुबन्ध लोप कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सेनानीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूः – खलपू शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, इकार का अनुबन्ध लोप कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"खलपूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनानी और खलपू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, ईकार के स्थान पर "यकार" आदेश तथा ऊकार के स्थान पर "वकार" आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३६)विधिसूत्रम् – अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ।।१६०।।

अनेकाक्षरयोर्लिङ्गयोरसंयोगात्परयोरीदूतो य्वौ भवतो विभक्तिस्वरे परे। सेनान्यौ। सेनान्यः। सम्बोधने पि तद्वत्। सेनान्यम्। सेनान्यौ। सेनान्यः। सेनान्या। सेनानीभ्याम्। सेनानीभिः। सेनान्ये। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनान्यः। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनान्यः। सेनान्योः। सेनान्याम्।। अनेकाक्षरयोरिति किं। नियौ। नियः। लुवौ। लुवः। असंयोगादिति किं यवक्रियौ। कटप्रुवौ। ङौ।

अर्थ – स्वर वाली विभक्ति परे होने पर अनेक अक्षर के लिंग के संयोग भिन्न से परे ईकार और ऊकार के स्थान पर क्रमशः य् और व् आदेश होते हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

भावार्थ – ईकारान्त और ऊकारान्त लिंग के अक्षर एक से अधिक होने चाहिये। जैसे "सेनानी" और "खलपू" शब्द में तीन अक्षर हैं। तथा अनेक अक्षर होने के साथ किसी के साथ संयोग नहीं होना चाहिये। जैसे – "यवक्री" और "कटप्रू" शब्द में क् और र् का तथा प् और र् संयोग है। परन्तु सेनानी और खलपू शब्द में किसी का भी संयोग नहीं है।

सेनान्यौ – सेनानी शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "सेनानी + औ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश प्राप्त था परन्तु **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्यौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वौ – खलपू शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "खलपू + औ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश प्राप्त था परन्तु **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनान्यः – सेनानी शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "सेनानी + अस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वः – खलपू सेनानी शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "खलपू + अस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी इसी प्रकार **"हे सेनानीः, हे सेनान्यौ, हे सेनान्यः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं। **"हे खलपूः, हे खलप्वौ, हे खलप्वः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सेनान्यम् – सेनानी शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "सेनानी + अम्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्यम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वम् – खलपू शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "खलपू + अम्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनान्या – सेनानी शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "सेनानी + आ" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्या"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वा – खलपू शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "खलपू + आ" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनानीभ्याम् – सेनानी शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"सेनानीभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूभ्याम् – खलपू शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"खलपूभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनानीभिः – सेनानी शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सेनानीभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूभिः – खलपू शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"खलपूभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनान्ये – सेनानी शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "सेनानी + ए" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्ये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वे – खलपू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "खलपू + ए" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनानीभ्यः – सेनानी शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सेनानीभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूभ्यः – खलपू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"खलपूभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनान्यः – सेनानी शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "सेनानी + अस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वः – खलपू शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "खलपू + अस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनान्योः – सेनानी शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "सेनानी + ओस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वोः – खलपू शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "खलपू + ओस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनान्याम् – सेनानी शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "सेनानी + आम्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश कर, "सेनान् य् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वाम् – खलपू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "खलपू + ओस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, "खलप् व् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका – अनेक अक्षर हों ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर अनेक अक्षर नहीं कहते तो "नी" (ले जाने वाला) शब्द के ईकार को य् तथा लू शब्द के ऊकार को व् आदेश हो जाता परन्तु "नी" तथा "लू" शब्द में एक अक्षर होने से **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से इय् तथा उव् आदेश होगा।

शंका – संयोग से रहित हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर असंयोग नहीं कहते तो यवक्री तथा "कटप्रू" शब्द के ईकार तथा ऊकार को भी य् तथा व् आदेश हो जाता।

सेनानी शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "ङि" के स्थान पर आम् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७७)विधिसूत्रम् – नियो ङिराम् ।।१६१।।

नियः परो ङिराम् भवति। सेनान्याम्। सेनान्योः। सेनानीषु। एवमग्रणी–ग्रामणी–प्रभृतयः। सुधी शब्दस्य तु भेदः। सौ सुधीः। स्वरादावनेकाक्षरयोरिति यत्वे प्राप्ते। ईदूतोरियुवौ स्वरे इति वर्त्तते।

अर्थ – नी से परे ङि के स्थान पर आम् आदेश होता है।

अर्थात् जिन शब्दों के अन्त में "नी" होगी या मात्र "नी" भी होगी तो उन शब्दों से परे ङि के स्थान पर आम् आदेश होगा।

सेनान्याम् – सेनानी शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "सेनानी + ङि" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर य् आदेश हो कर "सेनान्य् + इ" इस स्थिति में **"नियो ङिराम्"** (१६१) सूत्र से "ङि" के स्थान पर आम् आदेश कर "सेनान्य् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सेनान्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वि – खलपू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "खलपू + इ" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, "खलप् व् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"खलप्वि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – "नियो ङिराम्" (१६१) सूत्र में नी का उल्लेख होने से खलपू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, ङि के स्थान पर आम् आदेश नहीं किया।

सेनानीषु – सेनानी शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने पर **"सेनानीषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूषु – खलपू शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने पर **"खलपूषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सेनानी शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सेनानीः	सेनान्यौ	सेनान्यः
सम्बोधन	हे सेनानीः	हे सेनान्यौ	हे सेनान्यः
द्वितीया	सेनान्यम्	सेनान्यौ	सेनान्यः
तृतीया	सेनान्या	सेनानीभ्याम्	सेनानीभिः
चतुर्थी	सेनान्ये	सेनानीभ्याम्	सेनानीभ्यः

पञ्चमी	सेनान्यः	सेनानीभ्याम्	सेनानीभ्यः
षष्ठी	सेनान्यः	सेनान्योः	सेनान्याम्
सप्तमी	सेनान्याम्	सेनान्योः	सेनानीषु

खलपू (खलिहान को साफ करने वाला) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः
सम्बोधन	हे खलपूः	हे खलप्वौ	हे खलप्वः
द्वितीया	खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः
तृतीया	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
चतुर्थी	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
पञ्चमी	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
षष्ठी	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
सप्तमी	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु

इसी प्रकार अग्रणी, ग्रामणी (ग्राम का नेता) आदि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

अग्रणी शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	अग्रणीः	अग्रण्यौ	अग्रण्यः
सम्बोधन	हे अग्रणीः	हे अग्रण्यौ	हे अग्रण्यः
द्वितीया	अग्रण्यम्	अग्रण्यौ	अग्रण्यः
तृतीया	अग्रण्या	अग्रणीभ्याम्	अग्रणीभिः
चतुर्थी	अग्रण्ये	अग्रणीभ्याम्	अग्रणीभ्यः
पञ्चमी	अग्रण्यः	अग्रणीभ्याम्	अग्रणीभ्यः
षष्ठी	अग्रण्यः	अग्रण्योः	अग्रण्याम्
सप्तमी	अग्रण्याम्	अग्रण्योः	अग्रणीषु

सुधी (बुद्धिमान्) शब्द में भेद है। सुध्यायतीति सुधीः।

यद्यपि सुधी शब्द में अनेक अक्षर हैं तथा संयोग से रहित भी है। अतः नियमानुसार **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद य्वौ"** (१६०) सूत्र की प्रवृत्ति होना चाहिये परन्तु अग्रिम सूत्र में सुधी शब्द का विशेष उल्लेख होने पर स्वर वाली विभक्तियों के आने पर ईकार के स्थान पर इय् आदेश होगा।

सुधी शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद य्वौ"** (१६०)।

सुधीः – सुधी शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सुधीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन आदि में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र की प्राप्ति होने पर। **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार की प्राप्ति थी परन्तु ईकार के स्थान पर इय् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३४)विधिसूत्रम् – सुधीः।।१६२।।

सुधीशब्दं इयं प्राप्नोति विभक्तिस्वरे परे। सुधियौ। सुधियः। सम्बोधने पि तद्वत्। सुधियम्। सुधियौ। सुधियः। सुधिया। सुधीभ्याम्। सुधीभिः। सुधिये। सुधीभ्याम्। सुधीभ्यः। सुधियः। सुधीभ्याम्। सुधीभ्यः। सुधियः। सुधियोः। सुधियाम्। सुधियि। सुधियोः। सुधीषु। इति ईकारान्ताः। उकारान्तः पुल्लिङ्गो भानुशब्दः। स च मुनिशब्दवत्। अयं भेदः – उत ओत्वमवादेशश्च। भानुः, भानू, भानवः। हे भानो, हे भानू, हे भानवः। भानुम्, भानू, भानून्। भानुना, भानुभ्याम्, भानुभिः। भानवे, भानुभ्याम्, भानुभ्यः। भानोः, भानुभ्याम्, भानुभ्यः। भानोः, भान्वोः, भानूनाम्। भानौ, भान्वोः, भानुषु। एवमृतु–मेरु–गुरु–तरु–धातु–सेतु–बाहु–वायुबहुप्रभृतयः। इत्युकारान्ताः।

ऊकारान्तः पुल्लिंगः कटप्रू शब्दः। स च यवक्रीशब्दवत्। उवादेशो त्र भेदः। कटप्रूः। कटपुवौ, कटप्रुवः। सम्बोधने पि तद्वत्। कटप्रुवम्, कटप्रुवौ, कटप्रुवः। कटप्रुवा, कटप्रूभ्याम्, कटप्रूभिः। इत्यादि। खलपू शरलू काण्डलू प्रभृतीनां सेनानी शब्दवत्। वत्वं भेदः। प्रतिभूशब्दस्य तु भेदः। सौ–प्रतिभूः। स्वरादौ–

अर्थ – स्वर वाली विभक्ति के परे होने पर सुधी शब्द के ईकार के स्थान पर इय् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

स्वर वाली विभक्तियाँ – औ, जस्, अम्, औ, शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, ङि ये स्वर वाली विभक्तियाँ कहलाती हैं।

सुधियौ – सुधी शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "सुधी + औ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) तथा **"अनेकाक्षरयोस् त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) दोनों सूत्रों की क्रमशः प्राप्ति होने पर **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "सुधिय् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सुधियौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधियः – सुधी शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "सुधी + अस्" इस स्थिति में **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "सुधिय् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सुधियः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी इसी प्रकार **हे सुधीः, हे सुधियौ, हे सुधियः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सुधियम् – सुधी शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "सुधी + अम्" इस स्थिति में **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सुधियम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधिया – सुधी शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "सुधी + आ" इस स्थिति में **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सुधिया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधीभ्याम् – सुधी शब्द से तृतीया–चतुर्थी–पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"सुधीभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधीभिः – सुधी शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "सुधी + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सुधीभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधिये – सुधी शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "सुधी + ए" इस स्थिति में **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश करने पर **"सुधिये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधीभ्यः – सुधी शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "सुधी + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सुधीभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधियः – सुधी शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "सुधी + अस्" इस स्थिति में **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "सुधिय् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सुधियः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधियोः – सुधी शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "सुधी + ओस्" इस स्थिति में **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "सुधिय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सुधियोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधियाम् – सुधी शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "सुधिय् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सुधियाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधियि – सुधी शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "सुधी + इ" इस स्थिति में **"सुधीः"** (१६२) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) की सहायता से **"सुधियि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधीषु – सुधी शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने पर **"सुधीषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुधी शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
सम्बोधन	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु

इसी प्रकार– शुद्धा धीर्यस्य स शुद्धधीः (शुद्ध बुद्धिवाला)। मन्दधी, तीक्ष्णधी, सूक्ष्मधी आदि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

शंका – "सुधी" शब्द हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर "सुधी" शब्द नहीं कहते तो "प्रधी" शब्द को भी इय् आदेश हो जाता।

प्रधी शब्द में अनेक अक्षर हैं तथा संयोग से भी रहित है। अतः **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश होगा।

प्रधी शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद य्वौ"** (१६०)।

प्रधी शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
सम्बोधन	हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	प्रध्यः

द्वितीया	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
तृतीया	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
चतुर्थी	प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
पञ्चमी	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
षष्ठी	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
सप्तमी	प्रध्यि	प्रध्योः	प्रधीषु

।। इस प्रकार ईकारान्त पुल्लिंग शब्दों का विवेचन पूर्ण हुआ।।

अब उकारान्त पुल्लिंग शब्द में भानु (सूर्य) शब्द का विवेचन करते हैं।

भानु शब्द के रूप मुनिवत् सिद्ध होते हैं। किन्तु मुनि शब्द में इकार को एकार होता है। यहाँ उकार को ओकार आदेश होगा।

उकारान्त साधु शब्द के प्रयोग मुनि शब्द के साथ ही पूर्व में सिद्ध कर आये हैं। भानु शब्द के रूप भी साधु शब्द के समान चलते हैं। भानु शब्द में पूर्वकथित सूत्रों का ही प्रयोग होता है।

भानु शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"वमुवर्णः"** (४५), **"ओ अव्"** (५०), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे च"** (१३२), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"औकारः पूर्वम्"** (१६२), **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३), **"सम्बुद्धौ च"** (१६४), **"अग्नेरमो कारः"** (१६५), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७), **"ङे"** (१६८), **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१)।

भानुः – भानु शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा करने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भानुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानू – भानु शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "भानु + औ" इस स्थिति में **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से औकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "भानु + उ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"भानू"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानवः – भानु शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "भानु + अस्" इस स्थिति में **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार आदेश कर, "भानो + अस्" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भानवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे भानो – भानु शब्द से सम्बोधन विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "भानु + सि" इस स्थिति में **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर, **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायात्"** इस परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र द्वारा उकार के स्थान पर ओकार आदेश हो कर **"हे भानो"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् **"हे भानू"** और **"हे भानवः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

भानुम् – भानु शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "भानु + अम्" इस स्थिति में **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"भानुम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानून् – भानु शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "भानु + अस्" इस स्थिति में **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर उन् आदेश कर, "भानु + उन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"भानून्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानुना – भानु शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "भानु + टा" इस स्थिति में **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से "टा" के स्थान पर "ना" आदेश हो कर **"भानुना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानुभ्याम् – भानु शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"भानुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानुभिः – भानु शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"भानुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानवे – भानु शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "भानु + ए" इस स्थिति में **"ङे"** (१६८) सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार आदेश हो कर "भानो + ए" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"भानवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानोः – भानु शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर "भानु + अस्" इस स्थिति में **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६) सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार तथा अस् के अकार का लोप कर, "भानो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भानोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भान्वोः – भानु शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "भानु + ओस्" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश कर, "भान्वोस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भान्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानूनाम् – भानु शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "भानु + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"भानूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानौ – भानु शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "भानु + ङि" इस स्थिति में **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से उकार तथा ङि दोनों के स्थान पर औकार आदेश हो कर **"भानौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानुषु – भानु शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "भानु + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"भानुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भानु शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भानुः	भानू	भानवः
सम्बोधन	हे भानो	हे भानू	हे भानवः
द्वितीया	भानुम्	भानू	भानून्
तृतीया	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
चतुर्थी	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पंचमी	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
षष्ठी	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
सप्तमी	भानौ	भान्वोः	भानुषु

इसी प्रकार – ऋतु, मेरु, गुरु, तरु, धातु, सेतु बाहु, वायु, बहु इत्यादि शब्दों के रूप सिद्ध होते हैं। परन्तु मेरु, गुरु, तरु इत्यादि शब्दों के तृतीया और षष्ठी विभक्ति के नकार को **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से णकार आदेश हो जायेगा।

।। इस प्रकार उकारान्त पुल्लिंग शब्द का विवेचन पूर्ण हुआ।।

अब ऊकारान्त पुल्लिंग शब्द में "कटप्रू" शब्द का विवेचन करते हैं। "कटप्रू" शब्द के रूप यवक्री शब्द की तरह सिद्ध होते हैं। किन्तु यवक्री शब्द में ईकार के स्थान पर इय् आदेश होता है। यहाँ ऊकार के स्थान पर उव् आदेश होगा।

यवक्री शब्द के साथ ही कटप्रू शब्द की भी सिद्धि की है। आप को स्मरण कराने के लिए पुनः की जा रही है।

कटप्रूः – कटप्रू शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में "सि" विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कटप्रूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवौ– कटप्रू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर "कटप्रुव् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवः – कटप्रू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में "जस्–शस्" विभक्ति के आने पर, "कटप्रू + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "कटप्रुव् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कटप्रुवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी इसी प्रकार **हे कटप्रूः, हे कटप्रुवौ हे कटप्रुवः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

कटप्रुवम्– कटप्रू शब्द से द्वितीय विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर "कटप्रुव् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवा– कटप्रू शब्द से तृतीय विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर "कटप्रुव् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूभ्याम् – कटप्रू शब्द से तृतीय – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"कटप्रूभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूभिः – कटप्रू शब्द से तृतीय विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"कटप्रूभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवे– कटप्रू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "कटप्रुव् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूभ्यः – कटप्रू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"कटप्रूभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवः – कटप्रू शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "कटप्रू + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "कटप्रुव् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"कटप्रुवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवोः – कटप्रू शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "कटप्रू + ओस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "कटप्रुव् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर, **"कटप्रुवोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रुवाम् – कटप्रू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "कटप्रू + आम्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "कटप्रुव् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कटप्रुवाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रूषु – कटप्रू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"कटप्रूषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कटप्रू शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	कटप्रूः	कटप्रुवौ	कटप्रुवः
सम्बोधन	हे कटप्रूः	हे कटप्रुवौ	हे कटप्रुवः
द्वितीया	कटप्रुवम्	कटप्रुवौ	कटप्रुवः
तृतीया	कटप्रुवा	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभिः
चतुर्थी	कटप्रुवे	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभ्यः
पञ्चमी	कटप्रुवः	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभ्यः
षष्ठी	कटप्रुवः	कटप्रुवोः	कटप्रुवाम्
सप्तमी	कटप्रुवि	कटप्रुवोः	कटप्रूषु

खलपू, शरलू, काण्डलू आदि शब्दों के रूप सेनानीशब्दवत् बनते हैं। किन्तु सेनानी शब्द के ईकार के स्थान पर य् आदेश होता है। यहाँ ऊकार के स्थान पर "व्" आदेश होगा।

सेनानी शब्द के साथ ही खलपू शब्द की भी सिद्धि की है। आप को स्मरण कराने के लिए पुनः की जा रही है।

खलपूः – खलपू शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"खलपूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वौ – खलपू शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "खलपू + औ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश प्राप्त था परन्तु **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वः – खलपू शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "खलपू + अस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी इसी प्रकार **"हे खलपूः, हे खलप्वौ, हे खलप्वः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

खलप्वम् – खलपू शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "खलपू + अम्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वा – खलपू शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "खलपू + आ" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूभ्याम् – खलपू शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"खलपूभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूभिः – खलपू शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"खलपूभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वे – खलपू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "खलपू + ए" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूभ्यः – खलपू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"खलपूभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वः – खलपू शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "खलपू + अस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वोः – खलपू शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "खलपू + ओस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वाम् – खलपू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "खलपू + ओस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वि – खलपू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "खलपू + इ" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूषु – खलपू शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने पर **"खलपूषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपू (खलिहान को साफ करने वाला) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः
सम्बोधन	हे खलपूः	हे खलप्वौ	हे खलप्वः
द्वितीया	खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः
तृतीया	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
चतुर्थी	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
पञ्चमी	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
षष्ठी	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
सप्तमी	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु

प्रतिभू शब्द में भेद है।

नियमानुसार प्रतिभू शब्द में अनेक अक्षर हैं तथा संयोग से रहित भी है। अतः **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर वकार आदेश होना चाहिये। परन्तु अग्रिम सूत्र के कथन से प्रतिभू शब्द के ऊकार के स्थान पर उव् आदेश होगा।

प्रतिभू शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"अनेकाक्षरयोस् त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०)।

प्रतिभूः – प्रतिभू शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + सि" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"प्रतिभूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभू शब्द से प्रथमा–द्वितीय विभक्ति के द्विवचन की विवक्षा में औ विभक्ति के आने पर **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु "प्रतिभूः" शब्द के ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३५)विधिसूत्रम् – भूरवर्षाभूरपुनर्भूः ।।१६३।।

भूरुवं प्राप्नोति विभक्तिस्वरे परे वर्षाभूपुनर्भ्वौ वर्जयित्वा। प्रतिभुवौ। प्रतिभुवः। सम्बोधने पि तद्वत्। एवं स्वयम्भू–मित्रभू–आत्मभू–अग्निभू–मनोभू–प्रभृतयः। वर्षाभू–पुनर्भू–सेनानीवत्। वत्वं भेदः। इत्यूकारान्ताः। ऋकारान्तः पुल्लिङ्गः पितृशब्दः। सौ–

अर्थ – स्वर वाली विभक्ति के परे होने पर वर्षाभू , पुनर्भू शब्द को छोड़कर भू शब्द के ऊकार के स्थान पर उव् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्"** (१८६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात्–जिन शब्दों के अन्त में भू शब्द जुड़ा हुआ है उन शब्दों के ऊकार के स्थान पर उव् आदेश होता है। परन्तु वर्षाभू ( ) तथा पुनर्भू (एक औषधि) शब्दों के ऊकार के स्थान पर **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से व् आदेश होगा।

प्रतिभुवौ – प्रतिभू शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + औ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) तथा **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्रों की क्रमशः प्राप्ति होने पर, दोनों सूत्रों के अपवाद स्वरूप **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर **"प्रतिभुवौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभुवः – प्रतिभू शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस् – शस् विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) तथा **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्रों की क्रमशः प्राप्ति होने पर, दोनों सूत्रों के अपवाद स्वरूप **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर **"प्रतिभुवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी इसी प्रकार **हे प्रतिभूः, हे प्रतिभुवौ, हे प्रतिभुवः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

प्रतिभुवम् – प्रतिभू शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + अम्" इस स्थिति में **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर **"प्रतिभुवम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभुवा – प्रतिभू शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + आ" इस स्थिति में **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर **"प्रतिभुवा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभूभ्याम् – प्रतिभू शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"प्रतिभूभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभूभिः – प्रतिभू शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"प्रतिभूभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभुवे – प्रतिभू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + ए" इस स्थिति में **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर **"प्रतिभुवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभूभ्यः – प्रतिभू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"प्रतिभूभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभुवः – प्रतिभू शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + अस्" इस स्थिति में **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"प्रतिभुवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभुवोः – प्रतिभू शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + ओस्" इस स्थिति में **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"प्रतिभुवोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभुवाम् – प्रतिभू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + आम्" इस स्थिति में **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करने पर **"प्रतिभुवाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभुवि – प्रतिभू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "प्रतिभू + इ" इस स्थिति में **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"प्रतिभुवि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभूषु – प्रतिभू शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने पर **"प्रतिभूषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रतिभू शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	प्रतिभूः	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
सम्बोधन	हे प्रतिभूः	हे प्रतिभुवौ	हे प्रतिभुवः
द्वितीया	प्रतिभुवम्	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
तृतीया	प्रतिभुवा	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभिः
चतुर्थी	प्रतिभुवे	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः
पंचमी	प्रतिभुवः	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः
षष्ठी	प्रतिभुवः	प्रतिभुवोः	प्रतिभुवाम्
सप्तमी	प्रतिभुवि	प्रतिभुवोः	प्रतिभूषु

इसी प्रकार स्वयम्भू, मित्रभू, आत्मभू, अग्निभू, मनोभू इत्यादि शब्दों के रूप जानना चाहिए।

स्वयम्भू शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३)।

स्वयम्भू शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वयम्भूः	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
सम्बोधन	हे स्वयम्भूः	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयम्भुवः
द्वितीया	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
तृतीया	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभिः
चतुर्थी	स्वयम्भुवे	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
पंचमी	स्वयम्भुवः	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
षष्ठी	स्वयम्भुवः	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भुवाम्
सप्तमी	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भूषु

भू शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३)।

भू शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूः	भुवौ	भुवः
सम्बोधन	हे भूः	हे भुवौ	हे भुवः
द्वितीया	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृतीया	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
चतुर्थी	भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
पंचमी	भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
षष्ठी	भुवः	भुवोः	भुवाम्
सप्तमी	भुवि	भुवोः	भूषु

वर्षाभू (वर्षा से उत्पन्न होने वाला मेंढक आदि) शब्द में भेद है।

वर्षाभू शब्द में अनेक अक्षर हैं तथा संयोग से रहित भी है। अतः नियमानुसार "वषाभू" शब्द के ऊकार के स्थान पर वकार आदेश होगा।

वर्षाभू शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"भूरर्षाभूरपुनर्भूः"** (१६३)।

वर्षाभूः – वर्षाभू शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"वर्षाभूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभ्वौ – वर्षाभू शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "वर्षाभू + औ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश प्राप्त था परन्तु **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर वकार आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"वर्षाभ्वौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभ्वः – वर्षाभू शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "वर्षाभू + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश प्राप्त था परन्तु **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर वकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलप्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी इसी प्रकार **"हे वर्षाभूः, हे वर्षाभ्वौ, हे वर्षाभ्वः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

वर्षाभ्वम् – वर्षाभू शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "खलपू + अम्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"वर्षाभ्वम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभ्वा – वर्षाभू शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "वर्षाभू + आ" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"वर्षाभ्वा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभूभ्याम् – वर्षाभू शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"वर्षाभूभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभूभिः – वर्षाभू शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"वर्षाभूभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभ्वे – वर्षाभू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "वर्षाभू + ए" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"वर्षाभ्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभूभ्यः – वषाभू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"वर्षाभूभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभ्वः – वर्षाभू शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "वर्षाभू + अस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"वर्षाभ्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभ्वोः – वर्षाभू शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "वर्षाभू + ओस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"वर्षाभ्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभ्वाम् – वर्षाभू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "वर्षाभू + ओस्" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"वर्षाभ्वाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभ्वि – वर्षाभू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "वर्षाभू + इ" इस स्थिति में **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से ऊकार के स्थान पर व् आदेश कर तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"वर्षाभ्वि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभूषु – वर्षाभू शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर, षकार आदेश करने पर **"वर्षाभूषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वर्षाभू शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वर्षाभूः	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
सम्बोधन	हे वर्षाभूः	हे वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
द्वितीया	वर्षाभ्वम्	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
तृतीया	वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः
चतुर्थी	वर्षाभ्वे	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
पंचमी	वर्षाभ्वः	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
षष्ठी	वर्षाभ्वः	वर्षाभ्वोः	वर्षाभ्वाम्
सप्तमी	वर्षाभ्वि	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूषु

इसी प्रकार "पुनर्भू" शब्द की रूपमाला जानना चाहिये।

पुनर्भू शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुनर्भूः	पुनर्भ्वौ	पुनर्भ्वः
सम्बोधन	हे पुनर्भूः	हे पुनर्भ्वौ	पुनर्भ्वः
द्वितीया	पुनर्भ्वम्	पुनर्भ्वौ	पुनर्भ्वः
तृतीया	पुनर्भ्वा	पुनर्भूभ्याम्	पुनर्भूभिः
चतुर्थी	पुनर्भ्वे	पुनर्भूभ्याम्	पुनर्भूभ्यः
पंचमी	पुनर्भ्वः	पुनर्भूभ्याम्	पुनर्भूभ्यः
षष्ठी	पुनर्भ्वः	पुनर्भ्वोः	पुनर्भ्वाम्
सप्तमी	पुनर्भ्वि	पुनर्भ्वोः	पुनर्भूषु

।। इस प्रकार ऊकारान्त शब्दों का विवेचन पूर्ण हुआ।।

अब ऋकारान्त पुल्लिंग शब्द में पितृ (पिता) शब्द का विवेचन किया जाता है।

पितृ शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"वमुवर्णः"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्स्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"पंचादौ घुट्"** (१५६), (१६६), **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०)।

पितृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर ऋकार के स्थान पर आकार आदेश तथा सि का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६४)विधिसूत्रम् – आ सौ सिलोपश्च।।१६४।।

ऋदन्तस्य लिङ्गस्य आ भवति सौ परे सिलोपश्च। पिता।

अर्थ – सि परे होने पर ऋकारान्त लिंग के ऋकार के स्थान पर आ आदेश तथा सि का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पिता – पितृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "पितृ + सि" इस स्थिति में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर "आ" आदेश तथा सि का लोप हो कर **"पिता"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ विभक्ति की घुट् संज्ञा होने पर, ऋकार के स्थान पर अर् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६७)विधिसूत्रम् – घुटि च।।१६५।।

ऋदन्तस्य अर् भवति घुटि परे। पितरौ। पितरः। सम्बुद्धौ च।

अर्थ – घुट् परे होने पर ऋकार के स्थान पर अर् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र की तथा **"अर्डौ"** (१६६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

सि, औ, जस्, अम्, औ ये घुट् वाली विभक्तियाँ कहलाती हैं।

पितृ आदि ऋकारान्त शब्दों से औ, जस्, अम्, और औ विभक्ति के आने पर, ऋकार के स्थान पर, अर् आदेश होता है। "पित् अर्" यहाँ औ आदि विभक्तियों के जोड़ने पर, "पितरौ" आदि प्रयोग सिद्धि होते हैं।

शंका – सि विभक्ति भी घुट् विभक्ति है। फिर सि विभक्ति के आने पर, ऋकारान्त पितृ आदि शब्द को अर् आदेश क्यों नहीं किया?

समाधान – आपकी शंका उचित है। परन्तु सि विभक्ति के आने पर, **"आ सौ सिर्लोपश्च"** (१६४) सूत्र से सि और ऋकार के स्थान पर, "आ" आदेश हुआ है। अतः सम्बद्धि के आने पर, "आ" आदेश नहीं होगा। वहाँ **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से अर् आदेश ही होगा।

पितरौ – पितृ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, "पितृ + औ" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर, "पितर् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पितरौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितरः – पितृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में "जस्" विभक्ति के आने पर, "पितृ + अस्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से जस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर, "पितर् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पितरः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति आने पर ऋकार के स्थान पर आर् और आ आदेश का निषेध करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.७०)निषेधसूत्रम् – आ च न सम्बुद्धौ।।१६६।।

ऋदन्तस्य आर् आ च न भवति सम्बुद्धौ परतः। अपि तु घुटि चेत्यर्भवति। हे पितः। हे पितरौ। हे पितरः। पितरम्। पितरौ।

अर्थ – सम्बुद्धि परे होने पर ऋकार के स्थान पर आर् और आ आदेश नहीं होता।

किन्तु **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से अर् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) सूत्र की तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"आ सौ सिलोपश्च" (१६४) सूत्र से आ की तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र से आर् की प्राप्ति का सम्बुद्धि में **" आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र से निषेध किया है। सि की पूर्व में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से घुट सञ्ज्ञा होने पर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से अर् आदेश होगा।

हे पितः – पितृ शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "पितृ + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से आमन्त्रण में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) ये तीनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र से, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) इन दोनों सूत्रों का निषेध हो कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "पितर् + स्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८) सूत्र से सि का लोप कर, "पितर्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे पितः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे पितरौ"** तथा बहुवचन में **"हे पितरः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

पितरम् – पितृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "पितृ + अम्" इस स्थिति में **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"पितरम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर ऋकारान्त शब्दों को अग्निवत् कार्य करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६५)सञ्ज्ञासूत्रम् – अग्निवच्छसि।।१६७।।

ऋदन्तस्य अग्निवत्कार्यं भवति शसि परे । पितॄन्। पित्रा। पितृभ्याम् पितृभिः। पित्रे। पितृभ्याम्। पितृभ्यः। ङसिङसोः।

अर्थ – शस् परे होने पर ऋदन्त शब्द को अग्निसञ्ज्ञावत् कार्य होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात् – ऋकारान्त शब्दों से शस् विभक्ति के होने पर, अग्निवत् कार्य होता है। अग्निसञ्ज्ञा के होने पर पूर्वस्वर के कारण शस् के अकार को पूर्वस्वर रूप आदेश होता है। तथा सकार के स्थान पर नकार आदेश होता है। अतः **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर ऋन् आदेश होता है।

पितॄन् – पितृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "पितृ + अस्" इस स्थिति में **"अग्निवच्छसि"** (१६७) सूत्र से पितृ शब्द को अग्निवत् कार्य अर्थात् **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर ऋन् आदेश हो कर, "पितृ + ऋन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"पितॄन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पित्रा – पितृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "पितृ + आ" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "पित्र् + आ" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पित्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितृभ्याम् – पितृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"पितृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितृभिः – पितृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "पितृ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"पितृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पित्रे – पितृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "पितृ + ए" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "पित्र् + ए" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"पित्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितृभ्यः – पितृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "पितृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पितृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पञ्चमी –षष्ठी विभक्ति के एकवचन की विवक्षा में "ङसि–ङस्" विभक्ति के आने पर ऋकार तथा अस् के अकार दोनों के स्थान पर उकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६३)विधिसूत्रम् – ऋदन्तात्सपूर्वः।।१६८।।

ऋदन्तात्परयोर्ङसिङसोरकारः पूर्वस्वरेण सह उमापद्यते। पितुः। पितृभ्याम्। पितृभ्यः। पितुः। पित्रोः। पितॄणाम्।

अर्थ – ऋकारान्त शब्द से परे ङसि ङस् का अकार पूर्वस्वर के साथ उकार को प्राप्त होता है।

अर्थात्– अस् का अ तथा ऋकार ये दोनो के स्थान पर उकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ङसिङसोरुमः"** (१८२) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पितुः– पितृ शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "पितृ + अस्" इस स्थिति में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र से ऋकार तथा अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर "पित् उस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"पितुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पित्रोः – पितृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "पितृ + ओस्" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर तथा **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"पित्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितॄणाम् – पितृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "पितृ + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "पितृ + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर, "पितॄनाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"पितॄणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर ऋकार के स्थान पर अर् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६६)विधिसूत्रम् – अर्ङौ ।।१६६।।

ऋदन्तस्य अर् भवति ङौ परे। पितरि। पित्रोः पितृषु। एवं भ्रातृ–जामातृ–सवितृ–प्रभृतयः। कर्तृशब्दस्य तु भेदः। सौ कर्त्ता। घुटि।

अर्थ – ङि परे होने पर ऋकार के स्थान पर अर् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

पितृ आदि ऋकारान्त शब्दों से ङि विभक्ति के आने पर, ऋकार के स्थान पर, अर् आदेश होता है।

पितरि – पितृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "पितृ + इ" इस स्थिति में, **"अर्ङौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"पितरि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितृषु – पितृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "पितृ + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"पितृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पितृ (पिता) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
सम्बोधन	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पंचमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु

इसी प्रकार भ्रातृ (भाई), जामातृ (दामाद), शास्तृ (तीर्थंकर), क्षोत्तृ (मुसल), मन्तृ (विद्वान्) दुहितृ (पुत्री), यातृ आदि शब्दों के रूप सिद्ध होते हैं।

नोट – मातृ (मापने वाला), हन्तृ (मारने वाला), मन्तृ (मनन करने वाला) इनमें घुट् विभक्ति के होने पर आर् होता है।

कर्तृ (कार्य करने वाला) शब्द में भेद है। कर्तृ शब्द में औ, जस्, अम्, और औ विभक्ति के आने पर ही अन्तर है। शेष शब्द पितृ शब्द के समान ही सिद्ध होते हैं। इन चार घुट् विभक्तियों के आने पर, पितृ शब्द के लिए अर् आदेश होता है।

कर्तृ शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रेफाक्रान्तस्य द्वित्वमशिटो वा"** (३२), **"रमृवर्णः"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीय–षान्तरो पि"** (१५०) **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५), **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६), **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८), **"अर्डौ"** (१६६), **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००)।

कर्ता – कर्तृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में "सि" विभक्ति के आने पर, "कर्तृ + स्" इस स्थिति में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर आकार तथा सि का लोप हो कर **"कर्ता"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – **"रेफाक्रान्तस्य द्वित्वमशिटो वा"** (३२) सूत्र से तकार को वैकल्पिक द्वित्व हो कर **"कर्त्ता"** शब्द भी बनता है।

कर्तृ शब्द से औ, जस्, अम् और औ घुट् विभक्ति के आने पर, ऋकार के स्थान पर आर् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६८)विधिसूत्रम् – धातोस्तृशब्दस्यार्।।२००।।

धातोर्विहितस्य तृशब्दस्य ऋत आर्भवति घुटि परे। कर्त्तारौ। कर्त्तारः। हे कर्त्तः। हे कर्त्तारौ। हे कर्त्तारः। कर्त्तारम्। कर्त्तारौ। कर्त्तॄन्। अन्यत्र पितृशब्दवत्। धातोर्विहितस्य किं? मातरौ मातरः। यती प्रयन्ने। यतेः ऋत दीर्घश्च उणादि प्रत्ययः। यातरौ, यातरः। तृशब्दस्येति किं ? ननान्दरौ। ननान्दरः। एवं धातृ–भर्त्तृ–ज्ञातृ–वेतृ–श्रोतृ–नेतृ–वक्तृ–भोक्तृ–पक्तृ–प्रभृतयः। क्रोष्टृ शब्दस्य तु भेदः। क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। सम्बुद्धौ।

अर्थ – घुट् परे होने पर धातु के साथ कथित तृ शब्द के ऋकार के स्थान पर आर् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"घुटि च"** (१६५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

धातु के साथ कथित यानी **"वुण्तृचौ"** (१०८७) सूत्र के द्वारा कृ धातु से तृच् प्रत्यय कर तथा **"अनि च विकरणे"** (५८७) सूत्र से धातु के ऋकार को अर् गुण हो कर **"रेफाक्रान्तस्य द्वित्वमशिटो वा"** (३२) सूत्र से तकार को वैकल्पिक द्वित्व हो कर, "कर्त्तृ" शब्द बना है। अर्थात् जिन धातुओं से तृच् प्रत्यय होगा वे धातु के साथ कथित "तृ" शब्दान्त शब्द कहलायेंगे।

कर्त्तारौ – कर्त्तृ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर "कर्त्तृ + औ" इस स्थिति में **"घुटि च"** (१६५) सूत्र की प्राप्ति होने पर **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र से "ऋ" के स्थान पर आर् आदेश हो कर **"कर्त्तारौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तारः – कर्त्तृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र से "ऋकार" के स्थान पर आर् आदेश कर, "कर्त्तार् + अस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"कर्त्तारः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे कर्त्तः – कर्त्तृ शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से आमन्त्रण में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) ये तीनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र से, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) इन दोनों सूत्रों का निषेध हो कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "कर्त्तर् + स्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८) सूत्र से सि का लोप कर, "कर्त्तर्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे कर्त्तः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर पूर्ववत् **"हे कर्त्तारौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर पूर्ववत् **"हे कर्त्तारः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तारम् – कर्त्तृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति आने पर, **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र से "ऋकार" के स्थान पर आर् आदेश करने पर, **"कर्त्तारम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तॄन् – कर्त्तृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + अस्" इस स्थिति में **"अग्निवच्छसि"** (१६७) सूत्र से कर्त्तृ शब्द को अग्निवत् कार्य अर्थात् **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर ऋन् आदेश हो कर, "कर्त्तृ + ऋन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"कर्त्तॄन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्त्रा – कर्त्तृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + आ" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "कर्त्त्र् + आ" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कर्त्त्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तृभ्याम् – कर्त्तृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"कर्त्तृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तृभिः – कर्त्तृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कर्त्तृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्त्रे – कर्त्तृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + ए" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "कर्त्त्र् + ए" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कर्त्त्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तृभ्यः – कर्त्तृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कर्त्तृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तुः – कर्त्तृ शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + अस्" इस स्थिति में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र से ऋकार तथा अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर "कर्त्त् + उस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"कर्त्तुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्रोः – कर्त्तृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + ओस्" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कर्त्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तॄणाम् – कर्त्तृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "कर्त्तृ + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर, "कर्त्तॄनाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"कर्त्तॄणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तरि – कर्त्तृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "कर्त्तृ + इ" इस स्थिति में, **"अर्ङौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"कर्त्तरि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तृषु – कर्त्तृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर "कर्त्तृ + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"कर्त्तृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्तृ शब्द की रूपमाला यथा –

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
सम्बोधन	हे कर्त्तः	हे कर्त्तारौ	हे कर्त्तारः
द्वितीया	कर्त्तारम्	कर्त्तारौ	कर्त्तॄन्
तृतीया	कर्त्रा	कर्त्तृभ्याम्	कर्त्तृभिः
चतुर्थी	कर्त्रे	कर्त्तृभ्याम्	कर्त्तृभ्यः
पंचमी	कर्त्तुः	कर्त्तृभ्याम्	कर्त्तृभ्यः
षष्ठी	कर्त्तुः	कर्त्रोः	कर्त्तॄणाम्
सप्तमी	कर्त्तरि	कर्त्रोः	कर्त्तृषु

कर्तृ शब्द की रूपमाला यथा –

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
सम्बोधन	हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तारः
द्वितीया	कर्तारम्	कर्तारौ	कर्तॄन्
तृतीया	कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
चतुर्थी	कर्त्रे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
पंचमी	कर्तुः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
षष्ठी	कर्तुः	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्
सप्तमी	कर्तरि	कर्त्रोः	कर्तृषु

"कर्त्तृ" शब्द के समान धातृ (धारण करने वाला), सवितृ, भत्तृ, ज्ञातृ, वेतृ, श्रोतृ, नेतृ, वक्तृ, भोक्तृ, पक्तृ आदि शब्द के रूप जानना चाहिये।

शंका – धातु के साथ तृ शब्द हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – मातृ शब्द में "तृ" शब्द धातु सम्बन्धी नहीं होने से **"घुटि च"** (१८६) सूत्र से अर् आदेश हो कर **"मातरौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

"यती प्रयत्ने" धातु से उणादि प्रकरण के अन्तर्गत ऋत् प्रत्यय हो कर दीर्घ आदेश हो कर, यातृ शब्द बनता है। द्विवचन आदि में **"यातरौ" "यातरः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

नोट – उणादि प्रकरण **"कातन्त्ररूपमाला"** में नहीं है अन्य व्याकरण में है।

शंका – तृ शब्द ही हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – "तृ शब्द के लिये आर् होता है" ऐसा यदि नहीं कहते तो **"ननान्दृ"** शब्द के ऋकार को भी आर् आदेश हो कर **"ननान्दारौ"** अशुद्ध रूप बन जाता।

ननान्दृ शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रमृवर्णः"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) **"शसो कारः**

सश्च नो स्त्रियाम्" (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५), **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६), **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८), **"अर्डौ"** (१६६), **"धातोस् तृशब्दस्यार्"** (२००)।

ननान्दा – ननान्दृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + स्" इस स्थिति में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर "आ" आदेश तथा सि का लोप हो कर **"ननान्दा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दरौ – ननान्दृ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + औ" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर, "ननान्दर् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ननान्दरौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दरः – ननान्दृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में "जस्" विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + अस्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से जस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर, "ननान्दर् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ननान्दरः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे ननान्दः – ननान्दृ शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से आमन्त्रण में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) ये तीनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र से, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) इन दोनों सूत्रों का निषेध हो कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "ननान्दर् + स्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८) सूत्र से सि का लोप कर, "ननान्दर्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे ननान्दः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे ननान्दरौ"** तथा बहुवचन में **"हे ननान्दरः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

ननान्दरम् – ननान्दृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + अम्" इस स्थिति में **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"ननान्दरम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दॄः – ननान्दृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + अस्" इस स्थिति में **"अग्निवच्छसि"** (१६७) सूत्र से पितृ शब्द को अग्निवत् कार्य अर्थात् **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के अकार के स्थान पर ऋकार आदेश कर, "ननान्दृ + ऋस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"ननान्दॄः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्द्रा – ननान्दृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + आ" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "ननान्द्र् + आ" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ननान्द्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दृभ्याम् – ननान्दृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"ननान्दृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दृभिः – ननान्दृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"ननान्दृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्द्रे – ननान्दृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + ए" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "ननान्द्र् + ए" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ननान्द्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दृभ्यः – ननान्दृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ननान्दृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दुः – ननान्दृ शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + अस्" इस स्थिति में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र से ऋकार तथा अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "ननान्द् उस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"ननान्दुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्द्रोः – ननान्दृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + ओस्" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर तथा **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ननान्द्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दॄणाम् – ननान्दृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "ननान्दृ + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर, "ननान्दॄनाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"ननान्दॄणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दरि – ननान्दृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + इ" इस स्थिति में, **"अर्डौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"ननान्दरि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दृषु – ननान्दृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "ननान्दृ + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीय–षान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"ननान्दृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ननान्दृ (नन्द) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	ननान्दा	ननान्दरौ	ननान्दरः
सम्बोधन	हे ननान्दः	हे ननान्दरौ	हे ननान्दरः
द्वितीया	ननान्दरम्	ननान्दरौ	ननान्दॄः
तृतीया	ननान्द्रा	ननान्दृभ्याम्	ननान्दृभिः

चतुर्थी	ननान्द्रे	ननान्दृभ्याम्	ननान्दृभ्यः
पंचमी	ननान्दुः	ननान्दृभ्याम्	ननान्दृभ्यः
षष्ठी	ननान्दुः	ननान्द्रोः	ननान्दृणाम्
सप्तमी	ननान्दरि	ननान्द्रोः	ननान्दृषु

क्रोष्टृ (गीदड़) शब्द में भेद है।

क्रोष्टृ शब्द में षकार के कारण तृ शब्द को टृ आदेश हो गया है।

सि, औ, जस्, अम् और औ इन घुट् विभक्तियों में "कर्त्तृ" शब्दवत् – **क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्। क्रोष्टारौ।** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

क्रोष्टृ शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रेफाक्रान्तस्य द्वित्वमशिटो वा"** (३२), **"रमृवर्णः"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीय–षान्तरो पि"** (१५०) **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"आ सौ सिलोपश्च"** (१९४), **"घुटि च"** (१९५), **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१९६), **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१९८), **"अर्डौ"** (१९९), **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००)।

क्रोष्टा – क्रोष्टृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में "सि" विभक्ति के आने पर, "क्रोष्टृ + स्" इस स्थिति में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१९४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर आकार तथा सि का लोप हो कर **"क्रोष्टा"** प्रयोग सिद्ध है।

क्रोष्टारौ – क्रोष्टृ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, "क्रोष्टृ + औ" इस स्थिति में **"घुटि च"** (१९५) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र से "ऋ" के स्थान पर आर् आदेश हो कर **"क्रोष्टारौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्रोष्टारः – क्रोष्टृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "क्रोष्टृ + औ" इस स्थिति में **"घुटि च"** (१९५) सूत्र की प्राप्ति होने पर, **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र से "ऋकार" के स्थान पर आर् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"क्रोष्टारः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्रोष्टृ शब्द से सम्बोधन विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर "क्रोष्टृ" शब्द के ऋकार के स्थान पर उकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)विधिसूत्रम् – क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च।।२०१।।

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्भवति सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च परे। अग्निसञ्ज्ञां विधाय भानुवत्कुर्यात्। हे क्रोष्टो। हे क्रोष्टारौ। हे क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्। क्रोष्टारौ। क्रोष्टून्।

अर्थ – सम्बुद्धि, शस्, व्यञ्जन और नपुंसकलिंग परे होने पर क्रोष्टृ शब्द के ऋकार के स्थान पर उकार आदेश होता है।

भावार्थ – प्रथमा विभक्ति के एकवचन की **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से सम्बुद्धि सञ्ज्ञा होती है।

द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति आती है। भ्याम्, भिस्, भ्यस् और सुप् ये व्यञ्जन वाली विभक्तियाँ कहलाती हैं।

नपुंसकलिंग का प्रकरण आगे आने पर सम्पूर्ण विभक्तियों के आने पर "क्रोष्टृ" शब्द के ऋकार के स्थान पर उकार आदेश हो जायेगा।

उ आदेश होने के बाद अग्निसञ्ज्ञा करके भानुशब्द के समान कार्य करना चाहिये।

हे क्रोष्टो – क्रोष्टृ शब्द से सम्बुद्धि के एक वचन में सि विभक्ति के आने पर, "क्रोष्टृ + स्" इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर, "क्रोष्टु + स्" इस स्थिति में **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर, "क्रोष्टु" इस स्थिति में **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से उकार के स्थान पर "ओकार" आदेश हो कर **"हे क्रोष्टो"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन आदि में पूर्ववत् **"हे क्रोष्टारौ","हे क्रोष्टारः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

क्रोष्टून् – क्रोष्टृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से क्रोष्टृ के स्थान पर क्रोष्टु आदेश कर, "क्रोष्टु + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से "क्रोष्टु" शब्द की अग्निसञ्ज्ञा कर, **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर उन् आदेश कर, "क्रोष्टु + उन्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"क्रोष्टून्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – "कलाप–व्याकरण" में **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र की टीका में **"शसादौ तु तृजन्तस्य तुनन्तस्य च प्रयोगः"** अर्थात् क्रुश् धातु से शसादि विभक्तियों के आने पर तृच् और तुन् प्रत्यय होता है। तृच् प्रत्यय होने पर ऋकारान्त के समान तथा तुन् प्रत्यय होने पर उकारान्त शब्द के समान रूप चलेंगे। अतः तृच् पक्ष में "क्रोष्टु" शब्द बनता है। तथा तुन् पक्ष में "क्रोष्टु" शब्द बनता है। क्रोष्टृ पक्ष में ऋकारान्त के समान प्रयोग सिद्ध होंगे। तथा तुन् पक्ष में "क्रोष्टु" शब्द बनता है। तथा उकारान्त शब्द के समान प्रयोग सिद्ध होंगे। अतः तृच् पक्ष में **"क्रोष्टॄन्"** तथा तुन् पक्ष में **"क्रोष्टून्"** प्रयोग सिद्ध होंगे।

क्रोष्टृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर ऋकार के स्थान पर उकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)विधिसूत्रम् – टादौ स्वरे वा।।२०२।।

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्वा भवति टादौ स्वरे परे। क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना। क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टृभ्याम्। क्रोष्टुभिः, क्रोष्टृभिः। क्रोष्टवे, क्रोष्ट्रे। क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टृभ्याम्। क्रोष्टुभ्यः, क्रोष्टृभ्यः। क्रोष्टुः, क्रोष्टोः। क्रोष्टुभ्याम्। क्रोष्टृभ्याम्। क्रोष्टुभ्यः, क्रोष्टृभ्यः। क्रोष्टुः, क्रोष्टोः। क्रोष्ट्रोः क्रोष्ट्वोः। क्रोष्टॄणाम्, क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि, क्रोष्टौ। क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः। क्रोष्टुषु, क्रोष्टृषु। स्वसृशब्दस्य तु भेदः। सौ–स्वसा। घुटि।

अर्थ – टा आदि स्वर परे होने पर क्रोष्टृ शब्द के ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश होता है।

उकार आदेश होने पर भानु शब्दवत् रूप चलेंगे तथा उकार के अभाव में पितृ शब्दवत् रूप चलेंगे।

नोट – "कलाप–व्याकरण" में **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र की टीका में **"शसादौ तु – तृजन्तस्य तृनन्तस्य च प्रयोगः"** परिभाषा के कारण शस् से लेकर सुप् विभक्ति पर्यन्त तृच् और तुन् प्रत्यय के कारण शसादि विभक्तियों में **"क्रोष्टृ"** तथा **"क्रोष्टु"** शब्द के प्रयोग सिद्ध होंगे।

क्रोष्टुना, क्रोष्ट्रा – क्रोष्टृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में "टा" विभक्ति के आने पर, "क्रोष्टृ + आ" इस स्थिति में **"टादौ स्वरे वा"** (२०२) सूत्र से ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश कर, "क्रोष्टु + आ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से **"क्रोष्टु"** शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा करने पर **"अस्त्रियां टा ना"** (१६६) सूत्र से टा के स्थान पर ना आदेश हो कर **"क्रोष्टुना"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर "र्" आदेश हो कर, **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"क्रोष्ट्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

क्रोष्टुभ्याम् – क्रोष्टृ + भ्याम् इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर **"क्रोष्टुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

"शसादौ तु – तृजन्तस्य तृनन्तस्य च प्रयोगः" के कारण तृच् पक्ष में **"क्रोष्टृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होगा।

इसी प्रकार– क्रोष्टृ + भिस् = **क्रोष्टुभिः** तथा **क्रोष्टृभिः**। क्रोष्टृ + भ्यस् = **क्रोष्टुभ्यः** तथा **क्रोष्टृभ्यः**। क्रोष्टृ + सु = **क्रोष्टुषु** तथा **क्रोष्टृषु**। इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

चतुर्थी के एकवचन में – क्रोष्टृ + ङे = **"क्रोष्टवे"** भानुवत्। **क्रोष्ट्रे** पितृवत्। पञ्चमी षष्ठी के एकवचन में – क्रोष्टृ + अस् = **क्रोष्टोः** भानुवत् तथा **क्रोष्टुः** पितृवत्। षष्ठी – सप्तमी के द्विवचन में – क्रोष्टृ + ओस् = **क्रोष्ट्वोः** भानुवत् तथा **क्रोष्ट्रोः** पितृवत्। षष्ठी के बहुवचन में क्रोष्टृ + आम् = **क्रोष्टूनाम्** भानुवत् तथा **क्रोष्टॄणाम्** पितृवत्। सप्तमी के एकवचन में – क्रोष्टृ + ङि = **क्रोष्टौ** भानुवत् तथा **क्रोष्टरि** पितृवत् इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

ऋकारान्त क्रोष्टृ (गीदड़) शब्द की रूपमाला यथा –

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
सम्बोधन	हे क्रोष्टो	हे क्रोष्टारौ	हे क्रोष्टारः
द्वितीया	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टॄन्
तृतीया	क्रोष्ट्रा	क्रोष्टृभ्याम्	क्रोष्टृभिः
चतुर्थी	क्रोष्ट्रे	क्रोष्टृभ्याम्	क्रोष्टृभ्यः
पञ्चमी	क्रोष्टुः	क्रोष्टृभ्याम्	क्रोष्टृभ्यः
षष्ठी	क्रोष्टुः	क्रोष्ट्रो	क्रोष्टॄणाम्
सप्तमी	क्रोष्टरि	क्रोष्ट्रो,	क्रोष्टृषु

उकारान्त क्रोष्टु (गीदड़) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
सम्बोधन	हे क्रोष्टारम्	हे क्रोष्टारौ	हे क्रोष्टारः
द्वितीया	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
तृतीया	क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
चतुर्थी	क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
पञ्चमी	क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
षष्ठी	क्रोष्टोः	क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
सप्तमी	क्रोष्टौ	क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु

नोट – ग्रन्थानुसार टा आदि स्वरान्त विभक्तियों में ही ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश होता है। परन्तु **"शसादौ तु तृजन्तस्य तुनन्तस्य च प्रयोगः"** परिभाषा के कारण भ्याम् आदि व्यञ्जनान्त विभक्ति में भी विकल्प से उकार आदेश किया है।

स्वसृ (बहिन) शब्द में भेद है। स्वसृ शब्द स्त्रीलिंग है। नियमानुसार स्वसृ शब्द से औ, जस्, अम् और औ विभक्तियों के आने पर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से अर् आदेश होना था। परन्तु अग्रिम सूत्र **"स्वस्रादीनां च"** (२०३) से ऋ के स्थान पर आर् आदेश हो जायेगा।

स्वसृ शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रमृवर्णः"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५), **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६), **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८), **"अर्डौ"** (१६६), **"धातोस् तृशब्दस्यार्"** (२००)।

स्वसा – स्वसृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + स्" इस स्थिति में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर आकार आदेश कर तथा सि का लोप हो कर **"स्वसा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृ शब्द से औ, जस्, अम् और औ विभक्तियों के आने पर, ऋकार के स्थान पर आर् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२–६६)विधिसूत्रम् – स्वस्रादीनां च।।२०३।।

स्वस्रादीनां च ऋत आर्भवति घुटि परे। स्वसारौ। स्वसारः। हे स्वसः। इत्यादि। अन्यत्र पितृशब्दवत्। के स्वस्रादयः ?

अर्थ – घुट् परे होने पर स्वसृ आदि शब्दों के ऋकार के स्थान पर आर् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"पंचादौ घुट्" (१५६) सूत्र द्वारा सि, औ जस् अम् और औ इन पांच विभक्तियों की घुट् संज्ञा होती है।

शंका – स्वसृ आदि शब्द कौन से हैं?

समाधान – **स्वसा नप्ता च नेष्टा च, त्वष्टा क्षत्ता तथैव च।**
होता पोता प्रशास्ता चेत्यष्टौ स्वस्रादयः स्मृताः।।

नोट – "कलाप–व्याकरण" में चतुर्थ चरण – **"च अष्टौ स्वस्रादयः स्मृताः"**।। पाठ है।

श्लोकार्थ – स्वसृ = बहिन, नप्तृ = दोहता, (अपनी लड़की का लड़का), नेष्टृ= दान देने वाला, त्वष्टृ = एक विशेष असुर, क्षत्तृ = सारथि (द्वारपाल), होतृ = हवन करने वाला, पोतृ = पवित्र करने वाला, प्रशास्तृ = शासन करने वाला ये आठ शब्द स्वसृ आदि कहे गये हैं।

इन आठ शब्दों से औ, जस्, अम्, और औ विभक्ति के आने पर, ऋकार के स्थान पर, आर् आदेश होता है। स्वसृ आदि कहे गये हैं।

स्वसारौ – स्वसृ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + औ" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से अस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"स्वस्रादीनां च"** (२०३) सूत्र से ऋकार के स्थान पर आर् आदेश हो कर **"स्वसारौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसारः – स्वसृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर "स्वसृ + अस्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से अस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"स्वस्रादीनां च"** (२०३) सूत्र से ऋकार के स्थान पर आर् आदेश कर, "स्वसार् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"स्वसारः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे स्वसः – स्वसृ शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से आमन्त्रण में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) इन तीनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र से, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) इन दोनों सूत्रों का निषेध हो कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "स्वसर् + स्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८) सूत्र से सि का लोप कर, "स्वसर्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे स्वसः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे स्वसारौ"** तथा बहुवचन में **"हे स्वसारः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

स्वसारम् – स्वसृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + अम्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से अस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"स्वस्रादीनां च"** (२०३) सूत्र से ऋकार के स्थान पर आर् आदेश कर, "स्वसार् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्वसारम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसॄः – स्वसृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + अस्" इस स्थिति में **"अग्निवच्छसि"** (१६७) सूत्र से स्वसृ शब्द को अग्निवत् कार्य अर्थात् **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर ऋस् आदेश कर, "स्वसृ + ऋस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"स्वसॄः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वस्रा – स्वसृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + आ" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "स्वस्र् + आ" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्वस्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृभ्याम् – स्वसृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"स्वसृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृभिः – स्वसृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"स्वसृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वस्रे – स्वसृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + ए" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "स्वस्र् + ए" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्वस्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृभ्यः – स्वसृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"स्वसृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसुः — स्वसृ शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + अस्" इस स्थिति में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र से ऋकार तथा अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "स्वस् उस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश करने पर **"स्वसुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वस्रोः — स्वसृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + ओस्" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"स्वस्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसॄणाम् — स्वसृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर, "स्वसॄ + नाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"स्वसॄणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसरि — स्वसृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "स्वसृ + इ" इस स्थिति में, **"अर्ङौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"स्वसरि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृषु — स्वसृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"स्वसृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृ शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
सम्बोधन	हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः
द्वितीया	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसॄः
तृतीया	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
चतुर्थी	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः

पंचमी	स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
षष्ठी	स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसृणाम्
सप्तमी	स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु

नृशब्दस्य तु भेदः। नृशब्दस्यामि विशेषः। ना। नरौ नरः। हे नः। हे नरौ। हे नरः। नरम्। नरौ। नॄन्। न्रा। नृभ्याम्। नृभिः। न्रे। नृभ्याम्। नृभ्यः। नुः। नृभ्याम्। नृभ्यः। नुः। न्रोः। न नामि दीर्घमिति वर्तते।

नृ (मनुष्य) शब्द में भेद है। नयतीति ना। नृ शब्द से आम् विभक्ति में विशेषता है। शेष रूप पितृ शब्दवत् चलेंगे। नृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "नु" का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से नित्य दीर्घ की प्राप्ति का **"नृ वा"** (२०४) सूत्र द्वारा वैकल्पिक दीर्घ आदेश होता है।

नृ शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रमृवर्णः"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५), **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६), **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८), **"अर्ङौ"** (१६६), **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००)।

ना – नृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "नृ + स्" इस स्थिति में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर "आ" आदेश तथा सि का लोप हो कर **"ना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नरौ – नृ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर "नृ + औ" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर, "नर् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"नरौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नरः – नृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर "नृ + अस्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से जस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "नर् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नरः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे नः – नृ शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "नृ + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से आमन्त्रण में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) **"घुटि च"** (१६५) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) इन तीनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र से, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) इन दोनों सूत्रों का निषेध हो कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "नर् + स्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८) सूत्र से सि का लोप कर, "नर्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे नः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे नरौ"** तथा बहुवचन में **"हे नरः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

नरम् – नृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "नृ + अम्" इस स्थिति में "नृ + अम्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर, **"नरम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नॄन् – नृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "नृ + अस्" इस स्थिति में **"अग्निवच्छसि"** (१६७) सूत्र से नृ शब्द को अग्निवत् कार्य अर्थात् **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर ऋन् आदेश हो कर **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"नॄन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

न्रा – नृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "नृ + आ" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "न्र् + आ" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"न्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नृभ्याम् – नृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"नृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नृभिः – नृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "नृ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

न्रे – नृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "नृ + ए" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "न्र् + ए" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"न्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नृभ्यः – नृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "नृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नुः – नृ शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "नृ + अस्" इस स्थिति में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र से ऋकार तथा अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर "न् उस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"नुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

न्रोः – नृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "नृ + ओस्" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, "न् र् + ओस्" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"न्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, नित्य दीर्घ की प्राप्ति थी परन्तु अग्रिम सूत्र में **"न नामि दीर्घम्"** (२२५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

नृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "नृ नाम्" यहाँ "नृ" के ऋकार को वैकल्पिक दीर्घ करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१७०)विधिसूत्रम् – नृ वा।।२०४।।

नृ शब्दो वा दीर्घं प्राप्नोति सनावामि परे। नृणाम्, नृणाम्। नरि। न्रोः। नृषु। इति ऋदन्ताः। ऋकारलकारलॄकारैकारान्ता अप्रसिद्धाः। ऐकारान्तः पुल्लिङ्गो रै शब्दः। आत्वं व्यञ्जनादौ इति वर्तते।

अर्थ – नु परक आम् परे होने पर नृ शब्द के ऋ को विकल्प से दीर्घ होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"न नामि दीर्घम्"** (२२५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

नृणाम्, नॄणाम् – नृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "नृ + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नु"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "नृ + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से नित्य दीर्घ की प्राप्ति थी परन्तु **"नृ वा"** (२०४) सूत्र द्वारा विकल्प से दीर्घ कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्ग–पवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"नॄणाम्"** तथा **"नृणाम्"** दो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

नरि – नृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "नृ + इ" इस स्थिति में, **"अर्डौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"नरि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नृषु – नृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर "नृ + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"नृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नृ शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	ना	नरौ	नरः
सम्बोधन	हे नः	हे नरौ	हे नरः
द्वितीया	नरम्	नरौ	नॄन्
तृतीया	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
चतुर्थी	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
पञ्चमी	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
षष्ठी	नुः	न्रोः	नृणाम्, नॄणाम्
सप्तमी	नरि	न्रोः	नृषु

विशेष – लक्ष्म्या वै जायते भानुः, सरस्वत्यापि जायते।
अत्र षष्ठीपदं गुप्तं, यो जानाति, स पण्डितः।। (भाः कान्तिः, नुः पुरुषस्य)।

विशेष – एकोना विंशतिः स्त्रीणां, स्नानार्थं सरयूं गता।
विंशतिः पुनरायाता, एको व्याघ्रेण भक्षितः।। (एकोना इति विंशतेर्विशेषणेन विरोधः, एको ना– नरः इति परिहारः)।

।। इस प्रकार ऋकारान्त शब्दों का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

ॠकारान्त, लृकारान्त, ॡकारान्त, एकारान्त शब्द अप्रसिद्ध हैं।

अब ऐकारान्त शब्द में रै शब्द के रूप सिद्ध करते हैं।

राति = ददाति श्रेयो र्थं वा पात्रेभ्य इति राः। रायते = दीयते इति रा इति वा। धन, सूर्य या सुवर्ण को "रै" कहते हैं।

रै शब्द से औ आदि स्वरान्त विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर, विभक्ति जोड़ने पर प्रयोग सिद्ध होते हैं। सि आदि व्यञ्जनान्त विभक्ति के आने पर, अग्रिम सूत्र द्वारा रै के ऐकार के स्थान पर आकार आदेश होता है।

रै शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, अग्रिम सूत्र के लिए **"आत्वं व्यञ्जनादौ"** (३५३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

रै शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"ऐ आय्"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०)।

रै शब्द से सि आदि व्यञ्जनान्त विभक्ति के आने पर रै शब्द के ऐकार के स्थान पर आकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१६१)विधिसूत्रम् – रैः।।२०५।।

रैशब्दस्य आद् भवति व्यञ्जनादौ स्यादौ परतः। राः, रायौ, रायः। हे राः, हे रायौ, हे रायः। रायम्, रायौ, रायः। राया, राभ्याम्, राभिः। राये, राभ्याम्, राभ्यः। रायः, राभ्याम्, राभ्यः। रायः, रायोः, रायाम्। रायि, रायोः, रासु। इत्यैकारान्तः।। ओकारान्तः पुल्लिङ्गो गोशब्दः।

अर्थ – सि आदि व्यञ्जन परे होने पर, रै शब्द के ऐकार के स्थान पर "आकार" आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"आत्वं व्यञ्जनादौ"** (३५३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

व्यञ्जन आदि में हो ऐसी विभक्तियाँ – सि, भ्याम् भिस् भ्यस् तथा सुप् कहलाती हैं। इन आठ विभक्तियों के परे होने पर रै शब्द को "रा" आदेश होता है।

शेष तेरह विभक्तियों के परे रहते **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से आय् आदेश हो जायेगा।

राः – रै शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर "रै + स्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश कर, "रा + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"राः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रायौ – रै शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश हो कर **"रायौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रायः – रै शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"रायः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे राः – रै शब्द से सम्बुद्धि में सि विभक्ति के आने पर, **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश हो कर "रा + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे राः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे रायौ"** तथा बहुवचन में **"हे रायः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

रायम् – रै शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"रायम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

राया – रै शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"राया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

राभ्याम् – रै शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के एकवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, "रै + भ्याम्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश करने पर **"राभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

राभिः – रै शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "रै + भिस्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"राभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

राये – रै शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"राये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रायः – रै शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, रै + अस्" इस स्थिति में **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"रायः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रायोः – रै शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"रायोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रायाम् – रै शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"रायाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रायि – रै शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"रायि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रासु – रै शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "रै + सु" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश करने पर **"रासु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रै शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	राः	रायौ	रायः
सम्बोधन	हे राः	हे रायौ	हे रायः
द्वितीया	रायम्	रायौ	रायः
तृतीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पंचमी	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	रायोः	रासु

।। इस प्रकार ऐकारान्त शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब ओकारान्त गो (बैल) शब्द का विवेचन करते हैं।

गो शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"ओ अव्"** (५०), **"औ आव्"** (५१), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०)।

गो शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर गो शब्द के ओकार के स्थान पर औकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.११०)विधिसूत्रम् – गोरौ घुटि।।२०६।।

गोशब्दस्यान्त और्भवति घुटि परे। गौः, गावौ, गावः। हे गौः, हे गावौ, हे गावः।

अर्थ – घुट् परे होने पर गो शब्द के ओकार के स्थान पर, "औकार" आदेश होता है।

सि, औ, जस्, अम् और औ ये पांच घुट् विभक्तियाँ कहलाती हैं। इन पांचों विभक्तियों के होने पर, गो शब्द के ओकार के स्थान पर, औकार आदेश होता है। यह सामान्य कथन है। परन्तु अम् विभक्ति के आने पर, **"अम्शसोराः"** (२०७) सूत्र से गो शब्द के ओकार के स्थान पर आकार आदेश होता है।

गौः – गो शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "गो + स्" इस स्थिति में **"गोरौ घुटि"** (२०६) सूत्र से ओकार के स्थान पर औकार आदेश कर, "गौ + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"गौः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गावौ – गो शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "गो + औ" इस स्थिति में **"गोरौ घुटि"** (२०६) सूत्र से ओकार के स्थान पर औकार आदेश कर, "गौ + औ" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर आव् आदेश हो कर **"गावौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गावः – गो शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "गो + अस्" इस स्थिति में **"गोरौ घुटि"** (२०६) सूत्र से ओकार के स्थान पर औकार आदेश कर,

"गौ + अस्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"गावः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी पूर्ववत् – **हे गौः, हे गावौ, हे गावः,** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

शंका – गो शब्द से ही घुट् हो ऐसा क्यों कहा?

समाधान – यदि गो शब्द से ही घुट् नहीं कहते तो "उपगु" शब्द के उकार को भी औ आदेश हो जाता। सम्बुद्धि में हे चित्रगो, हे चित्रगू, हे चित्रगवः प्रयोग बनते हैं।

गो शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् तथा बहुवचन में शस् "विभक्ति" के आने पर, गो शब्द के ओकार के स्थान पर आकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१११)विधिसूत्रम् – अम्शसोरा।।२०७।।

गोशब्दस्यान्त आ भवति अम्शसोः परतः। गाम् गावौ गाः। गवा गोभ्याम् गोभिः। गवे गोभ्याम् गोभ्यः। ङसिङसोरलोपश्चेति वर्तते।

अर्थ – अम् और शस् परे होने पर गो शब्द के ओकार के स्थान पर आकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"गोरौ घुटि"** (२०६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"गोरौ घुटि" (२०६) सूत्र से औ के अपवाद रूप में **"अम्शसोराः"** (२०७) सूत्र है।

गाम् – गो शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् "विभक्ति" के आने पर "गो + अम्" इस स्थिति में **"गोरौ घुटि"** (२०६) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"अम्शसोराः"** (२०७) सूत्र से गो के ओकार के स्थान पर आकार आदेश कर, "गा + अम्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"गाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गाः – गो शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर "गो + अस्" इस स्थिति में **"अम्शसोराः"** (२०७) सूत्र से गो के ओकार के स्थान पर आकार आदेश कर, "गा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"गाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गवा – गो शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"गवा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गोभ्याम् – गो शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"गोभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गोभिः – गो शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"गोभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे "विभक्ति" के आने पर **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"गवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि – ङस् विभक्ति आने पर, ङसि–ङस् के अकार का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.५६)विधिसूत्रम् – गोश्च।।२०८।।

गोशब्दात्परयोर्ङसिङसोरकारो लोपमापद्यते। गोः गोभ्याम् गोभ्यः। गोः गवोः गवाम्। गवि गवोः गोषु। इत्योकारान्तः। औकारान्तः पुल्लिङ्गो ग्लौशब्दः। ग्लौः ग्लावौ ग्लावः। सम्बोधने पि तद्वत्। ग्लावम् ग्लावौ ग्लावः। ग्लावा ग्लौभ्याम् ग्लौभिः। इत्यादि। इत्यौकारान्तः।

अर्थ – गो शब्द से परे ङसि ङस् के अकार का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

गोः – गो शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "गो + अस्" इस स्थिति में **"गोश्च"** (२०८) सूत्र से अस् के अकार का लोप कर, "गो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"गोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गवोः – गो शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"गवोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गवाम् – गो शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर, **"गवाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गवि – गो शब्द से सप्तमी के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर, **"गवि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गोषु – गो शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"गोषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गो (बैल) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
सम्बोधन	हे गौः	हे गावौ	हे गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पंचमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु

।। इस प्रकार ओकारान्त पुल्लिंग शब्द का विवेचन पूर्ण हुआ।।

अब औकारान्त पुल्लिंग ग्लौ (चन्द्रमा) शब्द का विवेचन किया जाता है। ग्लौ शब्द से औ आदि स्वरान्त विभक्ति के आने पर, **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर विभक्ति कार्य होता है। सि आदि व्यञ्जनान्त विभक्तिओं के आने पर, केवल विभक्ति जोड़कर प्रयोग सिद्ध होते हैं।

ग्लौ शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"औ आव्"** (५१), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"नामिकरपरः प्रत्यय–विकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०)।

ग्लौः – ग्लौ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ग्लौः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लावौ – ग्लौ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + औ" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर **"ग्लावौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लावः – ग्लौ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + अस्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ग्लावः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी पूर्ववत् – **हे ग्लौः, हे ग्लावौ, हे ग्लावः,** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

ग्लावम् – ग्लौ शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + अम्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर, **"ग्लावम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लावा – ग्लौ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + आ" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर, **"ग्लावा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लौभ्याम् – ग्लौ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"ग्लौभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लौभिः – ग्लौ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ग्लौभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लावे – ग्लौ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + ए" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर **"ग्लावे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लौभ्यः – ग्लौ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ग्लौभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लावः – ग्लौ शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + अस्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ग्लावः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लावोः – ग्लौ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + ओस्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"ग्लावोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लावाम् – ग्लौ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + आम्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश करने पर **"ग्लावाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लावि – ग्लौ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "ग्लौ + इ" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश करने पर **"ग्लावि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लौषु – ग्लौ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"ग्लौषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्लौ (चन्द्रमा) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
सम्बोधन	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	ग्लावः
द्वितीया	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृतीया	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः

चतुर्थी	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पंचमी	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
षष्ठी	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
सप्तमी	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु

।। इस प्रकार औकारान्त पुल्लिंग शब्द का विवेचन पूर्ण हुआ।।

।। इति स्वरान्ताः पुल्लिङ्गाः ।।

।। इस प्रकार स्वरान्त पुल्लिंग शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

❑ ❑ ❑

।। अथ स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गा उच्यन्ते ।।

अब स्वरान्त स्त्रीलिंग का प्रकरण प्रारम्भ होता है।

अकारान्तः स्त्रीलिङ्गो प्रसिद्धः आकारान्तः रम्भाशब्दः। सौ।

स्त्रीलिंग में अकारान्त शब्द अप्रसिद्ध हैं। स्त्रीलिंग में आकारान्त रम्भा शब्द का विवेचन करते हैं।

रम्भा शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७)।

रम्भा शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर स्त्रीलिंग में कथित आकारान्त शब्दों की श्रद्धासञ्ज्ञा करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१०)सञ्ज्ञासूत्रम् – आ श्रद्धा ।।२०६ ।।

आकारान्तः स्त्र्याख्यः श्रद्धासञ्ज्ञो भवति।

अर्थ – स्त्रीलिंग में कथित आकारान्त शब्द की श्रद्धा सञ्ज्ञा होती है।

रम्भा अश्वा, विद्या, बालिका, मेघा, धनिका, कृत्रिमा, शाला, माला, भार्या, कान्ता, वनिता आदि शब्दों की श्रद्धासञ्ज्ञा होती है।

रम्भा शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, सि विभक्ति का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.३७) विधिसूत्रम् – श्रद्धायाः सिर्लोपम् ।।२१० ।।

श्रद्धासञ्ज्ञकात् परः सिर्लोपमापद्यते। रम्भा।

अर्थ – श्रद्धासञ्ज्ञा से परे सि का लोप होता है।

अर्थात् स्त्रीलिंग में आकारान्त शब्दों की श्रद्धासञ्ज्ञा होती है। उदाहरण के रूप में रम्भा शब्द की श्रद्धासञ्ज्ञा होती है। अतः "रम्भा + स्" यहाँ सि विभक्ति का लोप होकर "रम्भा" प्रयोग बनता है।

रम्भा – रम्भा शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "रम्भा + स्" इस स्थिति में **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से रम्भा शब्द की श्रद्धासञ्ज्ञा कर, **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) सूत्र से सि का लोप हो कर **"रम्भा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भा शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, औ विभक्ति के स्थान पर, इकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४१)विधिसूत्रम् – औरिम्।।२११।।

श्रद्धासंज्ञकात्परः औरिमापद्यते। रम्भे। रम्भाः।

अर्थ – श्रद्धासञ्ज्ञा से परे औ के स्थान पर "इकार" आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

रम्भा शब्द की श्रद्धासञ्ज्ञा है। प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "औ" के स्थान पर इकार आदेश होगा। यथा – "रम्भा + इ"।

रम्भे – रम्भा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "रम्भा + औ" इस स्थिति में **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"औरिम्"** (२११) सूत्र से औ के स्थान पर "इकार" आदेश कर, "रम्भा + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से "आकार" के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा इकार का लोप हो कर **"रम्भे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भाः – रम्भा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "रम्भा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"रम्भाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन की विवक्षा में सि विभक्ति के आने पर श्रद्धासञ्ज्ञा के आकार को इकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.३६)विधिसूत्रम् – सम्बुद्धौ च।।२१२।।

श्रद्धाया एत्वं भवति सम्बुद्धौ परे। हे रम्भे। हे रम्भे। हे रम्भाः। रम्भाम्। रम्भे। रम्भाः।

अर्थ – सम्बुद्धि परे होने पर श्रद्धासञ्ज्ञक आकार के स्थान पर "एकार" आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) तथा **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

हे रम्भे – रम्भा शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर तथा **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा के कारण **"सम्बुद्धौ च"** (२१२) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"हे रम्भे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन तथा बहुवचन में पूर्ववत् – **हे रम्भे। हे रम्भाः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

रम्भाम् – रम्भा शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "रम्भा + अम्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"रम्भाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भा शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन की विवक्षा में टा विभक्ति के आने पर, रम्भा शब्द के आकार के स्थान पर एकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.३८) विधिसूत्रम् – टौसोरे।।२१३।।

श्रद्धाया एत्वं भवति टौसोः परतः। रम्भया। रम्भाभ्याम्। रम्भाभिः। ङवत्सु।

अर्थ – टा और ओस् परे होने पर श्रद्धासञ्ज्ञक आकार के स्थान पर एकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

रम्भया – रम्भा शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "रम्भा + आ" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "रम्भे + आ" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर, "रम्भय् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रम्भया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भाभ्याम् – रम्भा शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"रम्भाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भाभिः – तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "रम्भा + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"रम्भाभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भा शब्द से ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्ति के आने पर, ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्ति के स्थान पर क्रमशः यै, यास्, यास्, और याम् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४२)विधिसूत्रम् – ङवन्ति यैयास्यास्याम्।।२१४।।

श्रद्धायाः पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् यास् याम् भवन्ति यथासङ्ख्यम्। रम्भायै। रम्भाभ्याम्। रम्भाभ्यः। रम्भायाः। रम्भाभ्याम्। रम्भाभ्यः। रम्भायाः। रम्भयोः। रम्भाणाम्। रम्भायाम्। रम्भयोः। रम्भासु। एवं शाला–माला–दोला–भार्या–कान्ता–अङ्गना–वनिता–जाया–माया–प्रभृतयः। सर्वनाम्नस् त्रिलिङ्गत्वात्स्त्रीलिङ्गे।

अर्थ – श्रद्धा सञ्ज्ञा से परे ङे, ङसि, ङस् और ङि इनके स्थान पर क्रमशः यै, यास्, यास्, याम् आदेश होते हैं।

अर्थात् – श्रद्धासञ्ज्ञक आकारान्त स्त्रीलिंग से परे ङे के स्थान पर यै, ङसि के स्थान पर यास्, ङस् के स्थान पर यास् तथा ङि के स्थान पर याम् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्तियों में ङकार का अनुबन्ध लोप होता है। अतः ये चारों विभक्तियाँ ङवन्ति कहलाती हैं। आगे ङवन्ति के कथन से इन चारों विभक्तियों का ग्रहण करना चाहिये।

रम्भायै – रम्भा शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "रम्भा + ङे" इस स्थिति में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङे के स्थान पर यै आदेश हो कर **"रम्भायै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भाभ्यः – रम्भा शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "रम्भा + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"रम्भाभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भायाः – रम्भा शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "रम्भा + अस्" इस स्थिति में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर यास् आदेश कर, "रम्भा + यास्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"रम्भायाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भयोः – रम्भा शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "रम्भा + ओस्" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "रम्भे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर, "रम्भय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रम्भयोस्"** इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"रम्भयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भाणाम् – रम्भा शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "रम्भा + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"रम्भाणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भायाम् – रम्भा शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "रम्भा + ङि" इस स्थिति में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङि के स्थान पर याम् आदेश करने पर **"रम्भायाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भासु – रम्भा शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "रम्भा + सुप्" **"रम्भासु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रम्भा शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	रम्भा	रम्भे	रम्भाः
सम्बोधन	हे रम्भे	हे रम्भे	हे रम्भाः
द्वितीया	रम्भाम्	रम्भे	रम्भाः
तृतीया	रम्भया	रम्भाभ्याम्	रम्भाभिः
चतुर्थी	रम्भायै	रम्भाभ्याम्	रम्भाभ्यः
पंचमी	रम्भायाः	रम्भाभ्याम्	रम्भाभ्यः
षष्ठी	रम्भायाः	रम्भयोः	रम्भाणाम्
सप्तमी	रम्भायाम्	रम्भयोः	रम्भासु

इसी प्रकार – शाला, माला, दोला, भार्या, कान्ता, अङ्गना, वनिता, जाया, माया आदि के रूप जानना चाहिये।

इसी प्रकार – **एडका** (भेड), **अश्वा** (घोडी), **चटका** (चिडिया), **मूषिका** (चूही), **बाला** (बच्ची), **वत्सा** (बच्ची या बछिया), **होडा** (बाला), **मन्दा** (बालिका), **विलाता** (बाला या नवयौवना), **मेधा** (बुद्धि), **गङ्गा** (नदी विशेष), **खट्वा** (खाट), **धनिका** (धनी औरत), **कृत्रिमा** (बनावटी), **स्वभावजा गता** (गई हुई)। शब्दों के प्रयोग जानना चाहिये।

सर्वा शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"आ श्रद्धा"** (२०६), **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०), **"औरिम्"** (२११), **"सम्बुद्धौ च"** (२१२), **"टौसोरे"** (२१३), **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४)।

सर्वनामसञ्ज्ञक सर्व शब्द तीनों लिंगों में होने से स्त्रीलिंग की विवक्षा में सि विभक्ति के आने पर, स्त्रीलिंग की विवक्षा में "आ" प्रत्यय करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२५५)विधिसूत्रम् – स्त्रियामादा।।२१५।।

स्त्रियां वर्तमानादकारान्तादा प्रत्ययो भवति विभक्तिपरे। सर्वा। सर्वे। सर्वाः। हे सर्वे। हे सर्वे। हे सर्वाः। सर्वाम्। सर्वे। सर्वाः। सर्वया। सर्वाभ्याम्। सर्वाभिः। ङवत्सु।

अर्थ – विभक्ति परे होने पर स्त्रीलिंग के वर्तमान अकार से आ प्रत्यय होता है।

पुल्लिंग शब्द प्रायः कर अकारान्त होते हैं। उन अकारान्त शब्दों को या अन्य स्त्रीलिंग वाचक शब्दों को स्त्रीलिंग की विवक्षा में "आ" प्रत्यय कर, आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों की रचना होती है।

सर्व शब्द से सि आदि विभक्ति के आने के पश्चात् **"स्त्रियामादा"** (२५३) सूत्र से आ प्रत्यय हो कर **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर **"सर्वा"** आकारान्त शब्द बन जाता है। सर्वा शब्द की **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा होती है। श्रद्धा सञ्ज्ञा होने पर पूर्ववत् प्रयोग सिद्ध करना चाहिये।

सर्वनाम संज्ञक सर्वा आदि शब्द के प्रथमा विभक्ति से तृतीया विभक्ति तक **"रम्भा"** शब्द के समान रूप सिद्ध होते हैं।

सर्वा – सर्वा शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर "सर्वा + स्" इस स्थिति में **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से सर्वा शब्द की श्रद्धासञ्ज्ञा कर, **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) सूत्र से सि का लोप हो कर **"सर्वा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वे – सर्वा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"औरिम्"** (२११) सूत्र से औ के स्थान पर "इकार" आदेश कर, "सर्वा + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से "आकार" के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा इकार का लोप हो कर **"सर्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वाः – सर्वा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "सर्वा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"सर्वाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे सर्वे – सर्वा शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर तथा **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा के कारण **"सम्बुद्धौ च"** (४२) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"हे सर्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन तथा बहुवचन में पूर्ववत् – **हे सर्वे । हे सर्वाः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सर्वाम् – सर्वा शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "सर्वा + अम्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"सर्वाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वया – सर्वा शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "सर्वा + आ" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "सर्वे + आ" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर, "सर्वय् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"सर्वया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वाभ्याम् – सर्वा शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"सर्वाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वाभिः – सर्वा शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "सर्वा + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सर्वाभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वा शब्द से ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्ति के आने पर, ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्तियों के स्थान पर क्रमशः स्यै, स्यास्, स्यास् और स्याम् आदेश करने के लिये तथा सर्वनामसंज्ञक, सर्वा आदि शब्दों को ह्रस्व आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४३)विधिसूत्रम् – सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च।।२१६।।

सर्वनाम्नः श्रद्धायाः पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् यास् याम् भवन्ति यथासङ्ख्यं सह सुना ह्रस्वपूर्वाश्च। सर्वस्यै। सर्वाभ्याम्। सर्वाभ्यः। सर्वस्याः। सर्वाभ्याम्। सर्वाभ्यः। सर्वस्याः। सर्वयोः। आमि। सुरामि सर्वतः। सर्वासाम्। सर्वस्याम्। सर्वयोः सर्वासु। एवं विश्वादीनामेकशब्दपर्यन्तानां रूपं ज्ञेयम्। अल्पादीनां तु सप्तानां रम्भाशब्दवत्। अल्प–प्रथम–चरम–तय अय–कतिपय–अर्य–एते सप्त। द्वितीया शब्दस्य तु भेदः। द्वितीया। द्वितीये। द्वितीयाः। हे द्वितीये। हे द्वितीये। हे द्वितीयाः। द्वितीयाम्। द्वितीये। द्वितीयाः। द्वितीयया। द्वितीयाभ्याम्। द्वितीयाभिः। ङवत्सु।

अर्थ – सर्वनाम श्रद्धा सञ्ज्ञा से परे ङे, ङसि, ङस्, ङि के स्थान पर सकार सहित क्रमशः यै, यास्, यास्, याम् आदेश होते हैं, तथा पूर्व को ह्रस्व आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात् ङे के स्थान पर स्यै, ङसि के स्थान पर स्यास्, ङस् के स्थान पर स्यास् तथा ङि के स्थान पर स्याम् आदेश होते हैं तथा सर्वनामसञ्ज्ञक सर्वा के स्थान पर सर्व आदेश होता है।

सर्वस्यै – सर्वा शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर "सर्वा + ङे" इस स्थिति में **"सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च"** (२१६) सूत्र से ङे के स्थान पर स्यै आदेश तथा सर्वा के स्थान पर सर्व ह्रस्व आदेश हो कर **"सर्वस्यै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वाभ्यः – सर्वा शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "सर्वा + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"सर्वाभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वस्याः – सर्वा शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर "सर्वा + अस्" इस स्थिति में **"सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च"** (२१६) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर स्यास् आदेश तथा सर्वा के स्थान पर सर्व ह्रस्व आदेश कर, "सर्व + स्यास्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सर्वस्याः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वयोः – सर्वा शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर "सर्वा + ओस्" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर "सर्वे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश हो कर "सर्वय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"सर्वयोस्"** इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सर्वयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वासाम् – सर्वा शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "सर्वा + आम्" इस स्थिति में **"सुरामि सर्वतः"** (१५५) सूत्र से सु का आगम हो कर **"सर्वासाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वस्याम् – सर्वा शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "सर्वा + ङि" इस स्थिति में **"सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च"** (२१६) सूत्र से ङि के स्थान पर स्याम् आदेश तथा सर्वा के स्थान पर सर्व ह्रस्व आदेश हो कर **"सर्वस्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वासु – सर्वा शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "सर्वा + सुप्" **"सर्वासु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वा शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सम्बोधन	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पंचमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

इसी प्रकार – **विश्व** = सम्पूर्ण/सब, **उभ** = दोनों, (यह सदा द्विवचनान्त ही प्रयुक्त होता है।), **उभय** = दो अवयवों वाला (इसका प्रयोग द्विवचन में नहीं होता), **अन्य** = दूसरा, **अन्यतर** = दो में से एक, **अन्यतम** = बहुतों में से एक, (पुरुषवत्) **इतर** = भिन्न, **इतम =** , **कतर** – दो में कौन, **कतम** = बहुतों में कौन, **यतर** = दो में जो, **यतम** = बहुतों में जो, **ततर** = दो में वह, **ततम** – बहुत में वह/बहुतों में कौन, **एकतर** – दो में एक, **एकतम** – बहुतोंमें एक, **स्व** = आप और अपना, **त्व** = भिन्न, **नेम** = अर्ध (आधा), **सम** = सब/तुल्य, (सब अर्थ में सर्वनाम संज्ञा, तुल्य अर्थ में नहीं), **सिम** = सब, **पूर्व** = पूर्व दिशा स्थित – पूर्वकाल/दिशा–विशेष, **पूर्व** = प्रथम आदि, **पर** = दूसरा आदि, **अवर** = न्यून आदि, **दक्षिण** = दाहिना आदि, **उत्तर** = अगला आदि, **अपर** = दूसरा आदि, **अधर** = नीचा आदि।

स्व = आत्मा/आत्मीय, **अन्तर** = बाह्य या परिधानीय, **प्रथम** = पहला, **चरम** = अन्तिम, **द्वितय** = दो अवयवों वाला/जोड़ा, **अल्प** = थोड़ा, **अर्ध** = आधा, **कतिपय** = कुछ और **नेम** = आधा, **त्यद्** = जो, **तद्** = वह, **यद्** = जो, **अदस्** – वह, **इदम्** – यह, **एतद्** = यह, **किम्** = कौन, **एक** = एक, ये सभी सर्वादिगण के शब्द हैं।

इन शब्दों से **"स्त्रियामादा"** (२५३) सूत्र से आ प्रत्यय हो कर **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर **"विश्वा"** आदि आकारान्त शब्द बन जाते हैं।

विश्वा शब्द की **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा होती है। श्रद्धा सञ्ज्ञा होने पर पूर्ववत् प्रयोग सिद्ध करना चाहिये।

किन्तु अल्प आदि सात शब्द रम्भाशब्दवत् जानना चाहिये।

अल्प, प्रथम, चरम, तय, अय, कतिपय अर्य ये सात शब्द अल्प आदि कहलाते हैं। इन शब्दों से **"स्त्रियामादा"** (२१५) सूत्र से आ प्रत्यय हो कर **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर **"अल्पा"** आकारान्त शब्द बन जाता है। अल्पा शब्द की **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा होती है।

अल्पा शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"आ श्रद्धा"** (२०६), **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०), **"औरिम्"** (२११), **"सम्बुद्धौ च"** (२१२), **"टौसोरे"** (२१३), **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४)।

अल्पा – अल्पा शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "अल्पा + स्" इस स्थिति में **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से रम्भा शब्द की श्रद्धासञ्ज्ञा कर, **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) सूत्र से सि का लोप हो कर **"अल्पा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पे – अल्पा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"औरिम्"** (२११) सूत्र से "औ" के स्थान पर "इकार" आदेश कर, "अल्पा + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से "आकार" के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा इकार का लोप हो कर **"अल्पे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पाः – अल्पा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "अल्पा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"अल्पाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे अल्पे – अल्पा शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर तथा **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा के कारण **"सम्बुद्धौ च"** (४२) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"हे अल्पे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन तथा बहुवचन में पूर्ववत्–**हे अल्पे। हे अल्पाः** रूप सिद्ध होते हैं।

अल्पाम् – अल्पा शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "अल्पा + अम्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"अल्पाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पया – अल्पा शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "अल्पा + टा" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "अल्पे + आ" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर, "अल्पय् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"अल्पया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पाभ्याम् – अल्पा शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"अल्पाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पाभिः – अल्पा शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "अल्पा + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अल्पाभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पायै – अल्पा शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर "अल्पा + ङे" इस स्थिति में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङे के स्थान पर यै आदेश हो कर **"अल्पायै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पाभ्यः – अल्पा शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "अल्पा + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"अल्पाभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पायाः – अल्पा शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर "अल्पा + अस्" इस स्थिति में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर यास् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अल्पायाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पयोः – अल्पा शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर "अल्पा + ओस्" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर "अल्पे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश हो कर "अल्पय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "अल्पयोस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अल्पयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पानाम् – अल्पा शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "अल्पा + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम करने पर, **"अल्पानाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पायाम् – अल्पा शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "अल्पा + ङि" इस स्थिति में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङि के स्थान पर याम् आदेश करने पर **"अल्पायाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पासु – अल्पा शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "अल्पा + सुप्" **"अल्पासु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अल्पा शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अल्पा	अल्पे	अल्पाः
सम्बोधन	हे अल्पे	हे अल्पे	हे अल्पाः
द्वितीया	अल्पाम्	अल्पे	अल्पाः
तृतीया	अल्पया	अल्पाभ्याम्	अल्पाभिः
चतुर्थी	अल्पायै	अल्पाभ्याम्	अल्पाभ्यः
पंचमी	अल्पायाः	अल्पाभ्याम्	अल्पाभ्यः
षष्ठी	अल्पायाः	अल्पयोः	अल्पानाम्
सप्तमी	अल्पायाम्	अल्पयोः	अल्पासु

द्वितीया शब्द में भेद है। ङे, ङसि, ङस्, ङि विभक्तियों में विकल्प से उपर्युक्त कार्य होता है। अर्थात् ङे आदि के स्थान पर स्यै और यै आदेश होते हैं। प्रथमा से तृतीया विभक्ति तक रम्भा शब्द के समान रूप चलते हैं। ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्तियों में रम्भा और सर्वा दोनों शब्दों के समान रूप चलते हैं।

द्वितीया शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"आ श्रद्धा"** (२०६), **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०), **"औरिम्"** (२११), **"सम्बुद्धौ च"** (२१२), **"टौसोरे"** (२१३), **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४), **"स्त्रियामादा"** (२१५), **"सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च"** (२१६)।

द्वितीया – द्वितीया शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + स्" इस स्थिति में **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से द्वितीया शब्द की श्रद्धासञ्ज्ञा कर, **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) सूत्र से सि का लोप हो कर **"द्वितीया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीये – द्वितीया शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"औरिम्"** (२११) सूत्र से औ के स्थान पर, "इकार" आदेश कर, "द्वितीया + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से "आकार" के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा इकार का लोप हो कर **"द्वितीये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयाः – द्वितीया शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"द्वितीयाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे द्वितीये – द्वितीया शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर तथा **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा के कारण **"सम्बुद्धौ च"** (४२) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"हे द्वितीये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन तथा बहुवचन में पूर्ववत्–**हे द्वितीये। हे द्वितीयाः** रूप सिद्ध होते हैं।

द्वितीयाम् – द्वितीया शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "द्वितीय + अम्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"द्वितीयाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयया – द्वितीया शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + आ" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "द्वितीये + आ" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर, "द्वितीयय् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"द्वितीयया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयाभ्याम् – द्वितीया शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"द्वितीयाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयाभिः – द्वितीया शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"द्वितीयाभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीया शब्द से ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्ति के आने पर, वैकल्पिक सकार सहित क्रमशः यै, यास्, यास्, याम् आदेश तथा द्वितीया शब्द को ह्रस्व करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४४)विधिसूत्रम् – द्वितीयातृतीयाभ्यां वा।।२१७।।

द्वितीयातृतीयाभ्यां पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् यास् याम् भवन्ति यथासङ्ख्यं सह सुना ह्रस्वपूर्वाश्च वा। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। द्वितीयाभ्याम्। द्वितीयाभ्यः। द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः। द्वितीयाभ्याम्। द्वितीयाभ्यः। द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः। द्वितीययोः। सर्वादौ अपठितत्वात् न सुरागमः। द्वितीयानाम्। द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम्। द्वितीययोः। द्वितीयासु। एवं तृतीयाशब्दो पि। अन्यत्र रम्भाशब्दवत्। जरा शब्दस्य तु भेदः। व्यञ्जने रम्भाशब्दवत्।

अर्थ – द्वितीया और तृतीया शब्दों से परे ङे, ङसि, ङस् और ङि के स्थान पर विकल्प से सकार सहित क्रमशः यै, यास्, यास्, याम् आदेश होते हैं तथा पूर्व को ह्रस्व आदेश होता है।

अर्थात् ङे, ङसि, ङस् और ङि के स्थान पर क्रमशः स्यै, स्यास्, स्यास् और स्याम् आदेश होते हैं तथा द्वितीया–तृतीया शब्दों को ह्रस्व आदेश होता है। विकल्प पक्ष में यै, यास्, यास् और याम् आदेश होते हैं, परन्तु ह्रस्व आदेश नहीं होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र की तथा **"सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च"** (२१६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

द्वितीयस्यै, द्वितीयायै – द्वितीया शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + ङे" इस स्थिति में **"द्वितीयातृतीयाभ्यां वा"** (२१७) सूत्र द्वारा वैकल्पिक ङे के स्थान पर स्यै तथा द्वितीया के स्थान पर द्वितीय आदेश हो कर, **"द्वितीयस्यै"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङे के स्थान पर यै आदेश हो कर **"द्वितीयायै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयाभ्यः – द्वितीया शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"द्वितीयाभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः – द्वितीया शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + अस्" इस स्थिति में **"द्वितीयातृतीयाभ्यां वा"** (२१७) सूत्र द्वारा वैकल्पिक ङसि–ङस् के स्थान पर स्यास् तथा द्वितीया के स्थान पर द्वितीय आदेश कर, "द्वितीय + स्यास्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"द्वितीयस्याः"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर यास् आदेश कर, "द्वितीया + यास्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"द्वितीयायाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीययोः – द्वितीया शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर "द्वितीया + ओस्" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर "द्वितीये + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश हो कर "द्वितीयय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "द्वितीययोस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"द्वितीययोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयानाम् – द्वितीया शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम हो कर **"द्वितीयानाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम् – द्वितीया शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + ङि" इस स्थिति में **"द्वितीयातृतीयाभ्यां वा"** (२१७) सूत्र द्वारा वैकल्पिक ङि के स्थान पर स्याम् तथा द्वितीया के स्थान पर द्वितीय आदेश करने पर, **"द्वितीयस्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङि के स्थान पर याम् आदेश करने पर, **"द्वितीयायाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीयासु – द्वितीया शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "द्वितीया + सु" **"द्वितीयासु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वितीया शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वितीया	द्वितीये	द्वितीयाः
सम्बोधन	हे द्वितीये	हे द्वितीये	हे द्वितीयाः
द्वितीया	द्वितीयाम्	द्वितीये	द्वितीयाः
तृतीया	द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभिः
चतुर्थी	द्वितीयस्यै द्वितीयायै	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
पंचमी	द्वितीयस्याः द्वितीयायाः	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
षष्ठी	द्वितीयस्याः द्वितीयायाः	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
सप्तमी	द्वितीयस्याम् द्वितीयायाम्	द्वितीययोः	द्वितीयासु

इसी प्रकार तृतीया शब्द के रूप जानना चाहिये।

तृतीया शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तृतीया	तृतीये	तृतीयाः
सम्बोधन	हे तृतीये	हे तृतीये	हे तृतीयाः
द्वितीया	तृतीयाम्	तृतीये	तृतीयाः
तृतीया	तृतीयया	तृतीयाभ्याम्	तृतीयाभिः
चतुर्थी	तृतीयस्यै तृतीयायै	तृतीयाभ्याम्	तृतीयाभ्यः
पंचमी	तृतीयस्याः तृतीयायाः	तृतीयाभ्याम्	तृतीयाभ्यः
षष्ठी	तृतीयस्याः तृतीयायाः	तृतीययोः	तृतीयानाम्
सप्तमी	तृतीयस्याम् तृतीयायाम्	तृतीययोः	तृतीयासु

जरा (बुढ़ापा) शब्द में भेद है। औ आदि स्वरान्त विभक्तियों के आने पर, जरा शब्द को वैकल्पि जरस् आदेश होता है। जरस् आदेश होने पर विभक्ति जोड़कर प्रयोग सिद्ध होते हैं।

व्यञ्जन वाली विभक्तियों में रम्भाशब्दवत् रूप बनते हैं।

जरा शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"आ श्रद्धा"** (२०६), **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०)।

जरा – जरा शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "जरा + स्" इस स्थिति में **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से जरा शब्द की श्रद्धासञ्ज्ञा कर, **"श्रद्धायाः सिर्लोपम्"** (२१०) सूत्र से सि का लोप हो कर **"जरा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरा शब्द से औ आदि स्वरान्त विभक्तियों के आने पर जरा शब्द के स्थान पर वैकल्पिक जरस् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२–१६६)विधिसूत्रम् – जरा जरस् स्वरे वा।।२१८।।

जराशब्दो जरस् वा भवति विभक्तिस्वरे परे। जरे, जरसौ। जराः जरसः। हे जरे। हे जरे, हे जरसौ। हे जराः, हे जरसः। जराम्, जरसम्। जरे जरसौ। जराः, जरसः। जरसा, जरया। जराभ्याम्। जराभिः। जरायै, जरसे। जराभ्याम्। जराभ्यः। जरायाः, जरसः। जराभ्याम्। जराभ्यः। जरायाः, जरसः। जरयोः, जरसोः। जराणाम्, जरसाम्। जरायाम्, जरसि। जरयोः, जरसोः। जरासु।

अर्थ – स्वर वाली विभक्तियाँ परे होने पर "जरा" के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश होता है।

स्वर वाली विभक्तियाँ निम्न हैं – औ, जस्, अम्, शस्, टा, ङे, ङसि, ङस् ओस्, आम् ङि।

जरा के स्थान पर जरस् आदेश होने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **जरसौ, जरसः** आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

जरसौ, जरे – जरा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, "जरा + औ" इस स्थिति में **"जरा जरस् स्वरे वा"** (२१३) सूत्र द्वारा जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"जरसौ"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"औरिम्"** (२११) सूत्र से औकार के स्थान पर इकार आदेश कर, **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार तथा इकार का लोप हो कर **"जरे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरसः, जराः – जरा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "जरा + अस्" इस स्थिति में **"जरा जरस् स्वरे वा"** (२१३) सूत्र से जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, "जरस् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"जरसः"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"जराः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे जरे – जरा शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"आ श्रद्धा"** (२०६) सूत्र से श्रद्धा सञ्ज्ञा कर, **"ह्स्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर तथा **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा के कारण **"सम्बुद्धौ च"** (४२) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश हो कर **"हे जरे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन तथा बहुवचन में पूर्ववत्–**हे जरसौ, हे जरे। हे जरसः, हे जराः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

जरसम्, जराम् – जरा शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "जरा + अम्" इस स्थिति में **"जरा जरस् स्वरे वा"** (२१३) सूत्र से जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"जरसम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ करने पर **"जराम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरसा, जरया — जरा शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "जरा + आ" इस स्थिति में **"जरा जरः स्वरे वा"** (२१३) सूत्र से जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, "जरस् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"जरसा"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "जरे + आ" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर, "जरय् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"जरया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जराभ्याम् — जरा शब्द से तृतीया — चतुर्थी — पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"जराभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जराभिः — जरा शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "जरा + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"जराभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरसे, जरायै — जरा शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "जरा + ए" इस स्थिति में **"जरा जरस् स्वरे वा"** (२१३) सूत्र से जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, "जरस् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"जरसे"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङे के स्थान पर यै आदेश हो कर **"जरायै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जराभ्यः — जरा शब्द से चतुर्थी — पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "जरा + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"जराभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरसः, जरायाः — जरा शब्द से पंचमी — षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि—ङस् विभक्ति के आने पर, "जरा + अस्" इस स्थिति में **"जरा जरस् स्वरे वा"** (२१३) सूत्र से जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, "जरस् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"जरसः"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङसि—ङस् के स्थान पर यास् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"जरायाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरसोः, जरयोः – जरा शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "जरा + ओस्" इस स्थिति में **"जरा जरस् स्वरे वा"** (२१३) सूत्र से जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, "जरस् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"जरसोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "जरे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश हो कर "जरय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"जरयोस्"** इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"जरयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरसाम्, जराणाम् – जरा शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "जरा + आम्" इस स्थिति में **"जरा जरस् स्वरे वा"** (२१३) सूत्र से जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, "जरस् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"जरसाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "जरा + न् आम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो करने पर **"जराणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरसि, जरायाम् – जरा शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "जरा + इ" इस स्थिति में **"जरा जरस् स्वरे वा"** (२१३) सूत्र से जरा के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश कर, "जरस् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"जरसि"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"ङवन्ति यैयास्यास्याम्"** (२१४) सूत्र से ङि के स्थान पर याम् आदेश करने पर, **"जरायाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरासु – जरा शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"जरासु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

जरा शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जरा	जरसौ	जरसः
		जरे	जराः
सम्बोधन	हे जरे	हे जरसौ	हे जरसः
		हे जरे	हे जराः
द्वितीया	जरसम्	जरसौ	जरसः
	जराम्	जरे	जराः
तृतीया	जरसा	जराभ्याम्	जराभिः
	जरया		
चतुर्थी	जरसे	जराभ्याम्	जराभ्यः
	जरायै		
पंचमी	जरसः	जराभ्याम्	जराभ्यः
	जरायाः		
षष्ठी	जरसः	जरसोः	जरसाम्
	जरायाः	जरयोः	जराणाम्
सप्तमी	जरसि	जरसोः	जरासु
	जरायाम्	जरयोः	

अब अम्बा आदि शब्दों की सिद्धि करते हैं। अम्बा शब्द के रूप रम्भा शब्द के समान सिद्ध होते हैं। अम्बा और रम्भा शब्द के सम्बुद्धि में भिन्नता है।

अम्बा शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, अम्बा, अक्का, अल्ला और अत्ता शब्दों के सम्बोधन को ह्रस्व करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४०)विधिसूत्रम् – ह्रस्वो म्बार्थानाम्।।२१६।।

अम्बार्थानां द्विस्वराणां श्रद्धासञ्ज्ञकानां सम्बुद्धौ ह्रस्वो भवति। हे अम्ब। हे अक्क। हे अल्ल। हे अत्त। एवमादयो म्बार्थाः। अन्यत्र रम्भाशब्दवत्।

अर्थ – श्रद्धासञ्ज्ञक अम्बार्थ द्विस्वर के सम्बुद्धि को ह्रस्व होता है।

अर्थात् द्विस्वर से तात्पर्य दो स्वर वाले अम्बा, अक्का, अल्ला, अत्ता ये चार शब्द कहलाते हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"सम्बुद्धौ च"** (२१२) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

दो स्वर से अधिक स्वर वाले शब्दों में ह्रस्व आदेश नहीं होगा।

यथा – हे अम्बाडे, हे अम्बाले, हे अम्बिके इत्यादि।

अम्बार्थ–अम्बा, अक्का, अल्ला, अत्ता ये चार शब्द अम्बार्थ कहलाते हैं। इनकी सम्बुद्धि को ह्रस्व आदेश होता है।

हे अम्ब – अम्बा शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"ह्रस्वो म्बार्थानाम्"** (२१६) सूत्र से ह्रस्व आदेश कर, **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप हो कर **"हे अम्ब"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शेष विभक्तियों में रम्भाशब्दवत् प्रक्रिया जाननी चाहिये।

अम्बा शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	अम्बा	अम्बे	अम्बाः
सम्बोधन	हे अम्ब	हे अम्बे	हे अम्बाः
द्वितीया	अम्बाम्	अम्बे	अम्बाः
तृतीया	अम्बया	अम्बाभ्याम्	अम्बाभिः
चतुर्थी	अम्बायै	अम्बाभ्याम्	अम्बाभ्यः
पंचमी	अम्बायाः	अम्बाभ्याम्	अम्बाभ्यः
षष्ठी	अम्बायाः	अम्बयोः	अम्बानाम्
सप्तमी	अम्बायाम्	अम्बयोः	अम्बासु

अम्बाडा आदि शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर "अम्बाडा" शब्द को ह्रस्व का निषेध करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)निषेधसूत्रम् – न बहुस्वराणाम्।।२२०।।

बहुस्वराणामम्बार्थानां श्रद्धासञ्ज्ञकानां ह्रस्वो न भवति सम्बुद्धौ सौ परे। हे अम्बाडे। हे अम्बाले। हे अम्बिके। इत्याकारान्ताः। इकारान्तः स्त्रीलिङ्गो रुचि शब्दः। रुचिः। रुची। रुचयः। हे रुचे। हे रुची। हे रुचयः। रुचिम्। रुची। स्त्रीलिङ्गत्वात्सस्य नत्वाभावः। रुचीः। तृतीयैकवचने पि तस्मान्नत्वाभावः। रुच्या। रुचिभ्याम्। रुचिभिः। ङवत्सु।

अर्थ – श्रद्धासञ्ज्ञक अम्बार्थ बहुस्वर के सम्बुद्धि को ह्रस्व नहीं होता है।

"अम्बाडा" आदि शब्दों के रूप रम्भा शब्दवत् जानना चाहिये।

नोट – "कलाप–व्याकरण" में **"ह्रस्वो म्बार्थानाम्"** सूत्र की टीका में **"बहुस्वरत्वाड्–डलकवतां न स्यात्"** कहकर बहुस्वर वाले शब्दों का निषेध किया है।

।। इस प्रकार आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का विवेचन पूर्ण हुआ।।

अब इकारान्त स्त्रीलिंग में रुचि शब्द का विवेचन करते हैं।

रुचि शब्द इकारान्त होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से रुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा करने पर कहीं मुनि शब्दवत् कार्य होता है।

रुचि शब्द की सिद्धि में पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४९), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीय–षान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"औकारः पूर्वम्"** (१६२), **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३), **"सम्बुद्धौ च"** (१६४), **"अग्नेरमो कारः"** (१६५), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७), **"ङे"** (१६८), **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६९), **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१)।

रुचिः — रुचि शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "रुचि + स्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से रुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"रुचिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुची — रुचि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "रुचि + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से रुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से औकार के स्थान पर इकार आदेश कर, "रुचि + इ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"रुची"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचयः – रुचि शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "रुचि + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से रुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "रुचे + अस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"रुचयः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे रुचे — रुचि शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर "रुचि + स्" इस स्थिति में **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर, **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश करने पर **"हे रुचे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में – रुचि + औ = **हे रुची**। बहुवचन में रचि + जस् = **हे रुचयः** पूर्ववत् प्रयोग सिद्ध होते हैं।

रुचिम् — रुचि शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से रुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, "रुचि + अम्" इस स्थिति में **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"रुचिम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचीः – रुचि शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "रुचि + अस्" इस स्थिति में **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के अकार के स्थान पर इकार आदेश हो कर, (स्त्रीलिंग होने से सकार के स्थान पर नकार आदेश नहीं होगा।) "रुचि + इस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"रुचीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुच्या – रुचि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "रुचि + आ" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"रुच्या"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचिभ्याम् – रुचि शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, रुचि + भ्याम् = **"रुचिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचिभिः – रुचि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"रुचिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचि शब्द से ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्ति आने पर वैकल्पिक नदी सञ्ज्ञा करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८२)सञ्ज्ञासूत्रम् – ह्रस्वश्च ङवति।।२२१।।

स्त्र्याख्यावियुवौ स्थानिनौ च ह्रस्वश्च ङवति परे नदी सञ्ज्ञौ वा भवतः। यत्र नदी सञ्ज्ञा तत्र।

अर्थ – ङे, ङसि, ङस्, ङि विभक्तियाँ परे होने पर स्त्रीलिंग में कथित ईकार तथा ऊकार जो कि इय्, उव् स्थानिनि से युक्त हों और ह्रस्व इकार तथा उकार की विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है।

अर्थात् जिन स्त्रीलिंग ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से इय् और उव् आदेश होगा उन ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की तथा ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त शब्दों की विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है। जहाँ नदी सञ्ज्ञा होगी वहाँ अग्रिम सूत्र से कार्य होगा।

रुचि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति आने पर **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा वैकल्पिक नदी सञ्ज्ञा कर "ङे" आदि के स्थान पर ऐ, आस्, आस, आम् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४५)विधिसूत्रम् – नद्या ऐआसासाम्।।२२२।।

नदीसञ्ज्ञकात्पराणि ङवन्ति वचनानि ऐ आस् आस् आम् भवन्ति यथासङ्ख्यम्। नदीसञ्ज्ञाभावे मुनिशब्दवत्। रुच्यै, रुचये। रुचिभ्याम्। रुचिभ्यः। रुच्याः, रुचेः। रुचिभ्याम्। रुचिभ्यः। रुच्याः, रुचेः। रुच्योः। रुचीनाम्। रुच्याम्, रुचौ। रुच्योः। रुचिषु। एवं बुद्धि–वृद्धि–कीर्ति–कृति–युक्ति–श्रेणि–पङ्क्ति–प्रभृतयः। द्विशब्दस्य तु भेदः। त्यदादित्वात् अ आदेश आ प्रत्ययश्च। द्वे। हे द्वे। द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः। त्रिशब्दस्य तु भेदः।

अर्थ – नदीसञ्ज्ञा से परे ङे, ङसि, ङस्, ङि इनके स्थान पर क्रमशः ऐ, आस्, आस्, आम् आदेश होते हैं।

अर्थात् – नदीसञ्ज्ञा से परे, ङे के स्थान पर ऐ, ङसि के स्थान पर आस्, ङस् के स्थान पर आस् और ङि के स्थान पर आम् आदेश क्रमशः होते हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"स्त्री पदीवत्"** (२३०) सूत्र की तथा **"स्त्र्याख्यावियुवौ वामि"** (२३३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

नदी सञ्ज्ञा के अभाव में मुनिशब्दवत् कार्य होता है।

रुच्यै, रुचये – रुचि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "रुचि + ङे" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति होने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङे के स्थान पर ऐ आदेश कर, "रुचि + ऐ" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"रुच्यै"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञा कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "रुचे + ए" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश हो कर **"रुचये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचिभ्यः – रुचि शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"रुचिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुच्याः, रुचेः – रुचि शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "रुचि + ङे" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति होने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर आस् आदेश कर, "रुचि + आस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"रुच्याः"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञा कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश तथा अस् के अकार का लोप कर, "रुचेस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"रुचेः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुच्योः – रुचि शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "रुचि + ओस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर "रुच्य् + ओस्" इस स्थिति **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर, **"रुच्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचीनाम् – रुचि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से "नु" का आगम कर, "रुचि + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"रुचीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुच्याम्, रुचौ – रुचि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "रुचि + ङि" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति होने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङि के स्थान पर आम् आदेश कर, "रुचि + आम्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर, **"रुच्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञा कर, **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से इकार तथा ङि के स्थान पर, औकार आदेश हो कर, **"रुचौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचिषु – रुचि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"रुचिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

रुचि शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	रुचिः	रुची	रुचयः
सम्बोधन	हे रुचे	हे रुची	हे रुचयः
द्वितीया	रुचिम्	रुची	रुचीः
तृतीया	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभिः
चतुर्थी	रुच्यै, रुचये	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
पंचमी	रुच्याः, रुचेः	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
षष्ठी	रुच्याः, रुचेः	रुच्योः	रुचीनाम्
सप्तमी	रुच्याम्, रुचौ	रुच्योः	रुचिषु

इसी प्रकार – बुद्धि, वृद्धि, कीर्ति, कान्ति, कृति, युक्ति, श्रेणि, पङ्क्ति आदि के रूप जानना चाहिये।

द्वि शब्द में भेद है। द्वि शब्द के रूप द्विवचन में ही चलते हैं। द्वि शब्द त्यादि के अन्तर्गत आने से **"त्यदादीनाम विभक्तौ" (**१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश कर, **"स्त्रियामादा"** (२१५) सूत्र से आ प्रत्यय कर, **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर "द्वा" शब्द बनने पर विभक्ति सम्बन्धी कार्य करना चाहिये।

द्वि शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **इवर्णे ए"** (२७), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२), **"औरिम्"** (२११), **"अवर्ण "टौसोरे"** (२१३), **"स्त्रियामादा"** (२१५)।

द्वे – द्वि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "द्वि + औ" इस स्थिति में **"त्यदादीनाम विभक्तौ" (**१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश कर, **"स्त्रियामादा"** (२१५) सूत्र से आ प्रत्यय हो कर **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर "द्वा" शब्द बना। द्वा शब्द से औ विभक्ति के आने पर, **"औरिम्"** (२११) सूत्र से औकार के स्थान पर "इकार" आदेश हो कर "द्वा + इ" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर तथा इकार का लोप हो कर **"द्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वाभ्याम् – द्वि शब्द से तृतीया–चतुर्थी–पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, "द्वि + भ्याम्" इस स्थिति में **"त्यदादीनाम विभक्तौ" (**१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश कर, **"स्त्रियामादा"** (२१५) सूत्र से आ प्रत्यय कर, "द्व + आ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर "द्वा" शब्द बना। द्वा शब्द से भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"द्वाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वयोः – द्वि शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "द्वि + ओस्" इस स्थिति में **"त्यदादीनाम विभक्तौ" (**१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश कर, **"स्त्रियामादा"** (२१५) सूत्र से आ प्रत्यय कर, **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर "द्वा" शब्द बना। द्वा शब्द से ओस् विभक्ति के आने पर "द्वा + ओस्" इस स्थिति में **"टौसोरे"** (२१३) सूत्र से आकार के स्थान पर एकार आदेश कर "द्वे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर "द्वय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"द्वयोस्"** इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"द्वयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विशब्द की रूपमाला यथा –

द्वे। हे द्वे। द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः।

त्रि शब्द में भेद है। त्रि शब्द बहुवचनान्त है। त्रि शब्द इकारान्त होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति होती है। परन्तु अग्रिम सूत्र द्वारा त्रि शब्द को तिसृ आदेश हो कर प्रयोग सिद्धि होंगे।

त्रि शब्द से प्रथमा आदि विभक्ति के बहुवचन में जस् आदि विभक्ति के आने पर स्त्रीलिंग की विवक्षा में त्रि चतुर् शब्द के स्थान पर क्रमशः तिसृ और चतसृ आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१६७)विधिसूत्रम् – त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ।।२२३।।

स्त्रियां वर्तमानयोस्त्रिचत्वार्शब्दयोः तिसृचतसृ आदेशौ भवतः विभक्तौ परतः। घुटि चेत्यरि प्राप्ते बाधकबाधनार्थो यं योगः।

अर्थ – विभक्ति परे होने पर स्त्रीलिंग में वर्तमान त्रि और चत्वार् शब्द के स्थान पर तिसृ और चतसृ आदेश होते हैं।

अर्थात् विभक्ति परे होने पर स्त्रीलिंग में कथित त्रि शब्द के स्थान पर तिसृ तथा चतुर् शब्द के स्थान पर चतसृ आदेश होता है।

त्रि शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर उपर्युक्त सूत्र से त्रि के स्थान पर तिसृ आदेश होने पर **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से अर् प्राप्त होने पर **"बाधकबाधनार्थो यं योगः"** इस परिभाषा के कारण अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

तिसृ शब्द से जस् विभक्ति के आने पर, ऋकार के स्थान पर रकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१६८)विधिसूत्रम् – तौ रं स्वरे।।२२४।।

तौ तिसृचतसृ आदेशौ रं प्राप्नुतो विभक्तौ स्वरे परे। तिस्रः। हे तिस्रः। तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसृभ्यः।

अर्थ – स्वर वाली विभक्ति परे होने पर तिसृ – चतसृ आदेश के "ऋकार" के स्थान पर रकार आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ"** (२२३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

तिस्रः – त्रि शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "त्रि + अस्" इस स्थिति में **"त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ"** (२२३) सूत्र से "त्रि" के स्थान पर "तिसृ" आदेश कर, "तिसृ + अस्" इस स्थिति में **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर, अर् की प्राप्ति होने पर **"बाधकबाधनार्थो यं योगः"** इस परिभाषा के कारण **"तौ रं स्वरे"** (२२४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, "तिस्र् + अस्" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के कारण रेफ, सकार के नीचे बेठेगी। तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र के कारण "तिस्रस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर, **"तिस्रः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

तिस्रः – त्रि शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "त्रि + अस्" इस स्थिति में **"त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ"** (२२३) सूत्र से "त्रि" के स्थान पर "तिसृ" आदेश कर, "तिसृ + अस्" इस स्थिति में **"तौ रं स्वरे"** (२२४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, "तिस्र् + अस्" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के कारण रेफ, सकार के नीचे बेठेगी। तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र के कारण "तिस्रस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर, **"तिस्रः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

तिसृभिः – त्रि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "त्रि + भिस्" इस स्थिति में **"त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ"** (२२३) सूत्र से "त्रि" के स्थान पर "तिसृ" आदेश कर, "तिसृ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर, **"तिसृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

तिसृभ्यः – त्रि शब्द से चतुर्थी –पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "त्रि + भ्यस्" इस स्थिति में **"त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ"** (२२३) सूत्र से "त्रि" के स्थान पर "तिसृ" आदेश कर, "तिसृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर, **"तिसृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

तिसृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति का निषेध करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१६६)निषेधसूत्रम् – न नामि दीर्घम्।।२२५।।

तौ तिसृचतसृ आदेशौ दीर्घत्वं न प्राप्नुवतः सनावामि परे। तिसृणाम्। तिसृषु। इति इकारान्तः। ईकारान्तः स्त्रीलिङ्गो नदीशब्दः।

अर्थ – नु परक आम् परे होने पर तिसृ – चतसृ आदेश को दीर्घ नहीं होता है।

अर्थात् त्रिशब्द के स्थान पर जो तिसृ तथा चत्वार् शब्द के स्थान पर जो चतसृ आदेश किया हो उन तिसृ और चतसृ शब्दों को आम् परे होने पर दीर्घ नहीं होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ"** (२२३) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

तिसृणाम् – त्रि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "त्रि + आम् इस स्थिति में **"त्रिचतुरोः" स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ"** (२२३) सूत्र से त्रि के स्थान पर, तिसृ आदेश कर, "तिसृ + आम्" इस स्थिति में **"तौ रं स्वरे"** (२२४) तथा **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र की युगपत् प्राप्ति होने पर **"सामान्यविशेषयोर्विशेषविधिर्बलवान्"** इस परिभाषा के माध्यम से **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से विशेष विधि नु का आगम हो कर, "तिसृ + नाम्" इस स्थिति में, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति का **"न नामि दीर्घम्"** (२२५) सूत्र से निषेध हो कर **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"तिसृणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

तिसृषु – त्रि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"तिसृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रिशब्द की रूपमाला यथा–

तिस्रः , तिस्रः , तिसृभिः , तिसृभ्यः , तिसृभ्यः , तिसृणाम् , तिसृषु।

।। इस प्रकार इकारान्त स्त्रीलिंग का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब स्त्रीलिंग में ईकारान्त नदी शब्द का विवेचन करते हैं।

नदी शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२)।

नदी शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर स्त्रीलिंग में कथित ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की "नदी" सञ्ज्ञा करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६)सञ्ज्ञासूत्रम् – ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी।।२२६।।

स्त्र्याख्यावीदूतौ नदी सञ्ज्ञौ भवतः।

अर्थ – स्त्रीलिंग में कथित ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द की नदी सञ्ज्ञा होती है।

"ह्रस्वश्च ङवति" (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है। परन्तु यहाँ पर नित्य नदी सञ्ज्ञा होती है।

नोट– "कलाप–व्याकरण" में **"ईदूतौ"** के स्थान पर **"ईदूत्"** पाठ है।

नदी शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, सि विभक्ति का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४८)विधिसूत्रम् – ईकारान्तात्सिः ।।२२७।।

नदीसञ्ज्ञकादीकारान्तात्परः सिर्लोपमापद्यते। नदीसञ्ज्ञादन्तग्रहणाधिक्यान्नदाद्यञ्चीत्यादिना विहितादीकारात्परः सिर्लोपमापद्यते। नदी। नद्यौ। नद्यः।

अर्थ – नदी सञ्ज्ञक ईकारान्त से परे सि का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

नदीसञ्ज्ञक अन्त ग्रहण के अधिकार से नदाद्यञ्ची इत्यादि से कथित ईकार से परे सि का लोप होता है। अर्थात् – **"नदाद्यञ्चवाह्व्यंसन्तृसखिनान्तेभ्य ई"** (३७१) सूत्र से स्त्रीलिंग में ई प्रत्यय हो कर **"नदी"** आदि शब्द बनने पर, प्रथमा विभक्ति सम्बन्धी सि का लोप होता है।

नदी – नदी शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "नदी + स्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"ईकारान्तात्सिः"** (२२७) सूत्र से स् का लोप हो कर **"नदी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नद्यौ – नदी शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "नदी + औ" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "नद्य् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"नद्यौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नद्यः – नदी शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "नदी + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "नद्य् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"नद्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदी शब्द से सम्बोधन के एकवचन में सि विभक्ति आने पर, नदी शब्द को ह्रस्व करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४६)विधिसूत्रम् – सम्बुद्धौ ह्रस्वः।।२२८।।

नद्याः सम्बुद्धौ ह्रस्वो भवति। हे नदि। हे नद्यौ। हे नद्यः।

अर्थ – सम्बुद्धि परे होने पर नदीसञ्ज्ञक को ह्रस्व होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

हे नदि – नदी शब्द से सम्बुद्धि में सि विभक्ति के आने पर, "नदी + स्" इस स्थिति मे **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर तथा **"सम्बुद्धौ ह्रस्वः"** (२२८) सूत्र से ईकार को ह्रस्व इकार आदेश हो कर **"हे नदि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका– नदी संज्ञा को ह्रस्व होता है ऐसा क्यों कहा ?
समाधान – अगर नदी सञ्ज्ञा को ह्रस्व नहीं कहते तो **"ग्रामणी"** शब्द को भी ह्रस्व हो जाता है।

द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् – **हे नद्यौ, हे नद्यः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

नदी शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन की विवक्षा में अम् विभक्ति के आने पर अम् तथा शस् के अकार का लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४७)विधिसूत्रम् – अम्शसोरादिर्लोपम्।।२२६।।

नदीसञ्ज्ञकात्परयोः अम्शसोरादिर्लोपमापद्यते। नदीम्। नद्यौ। नदीः। नद्या। नदीभ्याम्। नदीभिः। ङवत्सु। नद्या ऐआसासामित्यादयः"। नद्यै। नदीभ्याम्। नदीभ्यः। नद्याः। नदीभ्याम्। नदीभ्यः। नद्याः। नद्योः। नदीनाम्। नद्याम्। नद्योः। नदीषु। एवं गौरी–गान्धारी–वाणी–भारती–गायत्री–सावित्री–सरस्वती–गोमती–गोमिनी–भामिनी–क्रोष्ट्री–महिषी–मही–प्लवी–सौरभेयी–प्रभृतयः।।

अर्थ – नदीसञ्ज्ञक से परे अम् और शस् के अकार का लोप होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात् नदी सञ्ज्ञा से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् तथा शस् विभक्ति के आने पर, अम् के अकार का तथा शस् के अकार का लोप होता है। अम् के अकार का लोप हो कर **"नदीम्"** तथा शस् के अकार का लोप होने पर **"नदीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदीम् – नदी शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "नदी + अम्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा कर, **"अम्–शसोरादिर्लोपम्"** (२२६) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"नदीम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदीः – नदी शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "नदी + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा कर, **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६) सूत्र से अम् के अकार का लोप कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"नदीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नद्या – नदी शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर– "नदी + आ" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "नद् य् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"नद्या"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदीभ्याम् – नदी शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"नदीभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदीभिः – नदी शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"नदीभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नद्यै – नदी शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "नदी + ङे" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङे के स्थान पर ऐ आदेश कर, "नदी + ऐ" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर, "नद् य् + ऐ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"नद्यै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदीभ्यः – नदी शब्द से चतुर्थी – पंचमी तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"नदीभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नद्याः – नदी शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "नदी + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर आस् आदेश कर, "नदी + आस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "नद् य् + आस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"नद्याः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नद्योः – नदी शब्द से षष्ठी सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "नदी + ओस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदी सञ्ज्ञा कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "नद् य् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"नद्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदीनाम् – नदी शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "नदी + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम करने पर करने पर **"नदीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नद्याम् – नदी शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "नदी + इ" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङि के स्थान पर आम् आदेश कर, "नदी + आम्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "नद् य् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"नद्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदीषु – नदी शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "नदी + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"नदीषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नदी शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
सम्बोधन	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पंचमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु

इसी प्रकार गौरी, गान्धारी, वाणी, भारती, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, गोमती, गोमिनी, भामिनी, क्रोष्ट्री, महिषी, मही, प्लवी, सौरभेयी आदि शब्दों के रूप जानना चाहिये। इनके अतिरिक्त अन्य शब्द भी जानना – जैसे

महीं मन्दाकिनी गौरी, सखी भागीरथी नदी।
पुरी नारी पुरन्ध्री च, सैरन्ध्री सुरसुन्दरी ।।९।।

मृगी वनचरी देवी, शर्वरी वरवर्णिनी।
सिंही हैमवती धात्री, धरित्रीत्येवमादयः ।।१०।।

श्लोकार्थ –मही, मन्दाकिनी, गौरी, सखी, भागीरथी, नदी, पुरी, नारी, पुरन्ध्री, सैरन्ध्री, सुरसुन्दरी, मृगी, वनचरी, देवी, शर्वरी, वरवर्णिनी, सिंही, हैमवती, धात्री, धरित्री, आदि शब्द भी जानना चाहिये।

स्त्री शब्द में भेद है। "स् त् र् ई" यहाँ स्त्री संयोग से सहित है तथा एकस्वरान्त है। औ, जस् आदि स्वरान्त विभक्तियों के आने पर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश होता है। अतः "ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्ति के आने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है। परन्तु स्त्री शब्द में अग्रिम सूत्र द्वारा सभी विभक्तियों में नदी सञ्ज्ञा होती है।

स्त्री शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्ग–पवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१), **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२), **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६)।

स्त्री शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, स्त्री शब्द की नदी सञ्ज्ञा करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८०)सञ्ज्ञासूत्रम् – स्त्री नदीवत्।।२३०।।

स्त्रीशब्दो नदीवद् भवति विभक्तौ परतः। स्त्रीशब्दस्य पृथङ्नदीसञ्ज्ञाकरणं किमर्थं ह्रस्वश्च ङवति वा इति सूत्रोक्तविकल्पनिषेधार्थम्। स्त्री।

अर्थ – विभक्ति परे होने पर स्त्रीशब्द नदीवत् होता है।

अर्थात्– स्त्री शब्द की भी नदी सञ्ज्ञा होती है।

शंका – स्त्री शब्द की अलग से नदी सञ्ज्ञा क्यों कही ?

समाधान – **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र से प्राप्त विकल्प का निषेध करने के लिये अलग से नदी सञ्ज्ञा कही है।

अर्थात् **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र से मात्र "ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्तियों के आने पर ही विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है। परन्तु यहाँ सभी विभक्तियों के आने पर स्त्री शब्द की नदी सञ्ज्ञा होती है।

स्त्री – स्त्री शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "स्त्री + सि" यहाँ नदीसञ्ज्ञा के समान कार्य होने से **ईकारान्तात्सिः"** (२२७) सूत्र से सि का लोप हो कर **"स्त्री"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्री शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर "स्त्री" शब्द को धातुवत् करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३८)विधिसूत्रम् – स्त्री च।।२३१।।

स्त्रीशब्दो धातुवद्भवति विभक्तिस्वरे परे। स्त्रियौ। स्त्रियः। हे स्त्रि। हे। स्त्रियौ। हे स्त्रियः।

अर्थ – स्वर वाली विभक्ति परे होने पर स्त्री शब्द धातुवत् होता है।

औ, जस्, अम्, औ, शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि और ओस् ये स्वर वाली विभक्तियाँ कहलाती हैं।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"भ्रूर्धातुवत्"** (२३५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

स्त्रीशब्द को धातुवत् कहने से **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश हो जायेगा।

स्त्रियौ – स्त्री शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को धातुवत् होने से, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश हो कर **"स्त्रियौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्रियः – स्त्री शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को धातुवत् होने से, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "स्त्रिय् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"स्त्रियः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्री शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, अम् और शस् को वैकल्पिक धातुवत् करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३६)विधिसूत्रम् – वाम्शसोः।।२३२।।

स्त्रीशब्दो वा धातुवद् भवति अम्शसोः परतः। स्त्रीम्, स्त्रियम्। स्त्रियौ। स्त्रीः, स्त्रियः। स्त्रिया। स्त्रीभ्याम्। स्त्रीभिः। स्त्रियै। स्त्रीभ्याम्। स्त्रीभ्यः। स्त्रियाः। स्त्रीभ्याम्। स्त्रीभ्यः। स्त्रियाः। स्त्रियोः। स्त्रीणाम्। स्त्रियाम्। स्त्रियोः। स्त्रीषु।

श्रीशब्दस्य तु भेदः। श्रीः। ईदूतोरियुवौ स्वरे इति स्वरादावियादेशः। श्रियौ। श्रियः। अनित्यनदीत्वात्सम्बुद्धौ ह्रस्वो नास्ति। हे श्रीः। हे श्रियौ। हे श्रियः। श्रियम्। श्रियौ। श्रियः। श्रिया। श्रीभ्याम्। श्रीभिः। ङवत्सु–नद्या ऐ आसासाम्। पश्चादीदूतोरियुवौ स्वरे। नदीपक्षे ऐ आसादयः। श्रियै, श्रिये। श्रीभ्याम्। श्रीभ्यः। श्रियाः, श्रियः। श्रीभ्याम्। श्रीभ्यः। श्रियाः, श्रियः। श्रियोः। आमि।

अर्थ – अम् और शस् परे होने पर स्त्री शब्द को विकल्प से धातुवत् होता है।

स्त्री शब्द को **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से नित्य धातुवत् होता है। परन्तु **"वाम्शसोः"** (२३२) सूत्र द्वारा वैकल्पिक धातुवत् होता है। अतः धातुवत् पक्ष में **"स्त्रियम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। धातुवत् के अभाव में **"स्त्रीम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"भ्रूर्धातुवत्"** (२३५) सूत्र की तथा **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात् धातुवत् कहने से स्त्री शब्द को **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश होगा।

स्त्रियम्, स्त्रीम् – स्त्री शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "स्त्री + अम्" इस स्थिति में **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र से स्त्री शब्द को नदीवत् तथा **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य धातुवत् की प्राप्ति थी परन्तु **"वाम्शसोः"** (२३२) सूत्र द्वारा वैकल्पिक धातुवत् होने से, धातुपक्ष में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "स्त्रिय् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्त्रियम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। धातुवत् के अभाव में **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६) सूत्र से अम् के अकार का लोप कर, **"स्त्रीम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार – **"स्त्रियम्"** तथा **"स्त्रीम्"** दो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

स्त्रियः, स्त्रीः – स्त्री शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "स्त्री + अस्" इस स्थिति में **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र से स्त्री शब्द को नदीवत् तथा **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य धातुवत् की प्राप्ति थी परन्तु **"वाम्शसोः"** (२३२) सूत्र द्वारा वैकल्पिक धातुवत् होने से, धातुपक्ष में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "स्त्रिय् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"स्त्रियः"** प्रयोग सिद्ध होता है। धातुवत् के अभाव में **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६) सूत्र से अस् के अकार का लोप कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"स्त्रीः"** प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार – **"स्त्रियः"** तथा **"स्त्रीः"** दो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

स्त्रिया – स्त्री शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "स्त्री + आ" इस स्थिति में **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र से स्त्री शब्द को नदीवत् कहने से **"वाम्शसोः"** (२३२) सूत्र द्वारा वैकल्पिक धातुवत् होने से, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "स्त्रिय् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्त्रिया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्रीभिः – स्त्री शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, "स्त्री + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"स्त्रीभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्रियै – स्त्री शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "स्त्री + ए" इस स्थिति में **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा स्त्री शब्द की विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है। परन्तु **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य नदीवत् कहने से तथा **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य धातुवत् कहने से, **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङे के स्थान पर "ऐ" आदेश कर, "स्त्री + ऐ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "स्त्रिय् + ऐ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्त्रियै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्रीभ्यः – स्त्री शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "स्त्री + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"स्त्रीभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्रियाः – स्त्री शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "स्त्री + अस्" इस स्थिति में **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा स्त्री शब्द की विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है। परन्तु **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य नदीवत् कहने से तथा **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य धातुवत् कहने से, **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर "आस्" आदेश कर, "स्त्री + आस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "स्त्रिय् + आस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"स्त्रियाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्रियोः – स्त्री शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "स्त्री + ओस्" इस स्थिति में **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य नदीवत् कहने से तथा **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य धातुवत् कहने से, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "स्त्रिय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"स्त्रियोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्रीणाम् – स्त्री शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "स्त्री + आम्" इस स्थिति में **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य नदीवत् कहने से तथा **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य धातुवत् कहने से, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश की तथा **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र

से "नु" के आगम की युगपत् प्राप्ति होने पर, **"सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान् इति न्यायात्"** इस परिभाषा के माध्यम से **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से "नु" का आगम विशेष है, अतः **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से "नु" का आगम कर "स्त्री + न् आम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"स्त्रीणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका – स्त्री शब्द से आम् विभक्ति के आने पर, धातुवत् कार्य क्यों नहीं किया?

समाधान – धातुवत् कार्य सामान्य कथन है, क्योंकि औ, जस् आदि स्वर वाली विभक्तियों में धातुवत् कार्य होता है। परन्तु नु का आगम विशेष है, वह केवल आम् विभक्ति के होने पर ही होता है। तथा नु का आगम, आम् का अवयव हो जाने से धातुवत् को स्वर न दिखकर "नाम्" व्यञ्जन नजर आ रहा है। और व्यञ्जन के होने पर धातुवत् कार्य की कोई उपयोगिता नहीं है।

स्त्रियाम् – स्त्री शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "स्त्री + इ" इस स्थिति में **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा स्त्री शब्द की विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है। परन्तु **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य नदीवत् कहने से तथा **"स्त्री च"** (२३१) सूत्र से स्त्री शब्द को नित्य धातुवत् कहने से, **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङि के स्थान पर "आम्" आदेश कर, "स्त्री + आम्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "स्त्रिय् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्त्रियाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्रीषु – स्त्री शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "स्त्री + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"स्त्रीषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्त्री शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
सम्बोधन	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रीम्, स्त्रियम्	स्त्रियौ	स्त्रीः, स्त्रियः

तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पंचमी	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
षष्ठी	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु

श्री (लक्ष्मी, शोभा) शब्द में भेद है। श्री शब्द उणादि प्रकरण के माध्यम से सिद्ध होता है। नदी शब्द की तरह स्त्रीलिंग की तरह ईकार प्रत्यय हो कर सिद्ध नहीं होता है।

स्त्री शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्ग–पवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१), **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२), **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६)।

श्रीः – श्री शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "श्री + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"श्रीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रियौ – श्री शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "श्री + औ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर, इय् आदेश कर, "श्रिय् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"श्रियौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रियः – श्री शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "श्री + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, "श्रिय् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"श्रियः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

"ह्रस्वश्च ङवति" (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदीसञ्ज्ञा होने से सम्बुद्धि में ह्रस्व नहीं होगा। सम्बुद्धि में पूर्ववत् – **हे श्रीः, हे श्रियौ, हे श्रियः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

श्रियम् – श्री शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "श्री + अम्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर, इय् आदेश कर, "श्रिय् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"श्रियम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रिया – श्री शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "श्री + आ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर, इय् आदेश कर, "श्रिय् + आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"श्रिया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रीभ्याम् – श्री शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"श्रीभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रीभिः – श्री शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"श्रीभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रियै, श्रिये – श्री शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदीसञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र द्वारा ङे विभक्ति के स्थान पर, ऐ आदेश कर, "श्री + ऐ" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर, इय् आदेश कर, "श्रिय् + ऐ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"श्रियै"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदीसञ्ज्ञा के अभाव में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश करने पर **"श्रिये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रियाः, श्रियः – श्री शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदीसञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र द्वारा ङसि–ङस् विभक्ति के स्थान पर, आस् आदेश कर, "श्री + आस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर, इय् आदेश

कर, "श्रिय् + आस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"श्रियाः"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदीसञ्ज्ञा के अभाव में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"श्रियः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रियोः – श्री शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "श्री + ओस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर, इय् आदेश कर, "श्रिय् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"श्रियोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्री शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर वैकल्पिक नदी सञ्ज्ञा करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८१)सञ्ज्ञासूत्रम् – स्त्र्याख्यावियुवौ वामि।।२३३।।

स्त्र्याख्यावियुवस्थानिनौ आमि परे वा नदी सञ्ज्ञो भवतः। सिद्धे सत्यारम्भो नियमाय। किं नदीवत्कार्यम् ? आमि च नुः इति नुरागमः। अन्यत्र "ईदूतोरियुवौ स्वरे" इति इय् उव्। श्रीणाम् श्रियाम्। श्रियाम् श्रियि। श्रियोः। श्रीषु। लक्ष्मीशब्दस्य तु भेदः। लक्षदर्शनाङ्कनयोः।

अर्थ – आम् परे होने पर स्त्रीलिंग में कथित इय् उव् स्थानिनि से युक्त की विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होती है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"स्त्री नदीवत्"** (२३०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

कार्य के सिद्ध होने पर पुनः कथन नियम के लिये होता है।

शंका – नदीवत् कार्य क्यों कहा ?

समाधान – "आमि च नुः" (१४७) सूत्र से नु का आगम करने के लिये नदीवत् कार्य कहा है। जहाँ नु का आगम नहीं होगा वहाँ **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से इय् आदेश होगा।

श्रीणाम्, श्रियाम् – श्री शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "श्री + आम्" इस स्थिति में **"स्त्र्याख्यावियुवौ वामि"** (२३३) सूत्र द्वारा वैकल्पिक नदी सञ्ज्ञा होने पर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "श्री + नाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"श्रीणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश करने पर **"श्रियाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रियाम्, श्रियि – श्री शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदीसञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र द्वारा ङि विभक्ति के स्थान पर, आम् आदेश कर "श्री + आम्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर, इय् आदेश कर, "श्रिय् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"श्रियाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ईकार के स्थान पर इय् आदेश कर, **"श्रियि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रीषु – श्री शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"श्रीषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

श्री शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
सम्बोधन	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पंचमी	श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी	श्रियाः, श्रियः	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
सप्तमी	श्रियाम्, श्रियि	श्रियोः	श्रीषु

लक्ष्मी शब्द में भेद है। लक्ष धातु (दर्शन = देखना, और अंक = चिह्न) से लक्ष्मी शब्द निष्पन्न होता है।

लक्ष्मी शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्ग–पवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६), **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१), **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२), **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६)।

लक्ष धातु से ई प्रत्यय तथा अकार के स्थान पर मकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)विधिसूत्रम् – लक्षेरीमो न्तश्च।।२३४।।

लक्षधातोरीप्रत्ययो भवति मो न्तश्च। ईकारो न्ते यस्य लिङ्गस्येति वचनात् ईकारान्तात्सिरिति सेर्लोपो न भवति।

अर्थ – लक्ष धातु से ई प्रत्यय तथा अन्त में मकार आदेश होता है।

अर्थात् – लक्ष धातु के अकार के स्थान पर म् आदेश तथा ई प्रत्यय होता है।

यथा – लक्ष = लक्ष्म् ई = लक्ष्मी शब्द बन जाता है। जिस लिंग के अन्त में ईकार है, इस प्रकार के ईकारान्त वचन से सि विभक्ति आने पर **"ईकारान्तात्सिः"** (२२७) सूत्र से सि का लोप नहीं होता है। जिन ईकारान्त शब्दों से सि का लोप नहीं होता वे शब्द इस प्रकार हैं –

अवी–लक्ष्मीतरी–तन्त्री, ह्री धी श्रीणामुणादितः।
अपि स्त्रीलिङ्गजातीनां सिर्लोपो न कदाचन।।११।।

श्लोकार्थ – अवी, लक्ष्मी, तरी, तन्त्री, ह्री, धी, श्री ये शब्द उणादि प्रकरण से सिद्ध होते हैं। यद्यपि ये शब्द स्त्रीलिंग जाति के हैं फिर भी इनसे सि का लोप नहीं होता है।

लक्ष्मीः। लक्ष्म्यौ। लक्ष्म्यः। अन्यत्र नदीशब्दवत्। इति ईकारान्ताः।

उकारान्ताः स्त्रीलिङ्गश्चञ्चुशब्दः। स च रुचिशब्दवत्। विशेषस्तु उत ओत्वम् अवादेशश्च। चञ्चुः। चञ्चू। चञ्चवः। हे चञ्चो। हे चञ्चू। हे चञ्चवः। चञ्चुम्। चञ्चू। चञ्चूः। चञ्च्वा। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभिः। ह्रस्वश्च ङवतीति वा नदीवद्भावादैआसादयः। पक्षे भानुशब्दवत्। चञ्च्वै, चञ्चवे। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभ्यः। चञ्च्वाः, चञ्चोः। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभ्यः। चञ्च्वाः, चञ्चोः। चञ्च्वोः। चञ्चूनाम्। चञ्च्वाम्, चञ्चौ। चञ्च्वोः। चञ्चुषु। एवं उडु–तनु–प्रियङ्गु–स्नायु–ऊरु–करेणु–धेनु–प्रभृतयः। इत्युकारान्ताः।

ऊकारान्तः स्त्रीलिङ्गो वधूशब्दः। सौ– अनीकारान्तत्वात् ईकारान्तात्सिरिति सेर्लोपो न भवति। वधूः। वध्वौ। वध्वः। सम्बुद्धौ ह्रस्वः। हे वधु। हे वध्वौ। हे वध्वः। अन्यत्र नदीवत्। एवं अलाबू–कच्छू–यवागू– चमू–तण्डू–कमण्डलू–कद्रू–कण्डू–कासू–प्रभृतयः। भ्रूशब्दस्य तु भेदः। सौ – भ्रूः।

लक्ष्मी शब्द के रूप नदी शब्द के सदृश चलेंगे। किन्तु प्रथमा विभक्ति के "सि" विभक्ति का लोप नहीं होगा।

लक्ष दर्शनाङ्कनयोः धातु से **"लक्षेरीमो न्तश्च"** (२३४) सूत्र से ई प्रत्यय और अन्त को मकार आदेश करने पर लक्ष्म् ई = **"लक्ष्मी"** शब्द बना है। यद्यपि **"लक्ष्मी"** शब्द ईकारान्त है और उसकी **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा भी होती है, परन्तु स्त्रीलिंग सम्बन्धि ईकारान्त प्रत्यय नहीं होने से **"ईकारान्तात्सिः"** (२२७) सूत्र से सि विभक्ति का लोप नहीं होगा।

लक्ष्मीः – लक्ष्मी शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"लक्ष्मीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्म्यौ – लक्ष्मी शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + औ" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर, "लक्ष्म्य् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"लक्ष्म्यौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्म्यः — लक्ष्मी शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर, "लक्ष्म्य् + अस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"लक्ष्म्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे लक्ष्मि — लक्ष्मी शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + स्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"सम्बुद्धौ ह्रस्वः"** (२२८) सूत्र से लक्ष्मी शब्द के ईकार को ह्रस्व इकार कर "लक्ष्मि + स्" इस स्थिति में तथा **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि विभक्ति का लोप करने पर **"हे लक्ष्मि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"हे लक्ष्म्यौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर, **"हे लक्ष्म्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्मीम् — लक्ष्मी शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + अम्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदी सञ्ज्ञा कर, **"अम्शसोरादिर्लोपम"** (२२९) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"लक्ष्मीम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्मीः — लक्ष्मी शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदी सञ्ज्ञा कर, **"अम्शसोरादिर्लोपम"** (२२९) सूत्र से शस् के अकार का लोप कर, "लक्ष्मी + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"लक्ष्मीः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्म्या — लक्ष्मी शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में "टा" विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + आ" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदी सञ्ज्ञा कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश हो कर **"लक्ष्म्या"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्मीभ्याम् — लक्ष्मी शब्द से तृतीया — चतुर्थी — पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"लक्ष्मीभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्मीभिः – लक्ष्मी शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"लक्ष्मीभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्म्यै – लक्ष्मी शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में "ङे" विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + ए" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से "ङे" के स्थान पर "ऐ" आदेश कर, "लक्ष्मी + ऐ" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, यकार आदेश कर, "लक्ष्म्य् + ऐ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"लक्ष्म्यै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्मीभ्यः – लक्ष्मी शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"लक्ष्मीभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्म्याः – लक्ष्मी शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर आस् आदेश कर, "लक्ष्मी + आस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, यकार आदेश कर, "लक्ष्म्य् + आस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"लक्ष्म्याः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्म्योः – लक्ष्मी शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + ओस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, यकार आदेश कर, "लक्ष्म्य् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"लक्ष्म्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्मीणाम् – लक्ष्मी शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "लक्ष्मी + आम्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी शब्द की नदीसञ्ज्ञा कर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से "नु" का आगम कर, "लक्ष्मी + न् आम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"लक्ष्मीणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्मीषु – लक्ष्मी शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"लक्ष्मीषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

लक्ष्मी शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
सम्बोधन	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः
द्वितीया	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः
तृतीया	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
चतुर्थी	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
पंचमी	लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
षष्ठी	लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
सप्तमी	लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु

।। इस प्रकार स्त्रीलिंग में ईकारान्त प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब उकारान्त स्त्रीलिंग में चञ्चु शब्द का विवेचन करते हैं। चञ्चु शब्द उकारान्त होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से चञ्चु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा करने पर कहीं रुचि शब्दवत् कार्य होता है। ङे, ङसि, ङस्, ङि विभक्तियों में **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होगी। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में भानुवत् रूप रहेंगे ।

चञ्चु शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"**

(१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"इदुदग्निः"** (१६१), **"औकारः पूर्वम्"** (१६२), **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३), **"सम्बुद्धौ च"** (१६४), **"अग्नेरमो कारः"** (१६५), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७), **"ङे"** (१६८), **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६९), **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१), **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१), **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२), **"अम्शसो–रादिर्लोपम्"** (२२६)।

चञ्चुः – चञ्चु शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"चञ्चुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चू – चञ्चु शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + औ" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से चञ्चु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"औकारः पूर्वम्"** (१६२) सूत्र से "औ" के स्थान पर उकार आदेश कर, "चञ्चु + उ" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"चञ्चू"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चवः – चञ्चु शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में "जस्" विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से चञ्चु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"इरेदुरोज्जसि"** (१६३) सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार आदेश कर, "चञ्चो + अस्" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर, "चञ्चव् + अस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"चञ्चवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे चञ्चो – चञ्चु शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + स्" इस स्थिति में **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर, "चञ्चु" इस स्थिति में **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार आदेश हो कर **"हे चञ्चो"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् **"हे चञ्चू"** और **"हे चञ्चवः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

चञ्चुम् – चञ्चु शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + अम्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से चञ्चु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"अग्नेरमोकारः"** (१६५) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"चञ्चुम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चूः – चञ्चु शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + अस्" इस स्थिति में **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर (स्त्रीलिंग होने से सकार के स्थान पर नकार आदेश नहीं होगा) "चञ्चु + उस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"चञ्चूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्च्वा – चञ्चु शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + आ" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"**(४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश हो कर **"चञ्च्वा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चुभ्याम् – चञ्चु शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"चञ्चुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चुभिः – चञ्चु शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"चञ्चुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्च्वै, चञ्चवे – चञ्चु शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + ए" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति होने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से "ङे" के स्थान पर ऐ आदेश हो कर, "चञ्चु + ऐ" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश हो कर, **"चञ्च्वै"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञा कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार आदेश हो कर "चञ्चो + ए" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (१५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"चञ्चवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चुभ्यः – चञ्चु शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"चञ्चुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्च्वाः, चञ्चोः – चञ्चु शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + अस्" इस स्थिति में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति होने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से "ङसि–ङस्" के स्थान पर आस् आदेश कर, "चञ्चु + आस्" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश कर, "चञ्च् व् + आस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"चञ्च्वाः"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञा कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** सूत्र से उकार के स्थान पर ओकार तथा अस् के अकार का लोप कर, "चञ्चो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"चञ्चोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्च्वोः – चञ्चु शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + ओस्" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश कर, "चञ्च् व् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"चञ्च्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चूनाम् – चञ्चु शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "चञ्चु + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "चञ्चु + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ करने पर **"चञ्चूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्च्वाम्, चञ्चौ – चञ्चु शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञा की प्राप्ति होने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से "ङि" के स्थान पर आम् आदेश कर, "चञ्चु + आम्" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश करने पर, **"चञ्च्वाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञा कर, **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से ङि तथा उकार के स्थान पर "औकार" आदेश हो कर, "चञ्च् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"चञ्चौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चुषु – चञ्चु शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर "चञ्चु + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर, **"चञ्चुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चञ्चु शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	चञ्चुः	चञ्चू	चञ्चवः
सम्बोधन	हे चञ्चो	हे चञ्चू	हे चञ्चवः
द्वितीया	चञ्चुम्	चञ्चू	चञ्चूः
तृतीया	चञ्च्वा	चञ्चुभ्याम्	चञ्चुभिः
चतुर्थी	चञ्च्वै, चञ्चवे	चञ्चुभ्याम्	चञ्चुभ्यः
पंचमी	चञ्च्वाः, चञ्चोः	चञ्चुभ्याम्	चञ्चुभ्यः
षष्ठी	चञ्च्वाः, चञ्चोः	चञ्च्वोः	चञ्चूनाम्
सप्तमी	चञ्च्वाम्, चञ्चौ	चञ्च्वोः	चञ्चुषु

इसी प्रकार उडु, तनु, प्रियङ्गु, स्नायु, उरु, करेणु, धेनु, आदि के रूप जानना चाहिये।

।। इस प्रकार उकारान्त स्त्रीलिंग का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब ऊकारान्त स्त्रीलिंग में वधू शब्द का विवेचन करते हैं। वधू शब्द की **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा नित्य होगी। वधू शब्द ईकारान्त नहीं होने से **"ईकारान्तात्सिः"** (२२७) सूत्र से सि का लोप नहीं होगा।

नदी शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"वमुवर्णः"** (४५), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"नद्या ऐ आसासाम्"** (२२२), **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६)। **"सम्बुद्धौ ह्रस्वः"** (२२८), **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२९)।

वधूः – वधू शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"वधूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वध्वौ – वधू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से ऊकार के स्थान पर वकार आदेश हो कर **"वध्वौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वध्वः – वधू शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से ऊकार के स्थान पर वकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"वध्वः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे वधु – सम्बुद्धि में सि विभक्ति के आने पर **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४) सूत्र से सि का लोप कर तथा **"सम्बुद्धौ ह्रस्वः"** (२२८) सूत्र से ह्रस्व हो कर **"हे वधु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर पूर्ववत् **"हे वध्वौ"** तथा बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर **"हे वध्वः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

वधूम् – वधू शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा कर, **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६) सूत्र से अम् के अकार का लोप हो कर **"वधूम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वधूः – वधू शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा कर, **"अम्शसोरादिर्लोपम्"** (२२६) सूत्र से अस् के अकार का लोप कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"वधूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वध्वा – वधू शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश हो कर **"वध्वा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वधूभ्याम् – वधू शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"वधूभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वधूभिः – वधू शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"वधूभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वध्वै – वधू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङे के स्थान पर ऐ आदेश कर तथा **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से ऊकार के स्थान पर वकार आदेश हो कर **"वध्वै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वधूभ्यः – वधू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"वधूभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वध्वाः – वधू शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "वधू + अस्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर आस् आदेश कर, **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से ऊकार के स्थान पर वकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"वध्वाः**" प्रयोग सिद्ध होता है।

वध्वोः – वधू शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "वधू + ओस्" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से ऊकार के स्थान पर वकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"वध्वोः**" प्रयोग सिद्ध होता है।

वधूनाम् – वधू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "वधू + आम्" इस स्थिति में **"ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी"** (२२६) सूत्र से नदी सञ्ज्ञा कर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर **"वधूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वधूषु – वधू शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"वधूषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वधू शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
सम्बोधन	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

द्वितीया	वध्वूम्	वध्वौ	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
पञ्चमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु

इसी प्रकार अलाबू, कच्छू, यवागू, चमू, तण्डू, कमण्डलू, कद्रू, कण्डू, कासू इत्यादि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

किन्तु भ्रू (भ्रौं) शब्द में अन्तर है।

भ्रूः – भ्रू शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"भ्रूः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "भ्रू" शब्द को धातुवत् करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३७)विधिसूत्रम् – भ्रूर्धातुवत्।।२३५।।

भ्रूशब्दो धातुवद् भवति विभक्तिस्वरे परे। भ्रुवौ। भ्रुवः। सम्बोधने अप्यनित्यनदीत्वात् सम्बुद्धौ ह्रस्वो नास्ति। अन्यत्र नदीवत्। हे भ्रूः। हे भ्रुवौ। हे भ्रुवः। भ्रुवम्। भ्रुवौ। भ्रुवः। भ्रुवा। भ्रूभ्याम्। भ्रूभिः। भ्रुवै, भ्रुवे। भ्रूभ्याम्। भ्रूभ्यः। भ्रुवाः, भ्रुवः। भ्रूभ्याम्। भ्रूभ्यः। भ्रुवाः, भ्रुवः। भ्रुवोः। भ्रूणाम्, भ्रुवाम्। भ्रुवाम्, भ्रुवि। भ्रुवोः। भ्रूषु। इत्यूकारान्ताः।

ऋकारान्तः स्त्रीलिङ्गो मातृशब्दः। माता। मातरौ। मातरः। हे मातः। हे मातरौ। हे मातरः। मातरम्। मातरौ। मातॄः। स्त्रीलिङ्गत्वात्सस्य नत्वाभावः। इत्यादि। अन्यत्र पितृशब्दवत्। एवं दुहितृननान्दृप्रभृतयः। स्वस्रादीनां च पूर्ववत्। स्वस्रादयः के?

अर्थ – स्वर वाली विभक्ति के परे होने पर भ्रू शब्द को धातुवत् होता है।

अर्थात् – **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से उव् आदेश होगा।

औ, जस्, अम्, औ, शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, ङि, ओस् ये स्वर वाली विभक्तियाँ कहलाती हैं।

भ्रुवौ – भ्रू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"भ्रूर्धातुवत्"** (२३५) सूत्र से धातुवत् कार्य होने से **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर **"भ्रुवौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रुवः – भ्रू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, **"भ्रूर्धातुवत्"** (२३५) सूत्र से धातुवत् कार्य होने से **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"भ्रुवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नित्य नदी सञ्ज्ञा नहीं होने से सम्बोधन की सम्बुद्धि में ह्रस्व नहीं होता है। **हे भ्रूः, हे भ्रुवौ, हे भ्रुवः** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

भ्रुवम् – भ्रू शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"भ्रूर्धातुवत्"** (२३५) सूत्र से धातुवत् कार्य होने से **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करने पर **"भ्रुवम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रुवा – भ्रू शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"भ्रूर्धातुवत्"** (२३५) सूत्र से धातुवत् कार्य होने से **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करने पर **"भ्रुवा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रूभ्याम् – भ्रू शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"भ्रूभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रूभिः – भ्रू शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"भ्रूभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रुवै, भ्रुवे – भ्रू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से "ङे" के स्थान पर "ऐ" आदेश कर "भ्रू + ए्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करने पर **"भ्रुवै"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश हो कर **"भ्रुवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रूभ्यः – भ्रू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"भ्रूभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रुवाः, भ्रुवः – भ्रू शब्द से पंचमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "भ्रू + अस्" इस स्थिति में **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र से ङसि–ङस् के स्थान पर आस् आदेश कर "भ्रू + आस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "भ्रुव् + आस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भ्रुवाः"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "भ्रुव् + अस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भ्रुवः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रुवोः – भ्रू शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "भ्रू + ओस्" इस स्थिति में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश कर, "भ्रुव् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"भ्रुवोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रूणाम्, भ्रुवाम् – भ्रू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"स्त्र्याख्यावियुवौ वामि"** (२३३) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा होने पर **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "भ्रू + न् आम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर **"भ्रूणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर उव् आदेश करने पर **"भ्रुवाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रुवाम्, भ्रुवि – भ्रू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "भ्रू + इ" इस स्थिति में **"ह्रस्वश्च ङवति"** (२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से नदी सञ्ज्ञा कर, **"नद्या ऐआसासाम्"** (२२२) सूत्र द्वारा ङि के स्थान पर आम् आदेश कर, **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, उव् आदेश करने पर **"भ्रुवाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। नदी सञ्ज्ञा के अभाव में **"ईदूतोरियुवौ स्वरे"** (१८६) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, उव् आदेश करने पर **"भ्रुवि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रूषु – भ्रू शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "भ्रू + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"भ्रूषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

भ्रू शब्द की रूपमाला यथा –

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	भ्रूः	भ्रुवौ	भ्रुवः
सम्बोधन	हे भ्रूः	हे भ्रुवौ	हे भ्रुवः
द्वितीया	भ्रुवम्	भ्रुवौ	भ्रुवः
तृतीया	भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभिः
चतुर्थी	भ्रुवै, भ्रुवे	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्याम्
पंचमी	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्याम्
षष्ठी	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रुवोः	भ्रूणाम्, भ्रुवाम्
सप्तमी	भ्रुवाम्, भ्रुवि	भ्रुवोः	भ्रूषु

।। इस प्रकार ऊकारान्त शब्दों का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब ऋकारान्त स्त्रीलिंग में मातृ शब्द का विवेचन करते हैं। मातृ शब्द के रूप पितृ शब्द के समान चलते हैं। किन्तु शस् विभक्ति के सकार को नकार आदेश नहीं होता है।

मातृ शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रमृवर्णः"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"पंचादौ घुट्"** (१५६), **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६), **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८), **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५), **" आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६), **"अग्निवच्छसि"** (१६७), **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८), **"अर्डौ"** (१६६), **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००)।

माता – मातृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर "मातृ + सि" इस स्थिति में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर "आ" आदेश तथा सि का लोप हो कर **"माता"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातरौ – मातृ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर "मातृ + औ" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर, "मातर् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"मातरौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातरः – मातृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर "मातृ + अस्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से अस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "मातर् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"मातरः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे मातः – मातृ शब्द से सम्बुद्धि में सि विभक्ति के आने पर, "मातृ + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से आमन्त्रण में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) ये तीनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र से, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) इन दो सूत्रों का निषेध हो कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "मातर् + स्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८) सूत्र से सि का लोप कर, "पितर्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे मातः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे मातरौ"** तथा बहुवचन में **"हे मातरः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

मातरम् – मातृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "मातृ + अम्" इस स्थिति में **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"मातरम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातॄः – मातृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "मातृ + अस्" इस स्थिति में **"अग्निवच्छसि"** (१६७) सूत्र से मातृ शब्द को अग्निवत् कार्य अर्थात् **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर ऋस् आदेश कर,

"मातृ + ऋस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"मातॄः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मात्रा – मातृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "मातृ + टा" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "मात्र् + आ" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"मात्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातृभ्याम् – मातृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"मातृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातृभिः – मातृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "मातृ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"मातृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मात्रे – मातृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "मातृ + ए" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "मात्र् + ए" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"मात्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातृभ्यः – मातृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "मातृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"मातृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातुः– मातृ शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर "मातृ + अस्" इस स्थिति में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र से ऋकार तथा अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर "मात् उस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"मातुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मात्रोः – मातृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "मातृ + ओस्" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"मात्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातृणाम् – मातृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "मातृ + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर, "मातॄ + नाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"मातॄणाम"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातरि – मातृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "मातृ + इ" इस स्थिति में, **"अर्डौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"मातरि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातृषु – मातृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "मातृ + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"मातृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मातृ शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
सम्बोधन	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पंचमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु

इसी प्रकार दुहितृ, ननान्दृ आदि शब्द जानना चाहिये।

स्वसृ आदि शब्दों को पूर्ववत् जानना चाहिये।

शंका – स्वसृ आदिक शब्द कौन से हैं ?

समाधान –

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च, ननान्दा दुहिता तथा।
याता मातेति सप्तैते, स्वस्रादिष्वध्यगीषत।।१२।।

श्लोकार्थ – स्वसृ (बहिन), तिसृ (तीन), चतसृ (चार), ननान्दृ (पति की बहन), दुहितृ (लड़की), यातृ (भाईयों की स्त्रियाँ आपस में याता कहलाती हैं।), मातृ (माता) ये सात शब्द स्वसृ आदि कहे गये हैं।

नोट – स्वरान्त पुल्लिंग प्रकरण में स्वसृ आदि शब्द भिन्न हैं। यथा –

"स्वसा नप्ता च नेष्टा च, त्वष्टा क्षत्ता तथैव च।
होता पोता प्रशास्ता च, अष्टौ स्वस्रादयः स्मृताः।।"

शसादौ मातृशब्दवत्। इति ऋकारान्ताः। ॠकारऌकारॡकारएकारान्ता अप्रसिद्धाः।

ऐकारान्ताः स्त्रीलिङ्गो सुरैशब्दः। स च रै शब्दवत्। सुराः। सुरायौ। सुरायः। सम्बोधने पि तद्वत्। सुरायम्। सुरायौ। सुरायः। सुराया। सुराभ्याम्। सुराभिः। सुराये। सुराभ्याम्। सुराभ्यः। सुरायः। सुराभ्याम्। सुराभ्यः। सुरायः। सुरायोः। सुरायाम्। सुरायि। सुरायोः। सुरासु। इत्यैकारान्ताः। ओकारान्तः स्त्रीलिङ्गो गोशब्दः। स च पूर्ववत्। औकारान्तः स्त्रीलिङ्गो नौशब्दः। स च ग्लौशब्दवत्। इत्यौकारान्ताः।

स्वसृ आदि शब्द के शस् आदि विभक्तियों में मातृशब्दवत् रूप बनते हैं।

स्वसृ शब्द के प्रयोग पुल्लिंग में सिद्ध कर आये हैं। स्मरण करने के लिए पुनः दिये हैं।

स्वसा – स्वसृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + स्" इस स्थिति में **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) सूत्र से ऋकार के स्थान पर आकार आदेश कर तथा सि का लोप हो कर **"स्वसा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसारौ – स्वसृ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर "स्वसृ + औ" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से औ की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"स्वस्रादीनां च"** (२०३) सूत्र से ऋ के स्थान पर आर् आदेश हो कर **"स्वसारौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसारः – स्वसृ शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर "स्वसृ + अस्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से अस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"स्वस्रादीनां च"** (२०३) सूत्र से ऋ के स्थान पर आर् आदेश कर, "स्वसार् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"स्वसारः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे स्वसः – स्वसृ शब्द से सम्बुद्धि में सि विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + स्" इस स्थिति में **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३) सूत्र से आमन्त्रण में सि की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा कर, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४), **"घुटि च"** (१६५) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) ये तीनों सूत्रों की एक साथ प्राप्ति होने पर, **"आ च न सम्बुद्धौ"** (१६६) सूत्र से, **"आ सौ सिलोपश्च"** (१६४) तथा **"धातोस्तृशब्दस्यार्"** (२००) सूत्रों का निषेध हो कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "स्वसर् + स्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनाच्च"** (१७८) सूत्र से सि का लोप कर, "स्वसर्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे स्वसः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे स्वसारौ"** तथा बहुवचन में **"हे स्वसारः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

स्वसारम् – स्वसृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + अम्" इस स्थिति में **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से अस् की घुट् संज्ञा कर, **"घुटि च"** (१६५) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"स्वस्रादीनां च"** (२०३) सूत्र से ऋ के स्थान पर आर् आदेश कर, "स्वसार् + अम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्वसारम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसॄः – स्वसृ शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + अस्" इस स्थिति में **"अग्निवच्छसि"** (१६७) सूत्र से स्वसृ शब्द को अग्निवत् कार्य अर्थात् **"शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्"** (१६६) सूत्र से अस् के स्थान पर ऋस् आदेश कर, (स्वसृ शब्द स्त्रीलिंग होने से सकार के स्थान पर नकार आदेश नहीं किया है।) "स्वसृ + ऋस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"स्वसॄः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वस्रा – स्वसृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + आ" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "स्वस्र् + आ" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्वस्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृभ्याम् – स्वसृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"स्वसृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृभिः – स्वसृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"स्वसृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वस्रे – स्वसृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + ए" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर र् आदेश हो कर "स्वस्र् + ए" इस स्थिति में **"परव्यञ्जनमधः"** परिभाषा के माध्यम से रेफ नीचे रहने पर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"स्वस्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृभ्यः – स्वसृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"स्वसृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसुः– स्वसृ शब्द से पञ्चमी–षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + अस्" इस स्थिति में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र से ऋकार तथा अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "स्वस् उस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश करने पर **"स्वसुः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वस्रोः – स्वसृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + ओस्" इस स्थिति में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"स्वस्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृणाम् – स्वसृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ हो कर, "स्वसॄ + नाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"स्वसॄणाम"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसरि – स्वसृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "स्वसृ + इ" इस स्थिति में, **"अर्डौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश हो कर **"स्वसरि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृषु – स्वसृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "स्वसृ + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"स्वसृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

स्वसृ शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
सम्बोधन	हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः
द्वितीया	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसॄः
तृतीया	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
चतुर्थी	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
पंचमी	स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
षष्ठी	स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्
सप्तमी	स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु

।। इस प्रकार ऋकारान्त शब्दों का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

स्त्रीलिंग में ऋकारान्त, ऌकारान्त, ॡकारान्त और एकारान्त शब्द अप्रसिद्ध हैं।

अब ऐकारान्त स्त्रीलिंग में सुरै शब्द का विवेचन करते हैं। सुरै शब्द के रूप रै शब्द के समान चलते हैं।

रै शब्द की सिद्धि के लिए पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"ऐ आय्"** (४६), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रैः"** (२०५)।

सुराः – सुरै शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर "सुरै + स्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश हो कर "सुरा + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सुराः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुरायौ – सुरै शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश हो कर **"सुरायौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुरायः – सुरै शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सुरायः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे सुराः – सुरै शब्द से सम्बुद्धि में सि विभक्ति के आने पर, **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश हो कर "सुरा + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"हे सुराः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् – **"हे सुरायौ"** तथा बहुवचन में **"हे सुरायः"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सुरायम् – सुरै शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"सुरायम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुराया – सुरै शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"सुराया"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुराभ्याम् – रै शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के एकवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, "सुरै + भ्याम्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश करने पर **"सुराभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

राभिः – सुरै शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "सुरै + भिस्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सुराभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुराये – सुरै शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"सुराये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुरायः – सुरै शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, सुरै + अस्" इस स्थिति में **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सुरायः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुरायोः – सुरै शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सुरायोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुरायाम् – सुरै शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"सुरायाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुरायि – सुरै शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"सुरायि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुरासु – रै शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "सुरै + सु" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश करने पर **"सुरासु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सुरै शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुराः	सुरायौ	सुरायः
सम्बोधन	हे सुराः	हे सुरायौ	हे सुरायः
द्वितीया	सुरायम्	सुरायौ	सुरायः
तृतीया	सुराया	सुराभ्याम्	सुराभिः
चतुर्थी	सुराये	सुराभ्याम्	सुराभ्यः
पंचमी	सुरायः	सुराभ्याम्	सुराभ्यः
षष्ठी	सुरायः	सुरायोः	सुरायाम्
सप्तमी	सुरायि	सुरायोः	सुरासु

।। इस प्रकार ऐकारान्त शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब ओकारान्त स्त्रीलिंग में गो शब्द का विवेचन करते है। गो शब्द की प्रक्रिया पूर्ववत् है।

गौः – गो शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "गो + स्" इस स्थिति में **"गोरौ घुटि"** (२०६) सूत्र से ओकार के स्थान पर औकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"गौः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गावौ – गो शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर आव् आदेश हो कर **"गावौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गावः – बहुवचन में जस् विभक्ति के आने पर **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर **"गावः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी पूर्ववत् – **हे गौः, हे गावौ, हे गावः,** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

गाम् – गो शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम् "विभक्ति" के आने पर "गो + अम्" इस स्थिति में **"गोरौ घुटि"** (२०६) सूत्र की प्राप्ति थी परन्तु **"अम्शसोराः"** (२०७) सूत्र से गो के ओकार के स्थान पर आकार आदेश कर, "गा + अम्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ हो कर **"गाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गाः – गो शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् विभक्ति के आने पर "गो + शस्" इस स्थिति में **"अम्शसोराः"** (२०७) सूत्र से गो के ओकार के स्थान पर आकार आदेश कर, "गा + अस्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से दीर्घ कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर, **"गाः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गवा – गो शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"गवा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गोभ्याम् – गो शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"गोभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गोभिः – गो शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"गोभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे "विभक्ति" के आने पर **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"गवे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गोः – गो शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "गो + अस्" इस स्थिति में **"गोश्च"** (२०८) सूत्र से अस् के अकार का लोप कर, "गो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"गोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गवोः – गो शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"गवोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गवाम् – गो शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर, **"गवाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गवि – गो शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर, **"गवि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गोषु – गो शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"गोषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

गो (गाय) शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
सम्बोधन	हे गौः	हे गावौ	हे गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पंचमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु

अब औकारान्त स्त्रीलिंग में नौ शब्द का विवेचन करते हैं। नौ (नाव) शब्द की प्रक्रिया ग्लौ शब्दवत् है।

नौः – नौ शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, "नौ + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नौः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नावौ – नौ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "नौ + औ" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर **"नावौ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नावः – नौ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "नौ + अस्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नावः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सम्बोधन में भी पूर्ववत् – **हे नौः, हे नावौ, हे नावः,** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

नावा – नौ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "नौ + आ" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर **"नावा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नौभ्याम् – नौ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"नौभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नौभिः – नौ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "नौ + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नौभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नावे – नौ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "नौ + ए" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश हो कर **"नावे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नौभ्यः – नौ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "नौ + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नौभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नावः – नौ शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "नौ + अस्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नावः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नावोः – नौ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "नौ + ओस्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"नावोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नावाम् – नौ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "नौ + आम्" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश करने पर, **"नावाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नावि – नौ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "नौ + इ" इस स्थिति में **"औ आव्"** (५१) सूत्र से औकार के स्थान पर, आव् आदेश करने पर **"नावि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नौषु – नौ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"नौषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नौ शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	नौः	नावौ	नावः
सम्बोधन	हे नौः	हे नावौ	हे नावः
द्वितीया	नावम्	नावौ	नावः
तृतीया	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
चतुर्थी	नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
पंचमी	नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
षष्ठी	नावः	नावोः	नावाम्
सप्तमी	नावि	नावोः	नौषु

।। इस प्रकार स्त्रीलिंग औकारान्त शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

।। इति स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गाः।।

।। इस प्रकार स्वरान्त स्त्रीलिंग का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

❑ ❑ ❑

।। अथ स्वरान्ता नपुंसकलिङ्गा उच्यन्ते।।

अब स्वरान्त नपुंसकलिंग का प्रकरण कहा जाता है।

नपुंसकलिंग में प्रथमा–द्वितीया विभक्ति में कार्य होता है। तृतीया आदि विभक्तियों में पुल्लिंग के सदृश प्रक्रिया सिद्ध होती है।

अकारान्तो नपुंसकलिङ्गः कुलशब्दः। सौ।

अकारान्त नपुंसकलिंग में कुल शब्द का विवेचन करते हैं।

कुल शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ओकारे औ औकारे च"** (४०), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"जसि"** (१३१), **"आमन्त्रणे च"** (१३२), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"अकारे लोपम्"** (१३६), **"शसि सस्य च नः"** (१३७), **"इन टा"** (१३८), **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०), **"भिसैस्वा"** (१४१), **"ङेर्यः"** (१४२), **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३), **"ङसिरात्"** (१४४), **"ङस् स्यः"** (१४५), **"ओसि च"** (१४६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"तृतीयादौ तु परादिः"** (१४८), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४९), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"वा विरामे"** (२४२)।

कुल शब्द से प्रथमा द्वितीया विभक्ति के एकवचन में क्रमशः सि और अम् विभक्ति के आने पर, सि और अम् का लोप तथा मु का आगम करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८४)विधिसूत्रम् – अकारादसम्बुद्धौ मुश्च।।२३६।।

अकारान्तान्नपुंसकलिङ्गात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति मुरागमश्चासम्बुद्धौ। कुलम्।

अर्थ – अकारान्त नपुंसकलिंग से परे सि और अम् का लोप तथा असम्बुद्धि में मु का आगम होता है।

अर्थात् नपुंसकलिंग के सम्बुद्धि में, मु का आगम नहीं होगा, परन्तु सि का लोप हो जायेगा। मु के आगम में उकार का लोप हो जाता है। मकार शेष रहता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नपुंसकात् स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

कुलम् – कुल शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र से सि और अम् का लोप तथा मु का आगम कर, **"कुलम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका– सम्बुद्धि भिन्न हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर सम्बुद्धि भिन्न नहीं कहते तो सम्बुद्धि में भी "मु" का आगम हो कर **"हे कुलम्"** रूप बन जाता।

कुल शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, औ के स्थान पर ईकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८६)विधिसूत्रम् – औरीम्।।२३७।।

नपुंसकलिङ्गात्परः औरीमापद्यते। कुले।

अर्थ – नपुंसकलिंग से परे औ के स्थान पर ई आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नपुंसकात् स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र की तथा **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

कुले – कुल शब्द से प्रथमा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर "कुल + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश हो कर "कुल + ई" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि हो कर **"कुले"** रूप सिद्ध होता है।

कुल शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर "जस्–शस्" की घुट् सञ्ज्ञा करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.४)सञ्ज्ञासूत्रम् – जस्शसौ नपुंसके।।२३८।।

जस्शसौ नपुंसकलिङ्गे घुट्सञ्ज्ञौ भवतः।

अर्थ – नपुंसकलिंग में जस् और शस् की घुट सञ्ज्ञा होती है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"पञ्चादौ घुट्" (१५६) सूत्र द्वारा सि, औ, जस्, अम् और शस् की घुट् सञ्ज्ञा होती है।

यह सामान्य कथन था परन्तु यहाँ जस् और शस् की घुट् सञ्ज्ञा कहीं है। पृथक् कथन होने से नपुंसकलिंग में सि, औ जस् अम् और औ की घुट् सञ्ज्ञा नहीं होगी। मात्र जस् और शस् की ही घुट् सञ्ज्ञा होगी।

कुल शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के स्थान पर शि आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८७)विधिसूत्रम् – जस्शसोः शिः।।२३६।।

सर्वनपुंसकलिङ्गात्परयोर्जस्शसोः शिर्भवति। शकारः सर्वादेशार्थः।

अर्थ – नपुंसकलिङ्ग से परे सम्पूर्ण जस् और शस् के स्थान पर शि आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नपुंसकात् स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

शि में शकार का उल्लेख सम्पूर्ण जस् और शस् के लिये किया है। शि के शकार का अनुबन्ध लोप हो कर इ शेष रहता है।

कुल शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा होने पर, नु का आगम करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८८)विधिसूत्रम् – धुट्स्वराद् घुटि नुः।।२४०।।

धुटः पूर्वस्वरात्परश्च नपुंसकलिङ्गे घुटि परे नुरागमो भवति। घुटि चासम्बुद्धौ इति दीर्घः। कुलानि। हे कुल। हे कुले। हे कुलानि। पुनरपि। कुलम्। कुले। कुलानि। कुलेन। कुलाभ्याम्। कुलैः। अतः परं पुरुषशब्दवत्।। एवं दान–धन–धान्य–मित्र–वस्त्र–वसन–वदन–नयन–पुण्य–पाप–सुख–दुःखादयः। सर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीययोः कुलशब्दवत्। सर्वम्। सर्वे। सर्वाणि। पुनरपि। अन्यत्र पुल्लिङ्गवत्। अन्य शब्दस्य तु भेदः।

अर्थ – घुट् परे होने पर, धुट् से और पूर्वस्वर से परे नपुंसकलिंग में नु का आगम होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नपुंसकात् स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

"नु" में उकार का अनुबन्ध लोप हो जाता है। नकार मात्र शेष रहता है।

व्यञ्जनान्त नपुंसकलिंग में धुट् से परे घुट् के लिये "नु" का आगम होगा, तथा स्वरान्त नपुंसकलिंग में स्वर से परे घुट् के लिये नु का आगम होगा।

यथा – व्यञ्जनान्त नपुंसकलिंग के सकृत् शब्द से जस् और शस् विभक्ति के आने पर, **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से घुट् सञ्ज्ञा कर तथा **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस् शस् के स्थान पर शि आदेश किया। यहाँ धुट् से परे घुट् होने पर प्रकृत सूत्र से नु का आगम हो कर **"सकृन्ति"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – सूत्र में धुट् पूर्वक स्वर का कथन ठीक नहीं है। क्योंकि य्, र्, ल्, व्, तथा ङ्, ञ्, ण्, न्, म् ये धुट् नहीं हैं। सूत्र कहता है स्वर के पूर्व उपर्युक्त शब्द नहीं होना चाहिये। किन्तु **"कुल"** शब्द में स्वर के पूर्व "ल्" है जो कि अधुट् है। धुट् नही होने से नु का आगम नहीं होगा और नु का आगम नहीं होने से **"कुलानि"** रूप नहीं बन सकता। अतः **"धुटः पूर्वः"** का कथन नहीं होना चाहिये।

सूत्र भी **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** के स्थान पर **"स्वराद् घुटि नुः"** होना चाहिये।

अथवा – घुट् परे होने पर धुट् से परे और स्वर से परे नपुंसकलिंग में नु का आगम होता है। इस प्रकार अर्थ करने से कोई परेशानी नहीं आती है।

इसी प्रकार दान, धन, धान्य, मित्र, वस्त्र, वसन, वदन नयन, पुण्य आदि शब्द में स्वर के पूर्व अधुट् है।

कुलानि – कुल शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस् शस् विभक्ति के आने पर, "कुल + जस्–शस्" इस स्थिति में, **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस और शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शि"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर, शकार का अनुबन्ध लोप कर "कुल + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद्घुटि नु"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "कुलन् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ हो कर **"कुलानि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे कुलम् – कुल शब्द से सम्बुद्धि के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र से सि का लोपकर (यहाँ मु का आगम नहीं होगा) , **"हे कुल"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्विवचन में पूर्ववत् हे कुले तथा हे कुलानि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

तृतीया आदि विभक्तियों में पुरुष शब्दवत् प्रक्रिया होती है।

कुलेन – कुल शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में "टा" विभक्ति के आने पर, **"इन टा"** (१३८) सूत्र से "टा" के स्थान पर "इन" आदेश कर तथा **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि कर **"कुलेन"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुलाभ्याम् – कुल शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में "भ्याम्" विभक्ति के आने पर, "कुल + भ्याम्" इस स्थिति में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ कर **"कुलाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुलैः – कुल शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "कुल + भिस्" इस स्थिति में **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र से भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश कर, **"एकारे ऐ ऐकारे च"** (३७) सूत्र से सन्धि कर **"कुलैस्"** इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कुलैः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुलाय – कुल शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में "ङे" विभक्ति के आने पर, "कुल + ए" इस स्थिति में **"ङेर्यः"** (१४२) सूत्र से "ङे" के स्थान पर, "य" आदेश कर तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"कुलाय"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुलेभ्यः – कुल शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में "भ्यस्" विभक्ति के आने पर, "कुल + भ्यस्" इस स्थिति में **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"कुलेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुलाद्, कुलात् – कुल शब्द से पंचमी विभक्ति के एकवचन में ङसि विभक्ति के आने पर, "कुल + अस्" इस स्थिति में **"ङसिरात्"** (१४४) सूत्र से ङसि के स्थान पर "आत्" आदेश कर **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से सन्धि करने पर **"कुलात्"** इस स्थिति में **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र से तकार के स्थान पर दकार या तकार आदेश होने पर **"कुलाद्–कुलात्"** ये दो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

कुलस्य – कुल शब्द से षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङस् विभक्ति के आने पर, **"ङस् स्यः"** (१४५) सूत्र से ङस् के स्थान पर स्य आदेश हो कर **"कुलस्य"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुलयोः – कुल शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर, "कुले + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर, अय् आदेश कर "कुलय् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कुलयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुलानाम् – कुल शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर **"आमि च नुः"** (१४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से दीर्घ कर, **"कुलानाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुले – कुल शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में "ङि" विभक्ति के आने पर **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि कर **"कुले"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुलेषु – कुल शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में "सुप्" विभक्ति के आने पर **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश कर **"कुलेषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कुल शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	कुलम्	कुले	कुलानि
सम्बोधन	हे कुल	हे कुले	हे कुलानि
द्वितीया	कुलम्	कुले	कुलानि
तृतीया	कुलेन	कुलाभ्याम्	कुलैः
चतुर्थी	कुलाय	कुलाभ्याम्	कुलेभ्यः
पंचमी	कुलाद्, कुलात्	कुलाभ्याम्	कुलेभ्यः
षष्ठी	कुलस्य	कुलयोः	कुलानाम्
सप्तमी	कुले	कुलयोः	कुलेषु

इसी प्रकार दान, धन, धान्य, मित्र, वस्त्र, वसन, वदन, नयन, पुण्य, पाप, सुख, दुःख आदि शब्द जानना चाहिये।

सर्वनाम सञ्ज्ञक सर्व आदि शब्द प्रथमा द्वितीया विभक्तियों में कुल शब्दवत् चलते हैं। तृतीया आदि में पुल्लिंगवत् चलते हैं।

यथा– **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ओकारे औ औकारे च"** (४०), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"इन टा"** (१३८), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०), **"भिसैस्वा"** (१४१), **"ङेर्यः"** (१४२), **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३), **"ङसिरात्"** (१४४), **"ङस् स्यः"** (१४५), **"ओसि च"** (१४६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"तृतीयादौ तु परादिः"** (१४८), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"स्मै सर्वनाम्नः"** (१५३), **"ङसिः स्मात्"** (१५४), **"सुरामि सर्वतः"** (१५५), **"ङिः स्मिन्"** (१५६), **"पञ्चादौ घुट्"** (१५६), **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७), **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६), **"औरीम्"** (२३७), **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८), **"जस्शसोः शिः"** (२३६), **"धुट्स्वराद्घुटि नु"** (२४०), **"वा विरामे"** (२४२)।

सर्वम – सर्व शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र से सि और अम् का लोप तथा मु का आगम कर, **"सर्वम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वे – सर्व शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "सर्व + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश हो कर "सर्व + ई" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि हो कर **"सर्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वाणि – सर्व शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस् शस् विभक्ति के आने पर, "सर्व + जस्–शस्" इस स्थिति में, **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस् और शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शि"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर, शकार का अनुबन्ध लोप कर "सर्व + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद्घुटि नु"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "सर्वन् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ कर, "सर्वान् + इ" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"सर्वाणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वेण – सर्व शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में "टा" विभक्ति के आने पर, **"इन टा"** (१३८) सूत्र से "टा" के स्थान पर "इन" आदेश कर, "सर्व + इन" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि कर, "सर्वेन" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"सर्वेण"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वाभ्याम् – सर्व शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में "भ्याम्" विभक्ति के आने पर, "सर्व + भ्याम्" इस स्थिति में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ कर **"सर्वाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वैः – सर्व शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में "भिस्" विभक्ति के आने पर, "सर्व + भिस्" इस स्थिति में **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र से भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश कर, **"एकारे ऐ ऐकारे च"** (३७) सूत्र से सन्धि कर **"सर्वैस्"** इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सर्वैः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वस्मै – सर्व शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में "ङे" विभक्ति के आने पर, "सर्व + ए" इस स्थिति में **"स्मै सर्वनाम्नः"** (१५३) सूत्र से "ङे" के स्थान पर "स्मै" आदेश कर **"सर्वस्मै"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वेभ्यः – सर्व शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में "भ्यस्" विभक्ति के आने पर, "सर्व + भ्यस्" इस स्थिति में **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सर्वेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वस्मात् – सर्व शब्द से पंचमी विभक्ति के एकवचन में ङसि विभक्ति के आने पर, "सर्व + अस्" इस स्थिति में **"ङसि स्मात्"** (१५४) सूत्र से ङसि के स्थान पर "स्मात्" आदेश कर, "सर्वस्मात्" इस स्थिति में **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र से तकार के स्थान पर दकार या तकार आदेश होने पर **"सर्वस्माद्–सर्वस्मात्"** ये दो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सर्वस्य – सर्व शब्द से षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङस् विभक्ति के आने पर, **"ङस् स्यः"** (१४५) सूत्र से ङस् के स्थान पर स्य आदेश हो कर **"सर्वस्य"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वयोः – सर्व शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर, "सर्वे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर, अय् आदेश कर, "सर्वय् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सर्वयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वेषाम् – सर्व शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"सुरामि सर्वतः"** (१५५) सूत्र से नु का आगम कर, **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीय–षान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"सर्वेषाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वस्मिन् – सर्व शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में "ङि" विभक्ति के आने पर, **"ङि स्मिन्"** (२७) सूत्र द्वारा ङि के स्थान पर स्मिन् आदेश करने पर **"सर्वस्मिन्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्वेषु – सर्व शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में "सुप्" विभक्ति के आने पर, **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश कर **"सर्वेषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सर्व शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वे	हे सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्माद्, सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

अन्य शब्द में भेद है।

अन्य शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में क्रमशः सि और अम् विभक्ति के आने पर सि और अम् का लोप तथा तु का आगम करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८५)विधिसूत्रम् – अन्यादेस्तु तुः।।२४१।।

अन्यादेर्नपुंसकलिङ्गात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति तुरागमश्च। द्वितीयस् तु शब्दः किमर्थम्? असम्बुद्ध्यधिकारनिवृत्त्यर्थम्।

अर्थ – अन्य आदि नपुंसकलिंग से परे सि और अम् का लोप तथा तु का आगम होता है।

अन्य आदि शब्द–अन्य, अन्यतर, अन्यतम, इतर, इतम, कतर, कतम, यतर, यतम, ततर, ततम और एकतम तक जानना चाहिये।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नपुंसकात् स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र की तथा **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

शंका – द्वितीय "तु" शब्द किसलिये है ?
समाधान – असम्बुद्धि की निवृत्ति करने के लिये द्वितीय "तु" शब्द कहा है।

अर्थात् नपुंसकलिंग में **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र से सम्बुद्धि भिन्न सि और अम् के लिये "मु" का आगम होता है। परन्तु अन्य शब्द के सम्बुद्धि में भी तु का आगम होगा।

अन्य शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में क्रमशः सि–अम् विभक्ति का लोप कर तथा तु का आगम करने पर "अन्यत्" इस स्थिति में तकार को वैकल्पिक तकार–दकार करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२०४)विधिसूत्रम् – वा विरामे।।२४२।।

विरामे धुटां प्रथमस्तृतीयो वा भवति। अन्यत्, अन्यद्। अन्ये। अन्यानि। हे अन्यद्, हे अन्यत्। हे अन्ये। हे अन्यानि। शेषं पुंवत्। एवमेकतरं वर्जयित्वान्यतरप्रभृतयः।

अर्थ – विराम होने पर धुटों के प्रथम अक्षर को विकल्प से तृतीय होता है।

अर्थात् प्रथम भी रहता है तथा तृतीय भी हो जाता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"धुटां तृतीयः"** (२७४) सूत्र की तथा **"अघोषे प्रथमः"** (१२१) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अन्यत्, अन्यद् – अन्य शब्द से प्रथमा द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि–अम् विभक्ति के आने पर, **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र की प्राप्ति थी, परन्तु **"अन्यादेस्तु तुः"** (२४१) सूत्र द्वारा सि और अम् का लोप तथा तु का आगम हो कर "अन्य + त्" इस स्थिति में **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र द्वारा तकार के स्थान पर दकार–तकार विकल्प से कर **"अन्यद्, अन्यत्"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

अन्ये – अन्य शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ईकार आदेश कर तथा **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि करने पर **"अन्ये"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अन्यानि – अन्य शब्द से बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३६) सूत्र द्वारा जस्–शस् की घुट्सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर, शि आदेश कर, **"घुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ हो कर **"अन्यानि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शेष प्रयोग सर्व शब्द के समान सिद्ध होते हैं।

अन्य शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	अन्यत्–द्	अन्ये	अन्यानि
सम्बोधन	हे अन्यत्–द्	हे अन्ये	हे अन्यानि
द्वितीया	अन्यत्–द्	अन्ये	अन्यानि
तृतीया	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः
चतुर्थी	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
पंचमी	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
षष्ठी	अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्
सप्तमी	अन्यस्मिन्	अन्ययोः	अन्येषु

इस प्रकार एकतर शब्द को छोड़कर अन्यतर आदि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

एकतर शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में क्रमशः सि और अम् विभक्ति के आने पर, तु के आगम का निषेध करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)विधिसूत्रम् – नैकतरस्य।।२४३।।

एकतरशब्दस्य नपुंसकलिङ्गे तुरागमो न भवति। एकतरम्। एकतरे। एकतराणि। हे एकतर। हे एकतरे। हे एकतराणि। पुनरपि। अन्यत्र सर्वशब्दवत्। इत्यकारान्ताः। आकारान्तो नपुंसकलिङ्गः सोमपाशब्दः।

अर्थ – एकतर शब्द के नपुंसकलिंग में तु का आगम नहीं होता है।

तु के आगम का निषेध होने से **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र से मु का आगम हो कर **"एकतरम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शेष शब्द सर्व शब्दवत् जानना चाहिये।

नोट – "नैकतरस्य" सूत्र का कथन नहीं होना चाहिये। क्योंकि **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र की टीका में **"एवमेकतरं वर्जयित्वान्यतरप्रभृतयः।"** का कथन होने से सूत्र की उपयोगिता नहीं रही।

एकतर शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एकतरम्	एकतरे	एकतराणि
सम्बोधन	हे एकतर	हे एकतरे	हे एकतराणि
द्वितीया	एकतरम्	एकतरे	एकतराणि
तृतीया	एकतरेण	एकतराभ्याम्	एकतरैः
चतुर्थी	एकतरस्मै	एकतराभ्याम्	एकतरेभ्यः
पंचमी	एकतरस्मात्–द्	एकतराभ्याम्	एकतरेभ्यः
षष्ठी	एकतरस्य	एकतरयोः	एकतरेषाम्
सप्तमी	एकतरस्मिन्	एकतरयोः	एकतरेषु

।। इस प्रकार नपुंसकलिंग में अकारान्त शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब आकारान्त नपुंसकलिंग में सोमपा शब्द का विवेचन करते हैं।

सोमपा शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७), **"ओकारे औ औकारे च"** (४०), **"ए अय्"** (४८), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"जसि"** (१३१), **"आमन्त्रणे च"** (१३२), **"आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः"** (१३३), **"ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्"** (१३४), **"अकारे लोपम्"** (१३६), **"शसि सस्य च नः"** (१३७), **"इन टा"** (१३८), **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०), **"भिसैस्वा"** (१४१), **"ङेर्यः"** (१४२), **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३), **"ङसिरात्"** (१४४), **"ङस् स्यः"** (१४५), **"ओसि च"** (१४६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"तृतीयादौ तु परादिः"** (१४८), **"दीर्घमामि सनौ"** (१४९), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सि षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०), **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६), **"औरीम्"** (२३७), **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८), **"जस्शसोः शि"** (२३९), **"धुट्स्वराद्घुटि नु"** (२४०), **"वा विरामे"** (२४२), **स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४)।

नपुंसकलिंग में दीर्घ सोमपा आदि शब्दों को ह्रस्व आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.२५८)विधिसूत्रम् – स्वरो ह्रस्वो नपुंसके।।२४४।।

नपुंसकलिङ्गे वर्तमानः स्वरो ह्रस्वो भवति। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। हे सोमप। हे सोमपे। हे सोमपानि। पुनरपि। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। शेषं पुल्लिङ्गवत्। इत्याकारान्ताः। इकारान्तो नपुंसकलिङ्गो वारिशब्दः। सौ–

अर्थ – नपुंसकलिंग में वर्तमान स्वर को ह्रस्व होता है।

अर्थात् आकार के स्थान पर अकार, ईकार के स्थान पर इकार, ऊकार के स्थान पर उकार ह्रस्व आदेश आता है। सोमपा शब्द को "सोमप" ह्रस्व हो कर "कुल शब्द के समान प्रक्रिया होती है।

सोमपा शब्द को **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश होकर, सोपम शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि–अम् आदि विभक्तियाँ लाना चाहिये।

सोमपम् – सोमपा शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + स्–अम्" इस स्थिति में **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र से सि और अम् का लोप तथा मु का आगम कर, **"सोमपम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपे – सोमपा शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश हो कर "सोमप + ई" इस स्थिति में **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि हो कर **"सोमपे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपानि – सोमपा शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस् शस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + जस्–शस्" इस स्थिति में, **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस और शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शि"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर, शकार का अनुबन्ध लोप कर "सोमप + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद्घुटि नु"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "सोमप न् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ हो कर **"सोमपानि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपेन – सोमपा शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में "टा" विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + टा" इस स्थिति में, **"इन टा"** (१३८) सूत्र से "टा" के स्थान पर "इन" आदेश कर तथा **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि कर **"सोमपेन"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपाभ्याम् – सोमपा शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में "भ्याम्" विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + भ्याम्" इस स्थिति में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ कर **"सोमपाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपैः – सोमपा शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + भिस्" इस स्थिति में **"भिसैस्वा"** (१४१) सूत्र से भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश कर, **"एकारे ऐ ऐकारे च"** (३७) सूत्र से सन्धि कर "सोमपैस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सोमपैः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपाय – सोमपा शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में "ङे" विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + ए" इस स्थिति में **"ङेर्यः"** (१४२) सूत्र से "ङे" के स्थान पर "य" आदेश कर तथा **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"सोमपाय"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपेभ्यः – सोमपा शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में "भ्यस्" विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + भ्यस्" इस स्थिति में **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **"सोमपेभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपाद्, सोमपात् – सोमपा शब्द से पंचमी विभक्ति के एकवचन में ङसि विभक्ति के आने पर, "सोमप + अस्" इस स्थिति में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + अस्" इस स्थिति में **"ङसिरात्"** (१४४) सूत्र से ङसि के स्थान पर "आत्" आदेश कर, "सोमप + आत्" इस स्थिति में **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४) सूत्र से सन्धि करने पर "सोमपात्" इस स्थिति में **"वा विरामे"** (२४२) सूत्र से तकार के स्थान पर दकार या तकार आदेश होने पर **"सोमपाद्–सोमपात्"** ये दो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

सोमपस्य – सोमपा शब्द से षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + अस्" इस स्थिति में, **"ङस् स्यः"** (१४५) सूत्र से ङस् के स्थान पर स्य आदेश हो कर **"सोमपस्य"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपयोः – सोमपा शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + ओस्" इस स्थिति में, **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से अकार के स्थान पर "एकार" आदेश कर, "सोमपे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर, अय् आदेश कर "सोमपय् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"सोमपयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपानाम् – सोमपा शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + आम्" इस स्थिति में, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से दीर्घ कर, **"सोमपानाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपे – सोमपा शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में "ङि" विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + इ" इस स्थिति में, **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि कर **"सोमपे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपेषु – सोमपा शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में "सुप्" विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व अकार आदेश कर, "सोमप + सु" इस स्थिति में, **"धुटि बहुत्वे त्वे"** (१४३) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश कर **"सोमपेषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

सोमपा शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सोमपम्	सोमपे	सोमपानि
सम्बोधन	हे सोमप	हे सोमपे	हे सोमपानि
द्वितीया	सोमपम्	सोमपे	सोमपानि
तृतीया	सोमपेन	सोमपाभ्याम्	सोमपैः
चतुर्थी	सोमपाय	सोमपाभ्याम्	सोमपेभ्यः
पंचमी	सोमपाद्, सोमपात्	सोमपाभ्याम्	सोमपेभ्यः
षष्ठी	सोमपस्य	सोमपयोः	सोमपानाम्
सप्तमी	सोमपे	सोमपयोः	सोमपेषु

।। इस प्रकार नपुंसकलिंग में आकारान्त शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब इकारान्त नपुंसकलिंग में वारि (जल) शब्द का विवेचन करते हैं।

वारि शब्द के प्रयोग सिद्ध करने के लिए, पूर्वकथित निम्न सूत्रों को अर्थ सहित स्मरण कर लें। यथा – **"अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्"** (२३), **"समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्"** (२४), **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०), **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वर– हयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६), **"आमि च नुः"** (१४७), **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६), **"औरीम्"** (२३७), **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७), **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८), **"जस्शसोः शिः"** (२३६), **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०), **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०), **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"**(१५०)।

वारि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर सि और अम् का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८३)विधिसूत्रम् – नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्।।२४५।।

नपुंसकात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति तदुक्तं कार्यं न भवति। वारि।

अर्थ – नपुंसकलिंग से परे सि और अम् का लोप होता है, किन्तु मु और तु का आगम नहीं होता।

भावार्थ – पूर्व कथित **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) तथा **"अन्यादेस्तु तुः"** (२४१) सूत्र में अकारान्त नपुंसकलिंग से मि और अम् का लोप तथा मु और तु का आगम होता है। परन्तु अकारान्त रहित शब्दों से मु और तु का आगम नहीं होगा। अकारान्त रहित कहने से इकारान्त आदि तथा व्यञ्जनान्त आदि शब्द जानना चाहिये।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में "न च तदुक्तम्" कहकर **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र का तथा **"अन्यादेस्तु तुः"** (२४१) सूत्र से होने वाले मु और तु के आगम का निषेध किया है। वैसे तो अनुवृत्ति पूर्व सूत्र की आती है परन्तु उपर्युक्त सूत्र में अग्रिम सूत्र की अनुवृत्ति ली गई है। यथा – **"कलाप–व्यापकरण"** में सूत्र का क्रम इस प्रकार है – **"नपुंसकात् स्यामोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२.८३) **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२.८४) तथा **"अन्यादेस्तु तुः"** (२.८५)।

"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च" (२३६) सूत्र से सि और अम् का लोप और मु का आगम होता है तथा **"अन्यादेस्तु तुः"** (२४१) सूत्र से सि और अम् का लोप और तु का आगम होता है। किन्तु **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तं"** (२४५) सूत्र से मात्र लोप होगा, आगम नहीं।

उपर्युक्त सूत्र के द्वारा सम्पूर्ण नपुंसकलिंग में सि और अम् का लोप होता है, और लोप होने पर उसके आश्रित होने वाला कार्य नहीं होता है। परन्तु **"अकारादसम्बुद्धौ मुश्च"** (२३६) सूत्र में अकारान्त नपुंसकलिंग का कथन होने से, अकारान्त भिन्न स्वर (इकारान्त–उकारान्त आदि) तथा व्यञ्जन से परे नपुंसकलिंग सम्बन्धी सि और अम् का लोप अनिवार्य रूप से होता है।

वारि – वारि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"वारि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारि शब्द से औ आदि स्वरवाली विभक्ति के आने पर नु का आगम करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.८६)विधिसूत्रम् – नामिनः स्वरे।।२४६।।

नाम्यन्तान्नपुंसकलिङ्गान्नुरागमो भवति स्वरे परे। औरीमिति ईत्वं णत्वञ्च। वारिणी। जसि पूर्ववत् नुरागमः। सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान् इति न्यायात्। उक्तञ्च।

अर्थ – स्वर परे होने पर नाम्यन्त नपुंसकलिंग से परे नु का आगम होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात् अवर्ण को छोडकर बारह स्वर नामिसञ्ज्ञक कहलाते हैं। इ आदि स्वर जिनके अन्त में हो वे नाम्यन्त कहलाते हैं।

वारिणी – वारि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश हो कर "वारि + ई" इस स्थिति में, **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "वारि + न् ई" इस स्थिति में, **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"वारिणी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका – "वारि न् ई" यहाँ **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ क्यों नहीं किया।

समाधान – हे जिज्ञासु आप व्याकरण, उपयोग रहित पढ़ रहे हो। अन्यथा आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न होनी ही नहीं चाहिये थी। क्योंकि नपुंसकलिंग में जस्–शस् के स्थान पर होने वाले शि आदेश की ही घुट् सञ्ज्ञा होती है। घुट् के सञ्ज्ञा के अभाव में दीर्घ कैसे हो सकता है।

बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "वारि + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३९) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "वारि + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्रों से युगपत् नु का आगम प्राप्त होने पर **"सामान्य–विशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान्"** अर्थात् सामान्य और विशेष में विशेष विधि बलवान् होती है। उपर्युक्त परिभाषा के कारण **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम होगा। क्योंकि **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र सामान्य है और **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र विशेष है। कहा भी है।

सामान्यशास्त्रतो नूनं, विशेषो बलवान् भवेत्।
परेण पूर्वबाधो वा, प्रायशो दृश्यतामिह ।।१३।।

धुट्स्वराद् घुटि नुः इत्यनेन सूत्रेण नुरागमो भवतीत्यर्थः।।

श्लोकार्थ – निश्चय से सामान्यशास्त्र से विशेष शास्त्र बलवान् होते हैं। इस व्याकरण शास्त्र में प्रायः कर के पर सूत्र से पूर्वसूत्र बाधा को प्राप्त होता है।

इत्यादि परिभाषा की सहायता से **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम हो कर "वारि न् + इ" इस स्थिति में इन् की उपधा को दीर्घ करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६८)विधिसूत्रम् – इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च।।२४७।।

इन् हन् पूषन् अर्यमन् इत्येतेषामुपधाया दीर्घो भवति नपुंसकलिङ्गे जस्शसोरादेशे शौ चासम्बुद्धौ सौ च परे। वारीणि।

अर्थ – नपुंसकलिंग में जस् और शस् के स्थान पर आदेश रूप शि और सम्बुद्धि भिन्न सि परे होने पर इन्, हन्, पूषन् और अर्यमन् इन शब्दों की उपधा को दीर्घ आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र की तथा **"अन्त्वसन्तस्य चाधातोस्सौ"** (२७६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

शि केवल नपुंसकलिंग के जस्–शस् के स्थान पर होने वाला आदेश होता है। तथा सम्बुद्धि भिन्न सि व्यञ्जनान्त पुल्लिंग प्रकरण के अन्तर्गत आती है।

इन् अर्थात् जिन शब्दों के अन्त में इन् हो उन शब्दों को दीर्घ होता है।

यथा – करिन्, व्रतिन् इत्यादि।

तथा हन् जिनके अन्त में हो वे शब्द वृत्रहन् आदि कहलाते हैं। तथा पूषन् और अर्यमन् शब्द व्यक्तिवाचक हैं।

यहाँ वारि शब्द से नु का आगम होकर "वारिन्" इनन्त शब्द वन गया है।

वारीणि – वारि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "वारि + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "वारि + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से युगपत् नु का आगम प्राप्त होने पर **"सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान्"** अर्थात् सामान्य और विशेष में विशेष विधि बलवान् होती है। उपर्युक्त परिभाषा के कारण **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "वारिन् + इ" इस स्थिति में **"इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च"** (२४७) सूत्र से दीर्घ कर "वारीनि" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"वारीणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका– सम्बुद्धि भिन्न सि हो ऐसा क्यों कहा ?
समाधान – अगर सम्बुद्धि भिन्न नहीं कहते तो सम्बुद्धि की सि विभक्ति में दीर्घ हो कर **"हे व्रतीन्"** रूप बन जाता।

नोट – "वारीणि" रूप सिद्ध करने के लिये **"धुट्स्वराद्घुटि नुः"** (२४०) तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) किसी भी सूत्र से नु का आगम कर **"वारीणि"** रूप सिद्ध हो सकता था। परन्तु आम् विभक्ति के आने पर **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करते तो **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ नहीं हो पाता। अतः **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, दीर्घ हो कर **"वारीणाम्"** रूप सिद्ध होगा।

वारि शब्द से सम्बोधन के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, सि के लोप होने पर, सि के निमित्त होने वाले कार्य को वैकल्पिक करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)विधिसूत्रम् – नाम्यन्तचतुरां वा।।२४८।।

नाम्यन्तस्य नपुंसकलिङ्गस्य चत्वार् शब्दस्य च यदुक्तं कार्यं तद् वा भवति सम्बुद्धौ परे। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणं न याति इति न्यायात्। हे वारि, हे वारे। हे वारिणी। हे वारीणि। पुनरपि–वारि। वारिणी। वारीणि। वारिणा। वारिभ्याम्। वारिभिः। वारिणे। वारिभ्याम्। वारिभ्यः। वारिणः। इत्यादि। आमि। "नामिनः स्वरे" प्राप्ते सति सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान् इति न्यायात् आमि च नुरिति नुरागमो भवति। दीर्घमामि सनौ। वारीणाम्। वारिणि। वारिणोः। वारिषु।

अस्थि–दधि–सक्थि–अक्षिशब्दानां प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत्। अस्थि। अस्थिनी। अस्थीनि। पुनरपि–अस्थि। अस्थिनी अस्थीनि। टादौ –

अर्थ – सम्बुद्धि परे होने पर नाम्यन्त और नपुंसकलिंग के चत्वार् शब्द के स्थान पर जो कार्य कहा है, वह कार्य विकल्प से होता है।

अर्थात् – **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** की प्राप्ति नहीं होगी। परिभाषा के अभाव में **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से एकार भी नहीं होने पर **"हे वारि"** रूप बनेगा। विकल्प के अभाव में **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से एकार हो कर **"हे वारे"** प्रयोग सिद्ध होगा।

हे वारि, हे वारे – वारि शब्द से सम्बुद्धि विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप कर, **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** के कारण **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार की प्राप्ति का **"नाम्यन्तचतुरां वा"** (२४८) सूत्र द्वारा परिभाषा का वैकल्पिक निषेध होने पर **"हे वारि"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश करने पर **"हे वारे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शेष रूप पूर्ववत् जानना चाहिये। स्वर वाली विभक्तियों में नु का आगम कर विभक्तियाँ जोड़ने से तथा नकार को णकार आदेश कर रूप सिद्ध हो जाते हैं।

वारिणा – वारि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "वारि + आ" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"वारिणा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारिभ्याम् – वारि शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"वारिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारिभिः – वारि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "वारि + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"वारिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारिणे – वारि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "वारि + ए" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"वारिणे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारिभ्यः – वारि शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "वारि + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो करने पर **"वारिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारिणः – वारि शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "वारि + अस्" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"वारिणः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारिणोः – वारि शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "वारि + ओस्" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"वारिणोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारीणाम् – वारि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर **"नामिनः स्वरे"** (२४६) तथा **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र की युगपत् प्राप्ति होने पर, **"सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान्"** परिभाषा की सहायता से **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "वारि + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ कर, "वारीनाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"वारीणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारिणि – वारि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "वारि + इ" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "वारि न् + इ" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"वारिणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारिषु – वारि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"**(१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"वारिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वारि शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
सम्बोधन	हे वारे, वारि	हे वारिणी	हे वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पंचमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु

अब अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (ऊरु, जंघा), अक्षि (आँख), शब्द के प्रयोग सिद्ध करते हैं। अन्य इकारान्त की तरह इन चारों शब्दों में कुछ विशेषता है।

अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि शब्द के रूप प्रथमा–द्वितीया विभक्तियों में वारि शब्दवत् ही रहेंगे। यथा– अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि इत्यादि।

अस्थि – अस्थि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"अस्थि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थिनी – अस्थि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश कर, "अस्थि + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"अस्थिनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थीनि – अस्थि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "अस्थि + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३९) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "अस्थि + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्रों से युगपत् नु का आगम प्राप्त होने पर, **"सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान्"** अर्थात् सामान्य और विशेष में विशेष विधि बलवान् होती है। उपर्युक्त परिभाषा के कारण **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "अस्थिन् + इ" इस स्थिति में **"इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च"** (२४७) सूत्र से दीर्घ कर **"अस्थीनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे अस्थि, हे अस्थे – अस्थि शब्द से सम्बुद्धि विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर, **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** के कारण **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश की प्राप्ति का **"नाम्यन्तचतुरां वा"** (२४८) सूत्र द्वारा, परिभाषा का वैकल्पिक निषेध होने पर **"हे अस्थि"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश करने पर **"हे अस्थे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थि शब्द से टा, ङे, ङसि, ङस् आदि स्वरान्त विभक्ति के आने पर अस्थि के इकार के स्थान पर अन् आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६०)विधिसूत्रम् – अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ।।२४६।।

नपुंसकलिङ्गानामस्थ्यादीनामन्तो न् भवति टादौ स्वरे परे।

अर्थ – टा आदि स्वर परे होने पर, नपुंसकलिंग के अस्थि, दधि, सक्थि, तथा अक्षि इत्यादि शब्दों के इकार के स्थान पर अन् आदेश होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र की तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अस्थि आदि शब्दों के अन्त को अन् आदेश करने पर अस्थन्, दधन्, सक्थन् और अक्षन् इत्यादि शब्द बन जाते हैं।

"अस्थन् + आ" यहाँ अन् के अकार का लोप तथा अलुप्तवत् कहने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३०)विधिसूत्रम् – अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ ।।२५०।।

अवमसंयोगात्परस्य अनो कारस्य लोपो भवति अघुटि स्वरे परे स चालुप्तवद्भवति पूर्वस्य वर्णस्य विधौ कर्तव्ये। अस्थ्ना। अस्थिभ्याम्। अस्थिभिः। अस्थ्ने। अस्थिभ्याम्। अस्थिभ्यः। अस्थ्नः।

अर्थ – अघुट् स्वर परे होने पर वकारान्त और मकारान्त संयोग से भिन्न परे अन् के अकार का लोप होता है और पूर्व वर्ण की विधि करने पर वह लोप अलुप्तवत् होता है।

भावार्थ – नपुंसकलिंग में शि की घुट् संज्ञा होती है। अतः टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम् और ङि विभक्तियाँ, अघुट् स्वर वाली विभक्तियाँ कहलायेंगी।

नपुंसकलिंग से भिन्न लिंगों में **"पंचादौ घुट्"** (१५६) सूत्र से सि, औ, जस् अम् और औ की घुट् संज्ञा होती है। अतः नपुंसकलिंग से भिन्न, लिंगों में शस् आदि अघुट् विभक्तियाँ कहलाती हैं।

शंका – लोप को अलुप्तवत् क्यों कहाँ ?

समाधान – अस्थि शब्द को **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से अस्थि आदि शब्दों के अन्त को अन् आदेश कर, "अस्थन् + आ" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अकार का लोप हो कर "अस्थ्न्" इस स्थिति मे, **"संयोगादेर्धुटः"** (२७३) सूत्र से सकार के संयोग के आदि में होने से लोप की प्राप्ति थी। परन्तु सूत्रकार का कथन है, कि वह लोप अलुप्तवत् होता है अर्थात् लोप होने पर भी वह अलोपवत् रहता है। अलोपवत् होने से सकार संयोग के आदि में भी नहीं रहेगा और सकार संयोग के आदि में नहीं होने से **"संयोगादेर्धुटः"** (२७३) सूत्र से लोप भी नहीं होगा। इसलिये लोप को अलुप्तवत् कहा है।

अस्थ्ना –अस्थि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर "अस्थि + टा" इस स्थिति में **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश हो कर "अस्थन् + आ" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप हो कर **"अस्थ्ना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थिभ्याम् – अस्थि शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"अस्थिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थिभिः – अस्थि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "अस्थि + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अस्थिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थ्ने – अस्थि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "अस्थि + ए" इस स्थिति में **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश हो कर "अस्थन् + ए" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप हो कर **"अस्थ्ने"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थिभ्यः – अस्थि शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "अस्थि + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अस्थिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थ्नः – अस्थि शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर "अस्थन् + अस्" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप कर, "अस्थ्न् + अस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अस्थ्नः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थ्नोः – अस्थि शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, "अस्थन् + ओस्" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप कर, "अस्थ्न् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अस्थ्नोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थ्नाम् – अस्थि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "अस्थि + आम्" इस स्थिति में **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, "अस्थन् + आम्" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप हो कर **"अस्थ्नाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शंका– वकारान्त और मकारान्त संयोग से भिन्न हो ऐसा क्यों कहा ?

समाधान – अगर वकारान्त और मकारान्त संयोग से भिन्न शब्द नहीं कहते तो वकारान्त और मकारान्त संयोग वाले शब्दों के भी अकार का लोप हो जाता। **यथा** – पर्वन् शब्द में वकार का तथा चर्मन् शब्द में मकार का संयोग है। इन दोनों शब्दों से शस् आदि विभक्ति के आने पर भी, अकार का लोप हो जाता।

अस्थि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, अस्थन् के अकार का वैकल्पिक लोप करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.१३१)विधिसूत्रम् – ईङ्योर्वा।।२५१।।

अवमसंयोगात्परस्य अनो कारस्य लोपो भवति वा ईङ्योर्नपुंसकलिङ्गे औकारादेशे ईकारे सम्तम्येकवचने परतः स चालुप्तवद् भवति पूर्वस्य वर्णस्य विधौ कर्तव्ये। अस्थ्नि, अस्थनि। अस्थ्नोः। अस्थिषु। एवं दधि–सक्थि–अक्षिशब्दाः। शुचिशब्दस्य प्रथमाद्वितीययो–र्वारिशब्दवत्। शुचि। शुचिनी। शुचीनि। सम्बुद्धावविशेषः। पुनरपि–शुचि। शुचिनी। शुचीनि।

अर्थ – नपुंसकलिंग में औकार के स्थान पर ईकार आदेश सम्बन्धि ई तथा सप्तमी विभक्ति के एकवचन की ङि परे होने पर, वकारान्त और मकारान्त संयोग से भिन्न अन् के अकार का लोप विकल्प से होता है और पूर्व वर्ण की विधि करने पर वह लोप अलुप्तवत् होता है।

नोट – उपर्युक्त सूत्र में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अर्थात् – नपुंसकलिंग में "औ" के स्थान पर **"औरीम्"** सूत्र से "ई" आदेश हुआ है। उस "ई" और ङि के परे होने पर अन् के अकार का लोप विकल्प से होता है।

व्यञ्जनान्त नपुंसकलिंग में स्थित नामन् आदि शब्दों से औ विभक्ति के आने पर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औकार के स्थान पर ईकार आदेश करने पर, उपर्युक्त सूत्र से अन् के अकार का लोप विकल्प से होगा।

अस्थ्नि, अस्थनि – अस्थि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "अस्थि + इ" इस स्थिति में **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से अस्थि के इकार के स्थान पर अन् आदेश हो कर **"ईङ्योर्वा"** (२५१) सूत्र द्वारा विकल्प से अन् के अकार का लोप कर, **"अस्थ्नि"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"अस्थनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अस्थि (हड्डी) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि
सम्बोधन	हे अस्थि, अस्थे	हे अस्थिनी	हे अस्थीनि
द्वितीया	अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि
तृतीया	अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभिः
चतुर्थी	अस्थ्ने	अस्थिभ्याम्	अस्थिभ्यः
पंचमी	अस्थ्नः	अस्थिभ्याम्	अस्थिभ्यः
षष्ठी	अस्थ्नः	अस्थ्नोः	अस्थ्नाम्
सप्तमी	अस्थ्नि, अस्थनि	अस्थ्नोः	अस्थिषु

इसी प्रकार दधि (दही), सक्थि (ऊरु, जंघा), अक्षि (आँख) आदि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

दधि (दही) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
सम्बोधन	हे दधि, दधे	हे दधिनी	हे दधीनि
द्वितीया	दधि	दधिनी	दधीनि
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः

पंचमी	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
षष्ठी	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
सप्तमी	दध्नि, दधिनि	दध्नोः	दधिषु

सक्थि (ऊरु, जंघा) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सक्थि	सक्थिनी	सक्थीनि
सम्बोधन	हे सक्थि, हे सक्थे	हे सक्थिनी	हे सक्थीनि
द्वितीया	सक्थि	सक्थिनी	सक्थीनि
तृतीया	सक्थ्ना	सक्थिभ्याम्	सक्थिभिः
चतुर्थी	सक्थ्ने	सक्थिभ्याम्	सक्थिभ्यः
पंचमी	सक्थ्नः	सक्थिभ्याम्	सक्थिभ्यः
षष्ठी	सक्थ्नः	सक्थ्नोः	सक्थ्नाम्
सप्तमी	सक्थ्नि, सक्थिनि	सक्थ्नोः	सक्थिषु

अक्षि – अक्षि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"अक्षि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्षिणी – अक्षि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ईकार आदेश कर "अक्षि + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "अक्षिनी" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"अक्षिणी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्षीणि – अक्षि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "अक्षि + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "अक्षि + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्रों से युगपत् नु का आगम प्राप्त होने पर, **"सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान्"** अर्थात् सामान्य और विशेष में विशेष विधि बलवान् होती है। उपर्युक्त परिभाषा के कारण

"धुट्स्वराद् घुटि नुः" (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "अक्षिन् + इ" इस स्थिति में **"इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च"** (२४७) सूत्र से दीर्घ कर, "अक्षीनि" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"अक्षीणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

हे अक्षि, हे अक्षे – अक्षि शब्द से सम्बुद्धि विभक्ति के एकवचन में सि विभक्ति के आने पर **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर, **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** के कारण **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश की प्राप्ति का **"नाम्यन्तचतुरां वा"** (२४८) सूत्र द्वारा, परिभाषा का वैकल्पिक निषेध होने पर **"हे अक्षि"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्"** परिभाषा की सहायता से **"सम्बुद्धौ च"** (१६४) सूत्र से इकार के स्थान पर एकार आदेश करने पर **"हे अक्षे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्ष्णा – अक्षि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर "अक्षि + टा" इस स्थिति में **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश हो कर "अक्षन् + आ" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप कर, "अक्ष्न् + आ" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"अक्ष्णा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्षिभ्याम् – अक्षि शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"अक्षिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्षिभिः – अक्षि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "अक्षि + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अक्षिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्ष्णे – अक्षि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर "अक्षि + ए" इस स्थिति में **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर, अन् आदेश कर, "अक्षन् + ए" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप कर, "अक्ष्न् + ए" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"अक्ष्णे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्षिभ्यः — अक्षि शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "अक्षि + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अक्षिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्ष्णः — अक्षि शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, "अक्षन् + अस्" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप कर, "अक्ष्न् + अस्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अक्ष्णः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्ष्णोः — अक्षि शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, "अक्षन् + ओस्" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप कर, "अक्ष्न् + ओस्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अक्ष्णोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्ष्णाम् — अक्षि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "अक्षि + आम्" इस स्थिति में **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से इकार के स्थान पर अन् आदेश कर "अक्षन् + आम्" इस स्थिति में **"अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ"** (२५०) सूत्र से अन् के अकार का लोप कर, "अक्ष्न् + आम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर, **"अक्ष्णाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्ष्णि, अक्षणि – अक्षि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर "अक्षि + इ" इस स्थिति में **"अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र से अक्षि के इकार के स्थान पर अन् आदेश कर, "अक्षन् + इ" इस स्थिति में **"ईङ्योर्वा"** (२५१) सूत्र द्वारा विकल्प से अन् के अकार का लोप कर, "अक्ष्न् + इ" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर, **"अक्ष्णि"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"अक्षणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अक्षि (आँख) शब्द की रूपमाला यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
सम्बोधन	हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि
द्वितीया	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृतीया	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
चतुर्थी	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
पंचमी	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
षष्ठी	अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
सप्तमी	अक्ष्णि, अक्षिणि	अक्ष्णोः	अक्षिषु

अब नपुंसकलिंग में इकारान्त शुचि शब्द की प्रक्रिया सिद्ध करते हैं।

शुचि – शुचि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"शुचि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचिनी – शुचि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश कर, "शुचि + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"शुचिनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचीनि – शुचि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "शुचि + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "शुचि + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्रों से युगपत् नु का आगम प्राप्त होने पर **"सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान्"** अर्थात् सामान्य और विशेष में विशेष विधि बलवान् होती है। उपर्युक्त परिभाषा के कारण **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "शुचिन् + इ" इस स्थिति में **"इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च"** (२४७) सूत्र से दीर्घ करने पर **"शुचीनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, पुंवत् कार्य करने के लिए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(२.६१)विधिसूत्रम् – टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा।।२५२।।

नाम्यन्तं भाषितपुंस्कं नपुंसकलिङ्गं टादौ स्वरे वा पुंवद्भवति।

अर्थ – टा आदि स्वर परे होने पर जो शब्द पुल्लिंग में भी प्रयुक्त होता हो ऐसे नाम्यन्त नपुंसकलिंग शब्द को विकल्प से पुंवद् होता है। अर्थात् पुल्लिंग के समान कार्य होता है।

नोट – **"कलाप–व्याकरण"** में **"भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** सूत्र है। **"अस्थिदधिसक्थ्य–क्ष्णामनन्तष्टादौ"** (२४६) सूत्र की अनुवृत्ति आने से "टादौ" का ग्रहण स्वतः हो जाता है।

शंका – भाषितपुंस्क किसे कहते हैं ?
समाधान – जिस शब्द का प्रयोग पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों जगह हो और अर्थ भी दोनों लिंगो में समान हो उस शब्द को भाषितपुंस्क कहते हैं।

निम्नलिखित श्लोक में भाषितपुंस्क की परिभाषा और उदाहरण को कहते हैं।

यन्निमित्तमुपादाय, पुंसि लिङ्गे प्रवर्त्तते ।
क्लीबवृत्तौ तदेव स्यात्, तद्धि भाषितपुंसकम् ।।१४।।

शुचि भूमिगतं तोयं, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचिर्धर्मपरो राजा, ब्रह्मचारी सदा शुचिः ।।१५।।

श्लोकार्थ – जिस निमित्त (अर्थ) को लेकर पुल्लिंग में शब्द प्रवृत्त होता है, यदि नपुंसकलिंग में प्रवृत्ति का भी वही निमित्त (अर्थ) हो तो उस शब्द को भाषितपुंस्क कहा जाता है। यथा – भूमि से उत्पन्न हुआ जल शुद्ध है, पतिव्रता नारी पवित्र है, धर्मनिष्ठ राजा पवित्र है, बह्मचारी सदा पवित्र है।। १४–१५।।

यहाँ शुचि शब्द विशेषण के कारण तीनों लिंगों में प्रवृत हुआ है।

शुच्या शुचिना। शुचिभ्याम्। शुचिभिः। शुचये, शुचिने। शुचिभ्याम्। शुचिभ्यः। इत्यादि।

शुचिना – शुचि शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "शुचि + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से शुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से टा के स्थान पर ना आदेश कर, **"शुचिना"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"शुचिना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट – संस्कृत टीकाकार ने **"शुच्या"** ये जो तृतीयान्त पद रखा है उसकी आवश्यकता नहीं है।

शुचिभ्याम् – शुचि शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"शुचिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचिभिः – शुचि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"शुचिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचये, शुचिने – शुचि शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "शुचि + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से शुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "शुचे + ए" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर अय् आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"शुचये"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"शुचिने"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचिभ्यः – शुचि शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"शुचिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचेः, शुचिनः – शुचि शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि – ङस् विभक्ति के आने पर, "शुचि + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से शुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक इकार के स्थान पर एकार तथा अस् के अकार का लोप कर, "शुचे + स्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की

सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"शुचेः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"शुचिनः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुच्योः, शुचिनोः – शुचि शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "शुचि + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से शुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "शुच् य् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर, **"शुच्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"शुचिनोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचीनाम् – शुचि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "शुचि + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से शुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "शुचि + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से इकार के स्थान पर ईकार दीर्घ आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"शुचीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "शुचि + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से इकार के स्थान पर ईकार दीर्घ आदेश हो कर **"शुचीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचौ, शुचिनि – शुचि शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "शुचि + ङि" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से, **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से शुचि शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से ङि तथा इकार के स्थान पर "औकार" आदेश हो कर, "शुच् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"शुचौ"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"शुचिनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचिषु – शुचि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप कर, "शुचि + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"शुचिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

शुचि शब्द की रूपमाला यथा –

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
सम्बोधन	हे शुचे, हे शुचि	हे शुचिनी	हे शुचीनि
द्वितीय	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
तृतीया	शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभिः
चतुर्थी	शुचये, शुचिने	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
पंचमी	शुचेः, शुचिनः	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
षष्ठी	शुचेः, शुचिनः	शुच्योः, शुचिनोः	शुचीनाम्
सप्तमी	शुचौ, शुचिनि	शुच्योः, शुचिनोः	शुचिषु

द्विशब्दस्य तु भेदः। त्यदाद्यत्वं औरीमिति ईत्वं च। द्वे। हे द्वे। द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः। त्रिशब्दस्य जस्शसोर्वारिशब्दवत्। त्रीणि। त्रीणि। त्रिभिः। अन्यत्र पुल्लिङ्गवत् इति इकारान्ताः।

द्वि शब्द में भेद है। द्वि शब्द के प्रयोग द्विवचन में ही चलते हैं।

द्वौ – द्वि शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, "द्वि + औ" इस स्थिति में **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश कर, "द्व् + अ" यहाँ **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "द्व + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ईकार आदेश कर तथा **"अवर्ण इवर्णे ए"** (२७) सूत्र से सन्धि हो कर **"द्वे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वाभ्याम् – द्वि शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, "द्वि + भ्याम्" इस स्थिति में **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश कर "द्व् + अ" यहाँ **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "द्व + भ्याम्" इस स्थिति में **"अकारो दीर्घं घोषवति"** (१४०) सूत्र से दीर्घ हो कर **"द्वाभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वयोः – द्वि शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्तियों के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "द्वि + ओस्" इस स्थिति में **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४४) सूत्र से इकार के स्थान पर यकार आदेश की प्राप्ति थी। परन्तु **"त्यदादीनाम विभक्तौ"** (१७२) सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश कर "द्व् + अ" यहाँ **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से "द्व + ओस्" इस स्थिति में **"ओसि च"** (१४६) सूत्र से अकार के स्थान पर एकार आदेश कर, "द्वे + ओस्" इस स्थिति में **"ए अय्"** (४८) सूत्र से एकार के स्थान पर, अय् आदेश कर, "द्वयोस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"द्वयोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

द्वि शब्द की रूपमाला यथा–

द्वे, द्वे, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः।

ईकारान्तो नपुंसकलिङ्गो ग्रामणीशब्दः। तस्य स्वरो ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वत्वे शुचिशब्दवत्। टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद्भावो भवति विकल्पेन। ग्रामणि। ग्रामणिनी। ग्रामणीनि। पुनरपि ग्रामणि। ग्रामणिनी। ग्रामणीनि। ग्रामणिना। अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ इति यत्वम्। ग्रामण्या। ग्रामणिभ्याम्। ग्रामणिभिः। ग्रामणिने। ग्रामणिभ्याम्। ग्रामणिभ्यः। इत्यादि। आमि नुरागमः। दीर्घमामि सनौ इति दीर्घः। ग्रामणीनाम्। पुंवद्भावे। ग्रामण्याम् ग्रामणिनि। पुंवति–नियो ङिराम् इति आम्। यत्वं पूर्ववत्। ग्रामण्याम्। ग्रामणिनोः, ग्रामण्योः। ग्रामणिषु। सम्बोधने–नाम्यन्तचतुरां वा। हे ग्रामणे, हे ग्रामणि। हे ग्रामणिनी। हे ग्रामणीनि। एवमग्रणी–सेनानीप्रभृतयः। इति ईकारान्ताः।

त्रि शब्द के रूप सिद्ध करते हैं। त्रि शब्द बहुवचनान्त है। अतः त्रि शब्द के प्रयोग बहुवचन में ही चलते हैं। त्रि शब्द के रूप जस् – शस् विभक्ति में वारि शब्दवत् चलते हैं। शेष पुल्लिंग के समान चलते हैं।

त्रीणि – त्रि शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्– शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्–शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर, "त्रि + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "त्रिन् + इ" इस स्थिति में **"इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च"** (२४७) सूत्र से इकार के स्थान पर, दीर्घ ईकार आदेश कर, "त्रीन् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"त्रीणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रिभिः – त्रि शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "त्रि + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"त्रिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रिभ्यः – त्रि शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "त्रि + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"त्रिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रयाणाम् – त्रि शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "त्रि + आम्" इस स्थिति में **"त्रेस्त्रयश्च"** (१७३) सूत्र से त्रि के स्थान पर त्रय आदेश कर तथा नु का आगम हो कर अनुबन्ध लोप करने पर, "त्रय न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१४६) सूत्र से लिंगान्त अकार को दीर्घ आदेश कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"त्रयाणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रिषु – त्रि शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर "त्रि + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"त्रिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

त्रि शब्द की रूपमाला यथा–

त्रीणि। त्रीणि। त्रिभिः। त्रिभ्यः। त्रिभ्यः। त्रयाणाम्। त्रिषु।

।। इस प्रकार इकारान्त नपुंसकलिंग का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

अब ईकारान्त नपुंसकलिंग में ग्रामणी शब्द का विवेचन करते हैं। ग्रामणी शब्द भाषितपुंस होने से तृतीया आदि स्वरान्त विभक्तियों में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व इकार आदेश हो कर दो – दो प्रयोग सिद्ध होंगे।

ग्रामणि – ग्रामणी शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर "ग्रामणि + स्–अम्" इस स्थिति में **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"ग्रामणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामणिनी – ग्रामणी शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश कर "ग्रामणि + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"ग्रामणिनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामणीनि – ग्रामणी शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर, **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस् – शस् के स्थान पर शि आदेश कर, "ग्रामणि + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "ग्रामणिन् + इ" इस स्थिति में **"इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च"** (२४७) सूत्र से दीर्घ करने पर **"ग्रामणीनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामण्या, ग्रामणिना – ग्रामणी शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "ग्रामणी + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४०) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश करने पर, **"ग्रामण्या"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर, "ग्रामणि + आ" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "ग्रामणि + न् आ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"ग्रामणिना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामणिभ्याम् – ग्रामणी शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर **"ग्रामणिभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामणिभिः – ग्रामणी शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "ग्रामणी + भिस्" इस स्थिति में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर, "ग्रामणि + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"ग्रामणिभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामण्ये, ग्रामणिने – ग्रामणी शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "ग्रामणी + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४०) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "ग्रामण्य् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ग्रामण्ये"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"ग्रामणिने"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामणिभ्यः – ग्रामणी शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"ग्रामणिभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामण्यः, ग्रामणिनः – ग्रामणी शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर "ग्रामणी + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४०) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "ग्रामण्य् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"ग्रामण्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व इकार आदेश कर तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"ग्रामणिनः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामण्योः, ग्रामणिनोः – ग्रामणी शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "ग्रामणी + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४०) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश कर, ग्रामण्य् + अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"ग्रामण्योः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व इकार आदेश कर तथा **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"ग्रामणिनोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामणीनाम् – ग्रामणी शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "ग्रामणी + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, **"ग्रामणीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर तथा **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ आदेश करने पर **"ग्रामणीनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामण्याम्, ग्रामणिनि – ग्रामणी शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "ग्रामणी + इ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः"** (४०) सूत्र से ईकार के स्थान पर यकार आदेश कर, "ग्रामण्य् + इ" इस स्थिति में **"नियो ङिराम्"** (१६१) सूत्र से "ङि" के स्थान पर आम् आदेश कर, "ग्रामण्य् + आम्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"ग्रामण्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर, **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप करने पर **"ग्रामणिनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामणिषु – ग्रामणी शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप कर, "ग्रामणी + सु" इस स्थिति में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ईकार के स्थान पर, ह्रस्व इकार आदेश कर, "ग्रामणि + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश करने पर **"ग्रामणिषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

ग्रामणी शब्द की रूपमाल यथा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ग्रामणि	ग्रामणिनी	ग्रामणीनि
सम्बोधन	हे ग्रामणि हे ग्रामणे	हे ग्रामणिनी	हे ग्रामणीनि
द्वितीया	ग्रामणि	ग्रामणिनी	ग्रामणीनि

तृतीया	ग्रामण्या ग्रामणिना	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभिः
चतुर्थी	ग्रामण्ये ग्रामणिने	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभ्यः
पंचमी	ग्रामण्यः ग्रामणिनः	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभ्यः
षष्ठी	ग्रामण्यः ग्रामणिनः	ग्रामण्योः ग्रामणिनोः	ग्रामण्याम् ग्रामणीनाम्
सप्तमी	ग्रामण्याम् ग्रामणिनि	ग्रामण्योः ग्रामणिनोः	ग्रामणिषु

।। इस प्रकार ईकारान्त नपुंसकलिंग का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

उकारान्तो नपुंसकलिङ्गो वस्तुशब्दः। स च वारि शब्दवत्। वस्तु। वस्तुनी। वस्तूनि। सम्बोधने – हे वस्तु, हे वस्तो। हे वस्तुनी। हे वस्तूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे परे नित्यं नपुंसकम्। आमि परे–आमि च नुः। दीर्घमामि सनौ इति दीर्घः। वस्तूनाम्। वस्तुनि। वस्तुनोः। वस्तुषु।

मृदुशब्दस्य प्रथमा–द्वितीययोर्वारिशब्दवत्। मृदु। मृदुनी। मृदूनि। पुनरपि टादौ स्वरे परे भाषितपुंस्कं पुंवद् वा इति। विकल्पेन पुंवद्भावः। शुचिवत्। मृदुना। मृदुभ्याम्। मृदुभिः। इत्यादि। एवं पटु–लघु–गुरुप्रभृतयः। इत्युकारान्ताः।

अब उकारान्त नपुंसकलिंग में वस्तु शब्द का विवेचन करते हैं।

वस्तु – वस्तु शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"वस्तु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तुनी – वस्तु शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश कर, "वस्तु + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"वस्तुनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तूनि – वस्तु शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "वस्तु + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "वस्तु + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "वस्तुन् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ करने पर **"वस्तूनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तुना – वस्तु शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "वस्तु + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से वस्तु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से टा के स्थान पर ना आदेश हो कर **"वस्तुना"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवत् के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"वस्तुना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तुभ्याम् – वस्तु शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"वस्तुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तुभिः – वस्तु शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"वस्तुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तवे, वस्तुने – वस्तु शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "वस्तु + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से वस्तु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा आदेश कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक उकार के स्थान पर ओकार हो कर, "वस्तो + ए" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"वस्तवे"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"वस्तुने"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तुभ्यः – वस्तु शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"वस्तुभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तोः, वस्तुनः – वस्तु शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर "वस्तु + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से वस्तु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक उकार के स्थान पर ओकार तथा अस् के अकार का लोप कर, "वस्तो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"वस्तोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"वस्तुनः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्त्वोः, वस्तुनोः – वस्तु शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "वस्तु + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से वस्तु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"वस्त्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवत् के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"वस्तुनोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तूनाम् – वस्तु शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "वस्तु + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से वस्तु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "वस्तु + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से इकार के स्थान पर ईकार दीर्घ आदेश हो कर **"वस्तूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "वस्तु + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से इकार के स्थान पर ईकार दीर्घ आदेश हो कर **"वस्तूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तौ, वस्तुनि – वस्तु शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "वस्तु + ङि" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से वस्तु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से ङि तथा उकार के स्थान पर "औकार" आदेश हो कर, "वस्त् + औ" इस स्थिति में

"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्" (२५) सूत्र की सहायता से **"वस्तौ"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"वस्तुनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तुषु – वस्तु शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "वस्तु + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"वस्तुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

वस्तु शब्द की रूपमाल यथा –

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
सम्बोधन	हे वस्तु, वस्तो	हे वस्तुनी	हे वस्तूनि
द्वितीया	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
तृतीया	वस्तुना	वस्तुभ्याम्	वस्तुभिः
चतुर्थी	वस्तुने	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
पंचमी	वस्तुनः	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
षष्ठी	वस्तुनः	वस्तुनोः	वस्तूनाम्
सप्तमी	वस्तुनि	वस्तुनोः	वस्तुषु

अब उकारान्त नपुंसकलिंग में मृदु शब्द का विवेचन करते हैं।

मृदु – मृदु शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"मृदु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदुनी – मृदु शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश हो कर "मृदु + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"मृदुनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदूनि –मृदु शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "मृदु + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर

"मृदु + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "मृदुन् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ करने पर **"मृदूनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदुना – मृदु शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "मृदु + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मृदु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से टा के स्थान पर ना आदेश हो कर **"मृदुना"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"मृदुना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदुभ्याम् – मृदु शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"मृदुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदुभिः – मृदु शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"मृदुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदवे, मृदुने – मृदु शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "मृदु + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मृदु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञक उकार के स्थान पर ओकार कर, "मृदो + ए" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"मृदवे"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"मृदुने"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदुभ्यः – मृदु शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"मृदुभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदोः, मृदुनः – मृदु शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मृदु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** सूत्र से अग्नि सञ्ज्ञक उकार के स्थान पर ओकार तथा अस् के अकार का लोप कर, "मृदो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश

करने पर **"मृदोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"मृदुनः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृद्वोः, मृदुनोः – मृदु शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "मृदु + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मृदु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा कर, **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश कर, "मृद् व् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"मृद्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवत् के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"मृदुनोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदूनाम् – मृदु शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "मृदु + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मृदु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "मृदु + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से उकार के स्थान पर ऊकार दीर्घ आदेश हो कर **"मृदूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवत् के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "मृदु + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से इकार के स्थान पर ईकार दीर्घ आदेश हो कर **"मृदूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदौ, मृदुनि – मृदु शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "मृदु + ङि" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से मृदु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से ङि तथा उकार के स्थान पर "औकार" आदेश हो कर, "मृद् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"मृदौ"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"मृदुनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदुषु – मृदु शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप कर, "मृदु + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"मृदुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

मृदु शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	मृदु	मृदुनी	मृदूनि
सम्बोधन	हे मृदो, मृदु	हे मृदुनी	हे मृदूनि
द्वितीया	मृदु	मृदुनी	मृदूनि
तृतीया	मृदुना	मृदुभ्याम्	मृदुभिः
चतुर्थी	मृदवे, मृदुने	मृदुभ्याम्	मृदुभ्यः
पंचमी	मृदोः, मृदुनः	मृदुभ्याम्	मृदुभ्यः
षष्ठी	मृदोः, मृदुनः	मृद्वोः, मृदुनोः	मृदूनाम्
सप्तमी	मृदौ, मृदुनि	मृद्वोः, मृदुनोः	मृदुषु

इसी प्रकार पटु, लघु, गुरु आदि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

।। इस प्रकार नपुंसकलिंग में उकारान्त शब्दों का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

ऊकारान्तो नपुंसकलिङ्गः खलपूशब्दः। तस्य स्वरो ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वत्वे सेनानीशब्दवत्। खलपु। खलपुनी। खलपूनि। पुनरपि। टादौ भाषितपुंस्कमिति विकल्पेन यत्र पुंवद्भावस्तत्र सेनानीशब्दवत्। खलपुना, खलप्वा। खलपूभ्याम्। खलपूभिः। इत्यादि। एवं सरलू–काण्डलूप्रभृतयः। इत्यूकारान्ताः।

अब ऊकारान्त नपुंसकलिंग में खलपू शब्द का विवेचन करते हैं।

खलपू शब्द के ऊकार को **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व उकार आदेश कर मृदु शब्दवत् रूप सिद्ध होंगे। टा आदि विभक्तियों में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुल्लिंगवत् कार्य होने से **"अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ"** (१६०) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश कर, **"खलप्वा"** रूप बनेगा। पुल्लिंग के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"खलपुना"** प्रयोग सिद्ध होगा।

खलपु – खलपू शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"खलपु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपुनी – खलपू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ईकार आदेश कर, "खलपु + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"खलपुनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूनि – खलपू शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "खलपू + अस्" इस स्थिति में **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर, **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३९) सूत्र से जस् – शस् के स्थान पर शि आदेश कर, "खलपु + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "खलपुन् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ करने पर **"खलपूनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपुना – खलपू शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व ऊकार के स्थान पर, उकार आदेश कर "खलपु + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से खलपु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से टा के स्थान पर ना आदेश हो कर **"खलपुना"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"खलपुना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपुभ्याम् – खलपू शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर **"खलपुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपुभिः – खलपू शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"खलपुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपवे, खलपुने – खलपू शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर, "खलपु + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव

होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से खलपु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङे"** (१६८) सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक उकार के स्थान पर ओकार कर, "खलपो + ए" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर, "खलप् अव् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलपवे"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"खलपुने"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपुभ्यः – खलपू शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"खलपुभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपोः, खलपुनः – खलपू शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर, "खलपु + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से खलपु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङसिङसोरलोपश्च"** सूत्र से अग्निसञ्ज्ञक उकार के स्थान पर ओकार तथा अस् के अकार का लोप कर, "खलपो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"खलपोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"खलपुनः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलप्वोः, खलपुनोः – खलपू शब्द से षष्ठी–सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर, "खलपु + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से खलपु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर वकार आदेश कर, "खलप् व् + ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"खलप्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"खलपुनोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपूनाम् – खलपू शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर "खलपु + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से खलपु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "खलपु + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से उकार के स्थान पर ऊकार दीर्घ आदेश हो कर **"खलपूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, उकार का अनुबन्ध लोप कर, "खलपु + नाम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से उकार के स्थान पर ऊकार दीर्घ आदेश हो कर **"खलपूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपौ, खलपुनि – खलपू शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ऊकार के स्थान पर, ह्रस्व उकार आदेश कर, "खलपु + ङि" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"इदुदग्निः"** (१६१) सूत्र से खलपु शब्द की अग्नि सञ्ज्ञा हो कर, **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से ङि तथा उकार के स्थान पर "औकार" आदेश हो कर, "खलप् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"खलपौ"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"खलपुनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपुषु – खलपू शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, पकार का अनुबन्ध लोप कर, **"स्वरो ह्रस्वो नपुंसके"** (२४४) सूत्र से ह्रस्व उकार आदेश कर, **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"खलपुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

खलपू शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	खलपु	खलपुनी	खलपूनि
सम्बोधन	हे खलपो खलपु	हे खलपुनी	हे खलपूनि
द्वितीया	खलपु	खलपुनी	खलपूनि

तृतीया	खलप्वा खलपूना	खलपुभ्याम्	खलपुभिः
चतुर्थी	खलप्वे खलपुने	खलपुभ्याम्	खलपुभ्यः
पंचमी	खलप्वः खलपुनः	खलपुभ्याम्	खलपुभ्यः
षष्ठी	खलप्वः खलपुनः	खलप्वोः खलपुनोः	खलपूनाम्
सप्तमी	खलप्वि खलपुनि	खलप्वोः खलपुनोः	खलपुषु

इसी प्रकार सरलू, काण्डलू आदि शब्दों के रूप जानना चाहिये।

।। इस प्रकार ऊकारान्त नपुंसकलिंग का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

ऋकारान्तो नपुंसकलिङ्गः कर्तृशब्दः। तस्य प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत्। कर्तृ। कर्तृणी। कर्तॄणि। सम्बोधने – हे कर्तृ, हे कर्तः। हे कर्तृणी। हे कर्तॄणि। पुनरपि। टादौ पुंवद्भावात् पुल्लिङ्गवद् वा। कर्त्रा कर्तृणा। कर्तृभ्याम्। कर्तृभिः। कर्त्रे, कर्तृणे। कर्तृभ्याम्। कर्तृभ्यः। कर्तुः, कर्तृणः। कर्तृभ्याम्। कर्तृभ्यः। कर्तुः, कर्तृणः। कर्त्रोः, कर्तृणोः। आमि परे नुरागमः। कर्तॄणाम्। कर्तरि, कर्तृणि। कर्त्रोः, कर्तृणोः। कर्तृषु।

बहुक्रोष्टृशब्दस्य तु भेदः। क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ इत्यादिना उर्भवति। शसि व्यञ्जने नपुंसके च इति ऋत उकारः। बहुक्रोष्टु। बहुक्रोष्टुनी। बहुक्रोष्टूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद् वा इति विकल्पेन पुंवद्भावः। अयमेकविकल्पः।

अब ऋकारान्त नपुंसकलिंग में कर्तृ (करने वाला) शब्द का विवेचन करते हैं।

कर्तृ शब्द के प्रथमा द्वितीया विभक्ति के रूप वारि शब्दवत् चलेंगे। टा आदि विभक्तियों में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुल्लिंगवत् कार्य होने से **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, **"पूर्वव्यञ्जनमुपरि"** परिभाषा की सहायता से तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"कर्त्रा"** रूप सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर **"कर्तृणा"** रूप सिद्ध होता है। नु आगम के नकार के स्थान पर **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो जाता है।

कर्तृ – कर्तृ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप हो कर **"कर्तृ"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तृणी – कर्तृ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, "कर्तृ + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश कर, "कर्तृ + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "कर्तृ + न् ई" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"कर्तृणी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तॄणि – कर्तृ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "कर्तृ + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३९) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर, "कर्तृ + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "कर्तृन् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"कर्तॄणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्रा, कर्तृणा – कर्तृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "कर्तृ + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, "कर्त् र् + आ" इस स्थिति में **"पूर्वव्यञ्जनमुपरि"** परिभाषा की सहायता से तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"कर्त्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"कर्तृणा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तृभ्याम् – कर्तृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"कर्तृभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तृभिः – कर्तृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"कर्तृभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्रे, कर्तृणे – कर्तृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "कर्तृ + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, "कर्त् र् + ए" इस स्थिति में **"पूर्वव्यञ्जनमुपरि"** परिभाषा की सहायता से तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"कर्त्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"कर्तृणे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तृभ्यः – कर्तृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्ग आदेश हो कर **"कर्तृभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तुः, कर्तृणः – कर्तृ शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर "कर्तृ + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६८) सूत्र से ऋकार तथा अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश हो कर "कर्त् उस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश हो कर **"कर्तुः"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश करने पर **"कर्तृणः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्त्रोः, कर्तृणोः – कर्तृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर "कर्तृ + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, "कर्त् र् + ओस्" इस स्थिति में **"पूर्वव्यञ्जनमुपरि"** परिभाषा की सहायता से तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के

स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"कर्त्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र द्वारा सकार के स्थान पर, विसर्जनीय आदेश करने पर **"कर्तृणोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तॄणाम् – कर्तृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "कर्तृ + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ कर, "कर्तॄ + नाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"कर्तॄणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ कर, **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"कर्तॄणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तरि, कर्तृणि – कर्तृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "कर्तृ + इ" इस स्थिति में, **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"अर्ङौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "कर्तर् + इ" इस स्थिति में, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"कर्तरि"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"कर्तृणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तृषु – कर्तृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "कर्तृ + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"कर्तृषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्तृ शब्द की रूपमाला यथा –

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तृणि
सम्बोधन	हे कर्तृ कर्तः	हे कर्तृणी	हे कतृणि
द्वितीया	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तृणि

तृतीया	कर्त्रा, कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
चतुर्थी	कर्त्रे, कर्तृणे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
पंचमी	कर्तुः, कर्तृणः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
षष्ठी	कर्तुः, कर्तृणः	कर्त्रोः, कर्तृणोः	कर्तृणाम्
सप्तमी	कर्तरि, कर्तृणि	कर्त्रोः, कर्तृणोः	कर्तृषु

बहुक्रोष्टृ शब्द में भेद है।

बहुक्रोष्टु – बहुक्रोष्टृ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि–अम् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + स् – अम्" इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + स् – अम्" इस स्थिति में **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप कर, **"बहुक्रोष्टु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टुनी – बहुक्रोष्टृ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में "औ" विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + औ" इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश हो कर "बहुक्रोष्टु + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "बहुक्रोष्टु + न् ई" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्टुनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टूनि – बहुक्रोष्टृ शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + अस्" इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "बहुक्रोष्टु + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "बहुक्रोष्टु न् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ कर, "बहुक्रोष्टू न् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५) सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्टूनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

टा आदि विभक्तियों में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से वैकल्पिक पुंवत् हो कर **"टादौ स्वरे वा"** (२०२) सूत्र से पुनः ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार होता है। दो विकल्प होने से तीन रूप बनेंगे।

(०००)विधिसूत्रम् – टादौ स्वरे वा।।२०२।।

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्वा भवति टादौ स्वरे परे। इति द्वितीयविकल्पः। इति उभयविकल्पे त्रैरूप्यम्। बहुक्रोष्टुना बहुक्रोष्ट्वा बहुक्रोष्ट्रा। बहुक्रोष्टुभ्याम्। बहुक्रोष्टुभिः। इत्यादि। सम्बोधने। हे बहुक्रोष्टु, हे बहुक्रोष्टो। हे बहुक्रोष्टुनी। हे बहुक्रोष्टूनि। इत्यादि। ऋकारऌकारॡकारान्ता एकारान्ताश्चाप्रसिद्धाः। ऐकारान्तो नपुंसकलिङ्गो अतिरैशब्दः। तस्य ह्रस्वत्वे–

बहुक्रोष्टुना, बहुक्रोष्ट्रा – बहुक्रोष्टृ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुल्लिंगवत् कार्य कर, **"टादौ स्वरे वा"** (२०२) सूत्र द्वारा ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश होने पर, "बहुक्रोष्टु + आ" इस स्थिति में **"अस्त्रियां टा ना"** (१६७) सूत्र से टा के स्थान पर ना आदेश हो कर **"बहुक्रोष्टुना"** प्रयोग सिद्ध होता है। उकार के अभाव में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, **"पूर्वव्यञ्जनमुपरि"** परिभाषा की सहायता से तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्ट्रा"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुल्लिंग के अभाव में भी **बहुक्रोष्टुना** और **"बहुक्रोष्ट्रा"** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

नोट – "बहुक्रोष्ट्वा" रूप किस प्रकार सिद्ध होता है। यह मेरी समझ में नही आया। क्योंकि नपुंसकलिंग में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम हो कर "बहुक्रोष्टुना" रूप सिद्ध होता है। दीर्घ ऊकारान्त शब्द होता तो **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से **"भाषितपुंस्क"** होने से **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से वकार आदेश कर **"बहुक्रोष्ट्वा"** रूप बन सकता था। परन्तु "बहुक्रोष्टु" ह्रस्व उकारान्त शब्द है। यह विषय अन्यत्र दृष्टव्य है।

बहुक्रोष्टुभ्याम् – बहुक्रोष्टृ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + भ्याम्" इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश करने पर, **"बहुक्रोष्टुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टुभिः – बहुक्रोष्टृ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + भिस्" इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"बहुक्रोष्टुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टुने, बहुकोष्टवे, बहुक्रोष्ट्रे – बहुक्रोष्टृ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुल्लिंगवत् कार्य कर, **"टादौ स्वरे वा"** (२०२) सूत्र द्वारा ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश होने पर, "बहुक्रोष्टु + ए" इस स्थिति में **"ङे"** (१६८) सूत्र से उकार के स्थान पर, ओकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टो + ए" इस स्थिति में **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से ओकार के स्थान पर, अव् आदेश कर, "बहुक्रोष्ट् अव् + ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्टवे"** प्रयोग सिद्ध होता है। उकार के अभाव में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, "बहुक्रोष्ट् र् + ए" इस स्थिति में **"पूर्वव्यञ्जनमुपरि"** परिभाषा की सहायता से तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्ट्रे"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + ए" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "बहुक्रोष्टु + न् ए" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्टुने** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टुभ्यः – बहुक्रोष्टृ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + भ्यस्" इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"बहुक्रोष्टुभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टुनः, बहुकोष्टोः, बहुक्रोष्टुः – बहुक्रोष्टृ शब्द से पंचमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुल्लिंगवत् कार्य कर, **"टादौ स्वरे वा"** (२०२) सूत्र द्वारा ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश होने पर, "बहुक्रोष्टु + अस्"

इस स्थिति में **"ङसिङसोरलोपश्च"** (१६६) सूत्र से उकार के स्थान पर, ओकार आदेश तथा अस् के अकार का लोप कर, "बहुक्रोष्टो + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्टोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। उकार के अभाव में **"ऋदन्तात्सपूर्वः"** (१६७) सूत्र से ऋकार और अस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + स्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर, **"बहुक्रोष्टुः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + अस्" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "बहुक्रोष्टु + न् अस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"बहुक्रोष्टुनः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्ट्वोः, बहुकोष्टुनोः, बहुक्रोष्ट्रोः – बहुक्रोष्टृ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुल्लिंगवत् कार्य कर, **"टादौ स्वरे वा"** (२०२) सूत्र द्वारा ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश होने पर, "बहुक्रोष्टु + ओस्" इस स्थिति में **"वमुवर्णः"** (४५) सूत्र से उकार के स्थान पर, वकार आदेश कर, "बहुक्रोष्ट्व् + ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर, **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्ट्वोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। उकार के अभाव में **"रमृवर्णः"** (४६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश कर, "बहुक्रोष्ट् र् + ओस्" इस स्थिति में **"पूर्वव्यञ्जनमुपरि"** परिभाषा की सहायता से तथा **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर, **"बहुक्रोष्ट्रोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + ओस्" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "बहुक्रोष्टु + न् ओस्" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"बहुक्रोष्टुनोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टूनाम्, बहुक्रोष्टॄणाम् – बहुक्रोष्टृ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुल्लिंगवत् कार्य कर, **"टादौ स्वरे वा"** (२०२) सूत्र द्वारा ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश होने पर, "बहुक्रोष्टु + आम्" इस स्थिति में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ कर, **"बहुकोष्टूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। विकल्प के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ कर, **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"बहुक्रोष्टॄणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टौ, बहुकोष्टरि, बहुक्रोष्टुनि – बहुक्रोष्टृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + इ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुल्लिंगवत् कार्य कर, **"टादौ स्वरे वा"** (२०२) सूत्र द्वारा ऋकार के स्थान पर विकल्प से उकार आदेश होने पर, "बहुक्रोष्टु + इ" इस स्थिति में **"ङिरौ सपूर्वः"** (१७१) सूत्र से उकार तथा ङि के स्थान पर, औकार आदेश कर, "बहुक्रोष्ट् + औ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्टौ"** प्रयोग सिद्ध होता है। उकार के अभाव में **"अर्डौ"** (१६६) सूत्र से ऋकार के स्थान पर अर् आदेश कर, "बहुक्रोष्टर् + इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्टरि"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + इ" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "बहुक्रोष्टु + न् इ" इस स्थिति में **"व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्"** (२५), सूत्र की सहायता से **"बहुक्रोष्टुनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टुषु – बहुक्रोष्टृ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "बहुक्रोष्टृ + सु" इस स्थिति में **"क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च"** (२०१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर उकार आदेश कर, "बहुक्रोष्टु + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"बहुक्रोष्टुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

बहुक्रोष्टृ शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बहुक्रोष्टु	बहुक्रोष्टुनी	बहुक्रोष्टूनि
सम्बोधन	हे बहुक्रोष्टु बहुक्रोष्टो	हे बहुक्रोष्टुनी	बहुक्रोष्टूनि
द्वितीया	बहुक्रोष्टु	बहुक्रोष्टुनी	बहुक्रोष्टूनि
तृतीया	बहुक्रोष्टुना बहुक्रोष्ट्रा	बहुक्रोष्टुभ्याम्	बहुक्रोष्टुभिः
चतुर्थी	बहुक्रोष्टुने बहुक्रोष्टवे बहुक्रोष्ट्रे	बहुक्रोष्टुभ्याम्	बहुक्रोष्टुभ्यः
पंचमी	बहुक्रोष्टुनः बहुक्रोष्टोः बहुक्रोष्टुः	बहुक्रोष्टुभ्याम्	बहुक्रोष्टुभ्यः
षष्ठी	बहुक्रोष्टुनः बहुक्रोष्टोः बहुक्रोष्टुः	बहुक्रोष्ट्वोः, बहुक्रोष्ट्रोः बहुक्रोष्टुनोः	बहुक्रोष्टूनाम् बहुक्रोष्टॄणाम्
सप्तमी	बहुक्रोष्टौ बहुक्रोष्टरि बहुक्रोष्टुनि	बहुक्रोष्ट्वोः, बहुक्रोष्ट्रोः, बहुक्रोष्टुनोः	बहुक्रोष्टुषु

नोट – बहुक्रोष्टृ शब्द की रूपमाला में संशय है।..।

।। इस प्रकार ऋकारान्त शब्द का विवेचन पूर्ण हुआ।।

नपुंसकलिंग में ॠकारान्त, ऌकारान्त, ॡकारान्त तथा एकारान्त शब्द अप्रसिद्ध हैं। अब ऐकारान्त नपुंसकलिंग में अतिरै शब्द का विवेचन करते हैं।

नपुंसकलिंग में अतिरै शब्द को ह्रस्व इकार आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

(०००)विधिसूत्रम् – सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे।।२५३।।

सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वादेशे सति इदुतौ भवतः। तपरकरणमसन्देहार्थम्। इति एकारस्य ऐकारस्य च ह्रस्वः इकारः। ओकारस्य औकारस्य च ह्रस्व उकारः। अतिरि। नामिनः स्वरे इति नुरागमः। अतिरिणी। अतिरीणि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद् वा इति विकल्पेन पुंवद्भावः। यत्र पुंवद्भावस्तत्र सुरैशब्दवत्। अतिरिणा, अतिराया। व्यञ्जनादौ प्रत्यये परे रैरिति आत्वम्। कुतः ? एकदेशविकृतमनन्यवत् इति न्यायात्। अतिराभ्याम्। अतिराभिः। अतिरिणे, अतिराये। अतिराभ्याम्। अतिराभ्यः। इत्यादि। इति ऐकारान्ताः।

अर्थ – सन्ध्यक्षर शब्दों को ह्रस्व इकार और उकार आदेश होता है।

इत् उत् का ग्रहण संदेह के निराकरण के लिये है। अर्थात् एकार तथा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार तथा ओकार तथा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश होता है।

अतिरि – अतिरै शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + स्–अम्" इस स्थिति में **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप करने पर **"अतिरि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरिणी – अतिरै शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश हो कर "अतिरि + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"अतिरिणी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरीणि – अतिरै शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "अतिरै + अस्" इस स्थिति में **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "अतिरि + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "अतिरिन् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"अतिरीणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिराया, अतिरिणा – अतिरै शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से अतिरि (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) शब्द के ऐकार के स्थान पर आय् आदेश हो कर **"अतिराया"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"अतिरिणा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरिभ्याम् – अतिरै शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + भ्याम्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) के स्थान पर **"एकदेशविकृतमनन्यवत्"** परिभाषा के कारण आकार आदेश हो कर **"अतिराभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरिभिः – अतिरै शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + भिस्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) के स्थान पर **"एकदेशविकृतमनन्यवत्"** परिभाषा के कारण आकार आदेश कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिराभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिराये, अतिरिणे – अतिरै शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से अतिरि (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) शब्द के ऐकार के स्थान पर आय् आदेश हो कर **"अतिराये"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"अतिरिणे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरिभ्यः – अतिरै शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + भ्यस्" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) के स्थान पर **"एकदेशविकृतमनन्यवत्"** परिभाषा के कारण आकार आदेश कर, तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिराभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरायः, अतिरिणः – अतिरै शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से अतिरि (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) शब्द के ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिरायः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"अतिरिणः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरायोः, अतिरिणोः – अतिरै शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से अतिरि (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) शब्द के ऐकार के स्थान पर आय् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"**

(१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिरायोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिरिणोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरायाम्, अतिरीणाम् – अतिरै शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से अतिरि (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) शब्द के ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"अतिरायाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ कर, "अतिरी + नाम्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश हो कर **"अतिरीणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरायि, अतिरिणि – अतिरै शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + इ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र से पुंवद्भाव होने से **"ऐ आय्"** (४६) सूत्र से अतिरि (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) शब्द के ऐकार के स्थान पर आय् आदेश करने पर **"अतिरायि"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"अतिरिणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिराषु – अतिरै शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ऐकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश कर, "अतिरि + सु" इस स्थिति में **"रैः"** (२०५) सूत्र से ऐकार (अतिरै शब्द पूर्व में ऐकारान्त होने से) के स्थान पर **"एकदेशविकृतमनन्यवत्"** परिभाषा के कारण आकार आदेश करने पर **"अतिराषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिरै शब्द की रूपमाला यथा –

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	अतिरि	अतिरिणी	अतिरीणि
सम्बोधन	हे अतिरि हे अतिरे	हे अतिरिणी	हे अतिरीणि
द्वितीया	अतिरि	अतिरिणी	अतिरीणि
तृतीया	अतिराया अतिरिणा	अतिराभ्याम्	अतिराभिः
चतुर्थी	अतिराये अतिरिणे	अतिराभ्याम्	अतिराभ्यः
पंचमी	अतिरायः अतिरिणः	अतिराभ्याम्	अतिराभ्यः
षष्ठी	अतिरायः अतिरिणः	अतिरायोः अतिरिणोः	अतिरायाम् अतिरीणाम्
सप्तमी	अतिरायि अतिरिणि	अतिरायोः अतिरिणोः	अतिराषु

।। इस प्रकार ऐकारान्त शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

ओकारान्तो नपुंसकलिङ्गश्चित्रगो शब्दः। तत्र ओकारस्य ह्रस्व उकारः। मृदु–शब्दवत्। चित्रगु। चित्रगुणी। चित्रगूणि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद्वा इति विकल्पः। चित्रगुणा, चित्रगवा। इत्यादि। इति ओकारान्ताः।

अब ओकारान्त नपुंसकलिंग में चित्रगो शब्द का विवेचन करते हैं।

चित्रगु – चित्रगो शब्द से प्रथमा – द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + स्–अम्" इस स्थिति में **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप करने पर **"चित्रगु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगुणी – चित्रगो शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश कर, "चित्रगु + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"चित्रगुणी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगूणि – चित्रगो शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, "चित्रगो + अस्" इस स्थिति में **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३६) सूत्र से जस् – शस् के स्थान पर शि आदेश कर "चित्रगु + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "चित्रगुन् + इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ कर, तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"चित्रगूणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगवा, चित्रगुणा – चित्रगो शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से चित्रगु (चित्रगो शब्द पूर्व में ओकारान्त होने से) शब्द के ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"चित्रगवा"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "चित्रगु + न् आ" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"चित्रगुणा"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगुभ्याम् – चित्रगो शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + भ्याम्" इस स्थिति में **"चित्रगुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगुभिः – चित्रगो शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"चित्रगुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगवे, चित्रगुणे – चित्रगो शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से चित्रगु (चित्रगो शब्द पूर्व में ओकारान्त होने से) शब्द के ओकार के स्थान पर अव् आदेश हो कर **"चित्रगवे"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"चित्रगुणे"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगुभ्यः – चित्रगो शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"चित्रगुभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगोः, चित्रगुणः – चित्रगो शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"गोश्च"** (२०८) सूत्र से ङसि–ङस् के अकार का लोप कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"चित्रगोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, "चित्रगु + न् अस्" इस स्थिति में **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"चित्रगुणः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगवोः, चित्रगुणोः – चित्रगो शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं**

पुंवद् वा" (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से चित्रगु (चित्रगो शब्द पूर्व में ओकारान्त होने से) शब्द के ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"चित्रगवोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश कर, **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"चित्रगुणोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगवाम्, चित्रगूणाम् – चित्रगो शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से चित्रगु (चित्रगो शब्द पूर्व में ओकारान्त होने से) शब्द के ओकार के स्थान पर अव् आदेश कर, "चित्रगव् + आम्" इस स्थिति में **"चित्रगवाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, "चित्रगु + न् आम्" इस स्थिति में **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ कर, तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"चित्रगूणाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

उपगवि, उपगुणि – चित्रगो शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + इ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"ओ अव्"** (५०) सूत्र से चित्रगु (चित्रगो शब्द पूर्व में ओकारान्त होने से) शब्द के ओकार के स्थान पर अव् आदेश करने पर **"चित्रगवि"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर, तथा **"रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि"** (१३६) सूत्र से नकार के स्थान पर णकार आदेश करने पर **"चित्रगुणि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगुषु – चित्रगो शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, "चित्रगो + सु" इस स्थिति में **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा ओकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "चित्रगु + सु" इस स्थिति में **"नामिकरपरः प्रत्यय–विकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"चित्रगुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

चित्रगो शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	चित्रगु	चित्रगुणी	चित्रगूणि
सम्बोधन	हे चित्रगु हे चित्रगो	हे चित्रगुणी	हे चित्रगूणि
द्वितीया	चित्रगु	चित्रगुणी	चित्रगूणि
तृतीया	चित्रगवा चित्रगुणा	चित्रगुभ्याम्	चित्रगुभिः
चतुर्थी	चित्रगवे चित्रगुणे	चित्रगुभ्याम्	चित्रगुभ्यः
पंचमी	चित्रगोः चित्रगुणः	चित्रगुभ्याम्	चित्रगुभ्यः
षष्ठी	चित्रगोः चित्रगुणः	चित्रगवोः चित्रगुणोः	चित्रगवाम्, चित्रगूणाम्
सप्तमी	चित्रगवि चित्रगुणि	चित्रगवोः चित्रगुणोः	चित्रगुषु

।। इस प्रकार ओकारान्त शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

औकारान्तो नपुंसक लिङ्गो तिनौशब्दः। तत्रापि औकारस्य ह्रस्वः उकारः। तस्य प्रथमाद्वितीययोर्वारि शब्दवत्। अतिनु। अतिनुनी। अतिनूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद् वा इति विकल्पः। अतिनुना, अतिनावा। इत्यादि। इत्यौकारान्ताः।।

।। इति स्वरान्ता नपुंसकलिङ्गाः।।

अब औकारान्त नपुंसकलिंग में अतिनौ शब्द का विवेचन करते हैं।

अतिनु – अतिनौ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के एकवचन में सि और अम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + स्–अम्" इस स्थिति में **"नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्"** (२४५) सूत्र से सि और अम् का लोप करने पर **"अतिनु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनुनी – अतिनौ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में औ विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + औ" इस स्थिति में **"औरीम्"** (२३७) सूत्र से औ के स्थान पर ई आदेश कर, "अतिनु + ई" इस स्थिति में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"अतिनुनी"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनूनि – अतिनौ शब्द से प्रथमा–द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में जस्–शस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + अस्" इस स्थिति में **"जस्शसौ नपुंसके"** (२३८) सूत्र से जस्–शस् की घुट् सञ्ज्ञा कर, **"जस्शसोः शिः"** (२३९) सूत्र से जस्–शस् के स्थान पर शि आदेश कर "अतिनु + इ" इस स्थिति में **"धुट्स्वराद् घुटि नुः"** (२४०) सूत्र से नु का आगम कर, "अतिनुन्+इ" इस स्थिति में **"घुटि चासम्बुद्धौ"** (१७७) सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ करने पर **"अतिनूनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनावा, अतिनुना – अतिनौ शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + आ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"औ आव्"** (५१) सूत्र से अतिनु (अतिनौ शब्द पूर्व में औकारान्त होने से) शब्द के औकार के स्थान पर आव् आदेश हो कर **"अतिनावा"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"अतिनुना"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनुभ्याम् – अतिनौ शब्द से तृतीया – चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + भ्याम्" इस स्थिति में **"अतिनुभ्याम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनुभिः – अतिनौ शब्द से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भिस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + भिस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिनुभिः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनावे, अतिनुने – अतिनौ शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ङे विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + ए" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"औ आव्"** (५१) सूत्र से अतिनु (अतिनौ शब्द पूर्व में औकारान्त होने से) शब्द के औकार के स्थान पर आव् आदेश हो कर **"अतिनावे"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"अतिनुने"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनुभ्यः – अतिनौ शब्द से चतुर्थी – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "उपगु + भ्यस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिनुभ्यः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनावः, अतिनुनः – अतिनौ शब्द से पञ्चमी – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि–ङस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + अस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"औ आव्"** (५१) सूत्र से अतिनु (अतिनौ शब्द पूर्व में औकारान्त होने से) शब्द के औकार के स्थान पर आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिनावः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश करने पर **"अतिनुनः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनावोः, अतिनुनोः – अतिनौ शब्द से षष्ठी – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + ओस्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"औ आव्"** (५१) सूत्र से अतिनु (अतिनौ शब्द पूर्व में औकारान्त होने से) शब्द के औकार के स्थान पर आव् आदेश कर तथा **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिनावोः"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम कर "अतिनु + न् ओस्" इस स्थिति में **"रेफसोर्विसर्जनीयः"** (१३०) सूत्र से सकार के स्थान पर विसर्जनीय आदेश हो कर **"अतिनुनोः"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनावाम्, अतिनूनाम् – अतिनौ शब्द से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में आम् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + आम्" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"औ आव्"** (५१) सूत्र से अतिनु (अतिनौ शब्द पूर्व में औकारान्त होने से) शब्द के औकार के स्थान पर आव् आदेश करने पर **"अतिनावाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"आमि च नुः"** (१४७) सूत्र से नु का आगम कर, तथा **"दीर्घमामि सनौ"** (१७०) सूत्र से दीर्घ करने पर **"अतिनूनाम्"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनावि, अतिनुनि – अतिनौ शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर, "अतिनु + इ" इस स्थिति में **"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा"** (२५२) सूत्र द्वारा विकल्प से पुंवद्भाव होने से **"औ आव्"** (५१) सूत्र से अतिनु (अतिनौ शब्द पूर्व में औकारान्त होने से) शब्द के औकार के स्थान पर आव् आदेश करने पर **"अतिनावि"** प्रयोग सिद्ध होता है। पुंवद्भाव के अभाव में **"नामिनः स्वरे"** (२४६) सूत्र से नु का आगम करने पर **"अतिनुनि"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनुषु – अतिनौ शब्द से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में सुप् विभक्ति के आने पर, **"सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे"** (२४५) सूत्र द्वारा औकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश कर तथा **"नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि"** (१५०) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश हो कर **"अतिनुषु"** प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिनौ शब्द की रूपमाला यथा–

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	अतिनु	अतिनुनी	अतिनूनि
सम्बोधन	हे अतिनु हे अतिनो	हे अतिनुनी	हे अतिनूनि
द्वितीया	अतिनु	अतिनुनी	अतिनूनि
तृतीया	अतिनावा	अतिनुभ्याम्,	अतिनुभिः

	अतिनुना		
चतुर्थी	अतिनावे	अतिनुभ्याम्	अतिनुभ्यः
	अतिनुने		
पंचमी	अतिनावः	अतिनुभ्याम्	अतिनुभ्यः
	अतिनुनः		
षष्ठी	अतिनावः	अतिनावोः	अतिनावाम्
	अतिनुनः	अतिनुनोः	अतिनूनाम्
सप्तमी	अतिनावि	अतिनावोः	अतिनुषु
	अतिनुनि	अतिनुनोः	

।। इस प्रकार औकारान्त शब्द का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

।। इस प्रकार स्वरान्त नपुंसकलिंग का प्रकरण पूर्ण हुआ।।

❑ ❑ ❑

श्री शर्ववर्मकृतकलाप–व्याकरणस्य

वादिपर्वतवज्रश्रीमद्‌भावसेनत्रैविद्यकृता टीका

कातन्त्र–रूपमाला

मूल–स्वरान्त–लिङ्ग–प्रकरणम्

श्री शर्ववर्मकृतकलाप–व्याकरणस्य
वादिपर्वतवज्रश्रीमद्भावसेनत्रैविद्यकृता टीका

कातन्त्र–रूपमाला

स्वरान्त–लिंगप्रकरणम्

ग्रन्थकारस्य मङ्गलाचरणम्

वीरं प्रणम्य सर्वज्ञं, विनष्टाशेष–दोषकम्।
कातन्त्र–रूपमालेयं, बाल–बोधाय कथ्यते।।१।।

नमस्तस्यै सरस्वत्यै, विमल–ज्ञान–मूर्त्तये।
विचित्रालोक –यात्रेयं, यत्प्रसादात्प्रवर्तते ।।२।।

नमो वृषभ–सेनादि,–गौतमान्त्यगणेशिने ।
मूलोत्तर–गुणाढ्याय, सर्वस्मै मुनये नमः।।३।।

गुरुभक्त्या वयं सार्द्ध,–द्वीप–द्वितय–वर्त्तिनः।
वन्दामहे त्रिसङ्ख्योन,–नव–कोटि–मुनीश्वरान्।।४।।

अज्ञान–तिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जन–शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।५।।

।। अथ स्वरान्त–लिङ्गाद्विभक्तय उच्यन्ते।।

सर्वज्ञं तमहं वन्दे, परं ज्योतिस्तमो पहम्।
प्रवृत्ता यन्मुखाद्देवी, सर्वभाषा सरस्वती।।१।।

किं लिङ्गम् ?

(२.१)सञ्ज्ञासूत्रम् – धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्।।१२५।।

अर्थो भिधेयः। धातुविभक्तिवर्जमर्थवच्छब्दरूपं लिङ्गसञ्ज्ञं भवति। तच्च लिङ्गं द्विविधम्। स्वरान्तं व्यञ्जनान्तं चेति। तत्पुनः प्रत्येकं त्रिविधम्। पुल्लिङ्गं स्त्रीलिङ्गं नपुंसकलिङ्गं चेति। तत्रादावकारान्तात् पुल्लिङ्गात् पुरुषशब्दाद्विभक्तयो योज्यन्ते। लोकोपचारात्स्यादीनां विभक्तिसञ्ज्ञायां पुरुष इति स्थिते।।

(२.२)विधिसूत्रम् – तस्मात्परा विभक्तयः ।।१२६।।

तस्मादर्थवतो लिङ्गात्पराः स्यादयो विभक्तयो भवन्ति। सि औ जस्। अम् औ शस्। टा भ्याम् भिस्। ङे भ्याम् भ्यस्। ङसि भ्याम् भ्यस्। ङस् ओस् आम्। ङि ओस् सुप्। ताः पुनः सप्त। सि औ जस् इति प्रथमा। अम् औ शस् इति द्वितीया। टा भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे् भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी। ङि ओस् सुप् इति सप्तमी। एवं युगपत् सर्वप्रत्ययप्रसङ्गे वक्तुर्विवक्षया शब्दार्थप्रतिपत्तिरिति लिङ्गार्थविवक्षायाम्।

(२.२२३)सञ्ज्ञासूत्रम् – प्रथमा विभक्तिर्लिङ्गार्थवचने।।१२७।।

अव्यतिरिक्तलिङ्गार्थवचने प्रथमाविभक्तिर्भवति। इति लिङ्गार्थे प्रथमा तत्रापि युगपदेकवचनादिप्राप्तौ।

(०.००)विधिसूत्रम् – एकं द्वौ बहून्।।१२८।।

अर्थान् वक्तीति, एकस्मिन्नर्थे एकवचनं द्वयोरर्थयोर्द्विवचनं बहुष्वर्थेषु बहुवचनं भवति। इति लिङ्गार्थैकत्वविवक्षायां प्रथमैकवचनं सि। पुरुष सि इति स्थिते।

(३.४३५)अतिदेशसूत्रम् – यो नुबन्धो प्रयोगी।।१२६।।

अनुबध्यत इत्यनुबन्धः अप्रयुक्तिरप्रयोगः। यः अनुबन्धः सः अप्रयोगी अनुच्चारणीयो भवति। अनुबन्धः कः ? इजशटङपा विभक्तिष्वनुबन्धाः। एवमन्ये पि इङ्–अधीते। डुकृञ्–कुरुते। वा विरामे इति वर्तमाने।

(२.२०५)विधिसूत्रम् – रेफसोर्विसर्जनीयः ।।१३०।।

विरामे व्यञ्जनादौ च रेफसकारयोर्विसर्जनीयो भवति। परवर्णाभावो विरामः। अथवा यदनन्तरं वर्णान्तरं नोच्यते स विरामः। पुरुषः इति सिद्धं पदम्। तथैव लिङ्गार्थे द्वित्वविवक्षायां द्विवचनम् औ। सन्धिः। पुरुषौ।। तथैव लिङ्गार्थे बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं जस्। अनुबन्धलोपः। पुरुष अस् इति स्थिते। अकारे लोपमिति प्राप्ते तत्प्रतिषेधः। अकारो दीर्घं घोषवति इति वर्तते। सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्। लोपस्वरादेशयोः स्वरादेशो विधिर्बलवान्। वाधिकाराद् विभक्तिव्यञ्जने रेफस्य न स्यात्। गीर्षु, धूर्षु। भवति च सजूःषु, आशीःषु।

(२.१५)विधिसूत्रम् – जसि।।१३१।।

लिङ्गान्तो कारो दीर्घमापद्यते जसि परे। (एकदेशविकृतमनन्यवत्)। यथा कर्णपुच्छादिस्वाङ्गेषु भिन्नेषु सत्सु श्वा न गर्दभः किन्तु श्वा श्वैव। पुनः सवर्णे दीर्घः। सस्य विसर्जनीयः। पुरुषाः। तथैवामन्त्रणार्थविवक्षायाम्।

(२.२२४)विधिसूत्रम् – आमन्त्रणे च।।१३२।।

दूरस्थानामभिमुखीकरणमामन्त्रणम्। तत्र प्रथमा विभक्तिर्भवति। षष्ठ्यपवादो यम्।

(२.५)सञ्ज्ञासूत्रम् – आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः।।१३३।।

आमन्त्रणार्थे विहितः सिः सम्बुद्धिसञ्ज्ञो भवति।

(२.७१)विधिसूत्रम् – ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्।।१३४।।

ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः परः सम्बुद्धिसञ्ज्ञकः सिर्लोपमापद्यते। कैश्चिदामन्त्रणाभिव्यक्तये अहो हे भो शब्दाः प्राक्प्रयोज्यन्ते। हे पुरुष। द्विवचनबहुवचनयोः पूर्ववत्। हे पुरुषौ। हे पुरुषाः। तथैव कर्मविवक्षायाम्।।

(२.२२५)विधिसूत्रम् – शेषाः कर्मकरण–सम्प्रदानापादान–स्वाम्याद्यधिकरणेषु।।१३५।।

शेषा द्वितीयाद्याः षड् विभक्तयः कर्मादिषु षट्सु कारकेषु यथासङ्ख्यं भवन्ति। इति कर्मणि द्वितीया। पुरुष अम् इति स्थिते।

(२.१७)विधिसूत्रम् – अकारे लोपम्।।१३६।।

लिङ्गान्तो कारो लोपमापद्यते सामान्ये अकारे परे। पुरुषम्। द्विवचने सन्धिः। पुरुषौ। बहुत्वे – पुरुष अस् इति स्थिते।

(२.१६)विधिसूत्रम् – शसि सस्य च नः।।१३७।।

शसि परे लिङ्गातो कारो दीर्घमापद्यते सस्य च नो भवति। पुनः सवर्णे दीर्घः। पुरुषान्। तथैव करणविवक्षायाम्। शेषाः कर्मेत्यादिना करणे तृतीया। पुरुष टा इति स्थिते।

(२.२३)विधिसूत्रम् – इन टा।।१३८।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परष्टा इनो भवति। सन्धिः।

(२.२५४)विधिसूत्रम् – रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवककवर्ग–पवर्गान्तरो पि।१३९।

रेफषकारऋवर्णेभ्यः परो नन्त्यो नकारः णमापद्यते स्वरहयवककवर्गपवर्गान्तरो पि शब्दान्तरो पि। स्वरान्तरस्तावत्। पुरुषेण। द्विवचने।

(२.१४)विधिसूत्रम् – अकारो दीर्घं घोषवति।।१४०।।

लिङ्गान्तो कारो दीर्घमापद्यते घोषवति परे। पुरुषाभ्याम्। बहुत्वे।

(२.१८)विधिसूत्रम् – भिसैस्वा।।१४१।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो भिस् ऐस् वा भवति। सन्धिः। पुरुषैः। वाशब्दः पक्षान्तरं सूचयति–एस् ऐस् वा। तथैव सम्प्रदानविवक्षायाम्। शेषाः कर्मेत्यादिना सम्प्रदाने चतुर्थी।

(२.२४)विधिसूत्रम् – ङेर्यः।।१४२।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङेर्यो भवति। घोषवति दीर्घः। पुरुषाय। द्वित्वे पूर्ववत्। पुरुषाभ्याम्। बहुत्वे।

(२.१३)सञ्ज्ञासूत्रम् – धुड् व्यञ्जनमनन्तःस्थानुनासिकम्।।७५।।

अन्तःस्थानुनासिकवर्जितं व्यञ्जनं धुट् सञ्ज्ञं भवति। क ख ग घ। च छ ज झ। ट ठ ड ढ। त थ द ध। प फ ब भ। श ष स ह इति।

(२.१६) विधिसूत्रम् – धुटि बहुत्वे त्वे।।१४३।।

लिङ्गान्तो कार ए भवति बहुत्वे धुटि परे। पुरुषेभ्यः। तथैव अपादानविवक्षायां शेषाः कर्मेत्यादिना अपादाने पञ्चमी।

(२.२१)विधिसूत्रम् – ङसिरात्।।१४४।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङसिराद् भवति। पुरुषात्। द्वित्वबहुत्वयोः पूर्ववत्। दीर्घोच्चारणं किमर्थम्। अकारे लोपे प्राप्ते सति तन्निमित्तम्। पुरुषाभ्याम्। पुरुषेभ्यः। तथैव स्वाम्यादिविवक्षायां शेषाः कर्मेत्यादिना स्वाम्यादौ षष्ठी।

(२.२२)विधिसूत्रम् – ङस् स्यः।।१४५।।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङस् स्यो भवति। पुरुषस्य। द्वित्वे, धुटि बहुत्वे त्वे इति वर्त्तते।

(२.२०)विधिसूत्रम् – ओसि च।।१४६।।

लिङ्गान्तो कार ए भवति ओसि च परे। सन्धिः। ए अय्। रेफसोर्विसर्जनीयः। पुरुषयोः। बहुत्वे – पुरुष आम् इति स्थिते। ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्य इति वर्त्तते।

(२.७२)विधिसूत्रम् – आमि च नुः।।१४७।।

ह्रस्वनदीश्रद्धाशब्देभ्यः परो नुरागमो भवति आमि परे।

(२.७)नियमसूत्रम् – तृतीयादौ तु परादिः ।।१४८।।

उदनुबन्ध आगमः परादिर्भवति तृतीयादौ विभक्तौ।

(०००)विधिसूत्रम् – दीर्घमामि सनौ ।।१४९।।

ह्रस्वान्तं लिङ्गं दीर्घमापद्यते सनावामि परे। रषृवर्णेत्यादिना णत्वं घोषवति दीर्घः। पुरुषाणाम्। तथैव अधिकरणे सप्तमी। अनुबन्धलोपः। सन्धिः। पुरुषे। द्विवचने पूर्ववत्। पुरुषयोः। बहुत्वे धुटि एत्वं च।

(२.२५३)विधिसूत्रम् – नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि।।१५०।।

नामिकरेभ्यः परः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षमापद्यते नुविसर्जनीयषान्तरो पि। पुरुषेषु। नीतकः – पुरुषः पुरुषौ पुरुषाः। हे पुरुष हे पुरुषौ हे पुरुषाः। पुरुषम् पुरुषौ पुरुषान्। पुरुषेण पुरुषाभ्याम् पुरुषैः। पुरुषाय पुरुषाभ्याम् पुरुषेभ्यः। पुरुषात् पुरुषाभ्याम् पुरुषेभ्यः। पुरुषस्य पुरुषयोः पुरुषाणाम्। पुरुषे पुरुषयोः पुरुषेषु। एवं धर्मवीरवेद–वृक्ष–सूर्य–सागर–स्तम्भ–बाण–मृग–दन्त–राघव–मास–पक्ष–शिव–शैल–गुह्यक–व्रात–गण्ड–कटक–पाट–नाग–शङ्कर–घट–पटादयः।।

(१.२०)सञ्ज्ञासूत्रम् – पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम्।।१५१।।

तयोः प्रकृतिविभक्त्योरर्थोपलब्धौ सत्यां समुदायस्य पदसञ्ज्ञा भवति। पूर्वपरयोरिति को र्थः। प्रकृतिविभक्त्योरित्यर्थः। प्रकृतयः काः। पुरुषादि शब्दा भूप्रभृतयो धातवश्च प्रकृतयो भवन्ति। विभक्तयः काः। स्यादिस्त्यादिश्च। एवं विभक्त्यन्तानां सर्वत्र पदसञ्ज्ञा भवति। सर्वशब्दस्य क्वचिद्विशेषः। सर्वः सर्वौ। जसि–सर्वनाम्न इति वर्तते।

(२.३०) विधिसूत्रम् – जस् सर्व इः।।१५२।।

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो जस् सर्व इर्भवति। सर्वे। हे सर्व। हे सर्वौ। हे सर्वे। सर्वम्। सर्वौ। सर्वान्। सर्वेण। सर्वाभ्यां। सर्वैः। ङयि।

(२.२५)विधिसूत्रम् – स्मै सर्वनाम्नः।।१५३।।

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङे स्मै भवति। सर्वस्मै। सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः। ङसौ।

(२.२६)विधिसूत्रम् – ङसिः स्मात्।।१५४।।

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङसिः स्माद् भवति। सर्वस्मात्। सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः। सर्वस्य। सर्वयोः।

(२.२६)विधिसूत्रम् – सुरामि सर्वतः।।१५५।।

सर्वनाम्नः परः सुरागमो भवत्यामि परे। धुटि एत्वम्। नामिकरपरेत्यादिना षत्वम्। सर्वेषाम्। ङौ।

(२.२७)विधिसूत्रम् – ङिः स्मिन्।।१५६।।

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङिः स्मिन् भवति। सर्वस्मिन्। सर्वयोः। सर्वेषु।। नीतकः – सर्वः, सर्वौ, सर्वे। हे सर्व, हे सर्वौ, हे सर्वे। सर्वम्, सर्वौ, सर्वान्। सर्वेण, सर्वाभ्याम्, सर्वैः। सर्वस्मै, सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः। सर्वस्मात्, सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः। सर्वस्य, सर्वयोः, सर्वेषाम। सर्वस्मिन्, सर्वयोः, सर्वेषु। किं तत्सर्वनाम। सर्व–विश्व–उभ–उभय–अन्य–अन्यतर–अन्यतम–इतर–इतम–कतर–कतम–यतर–यतम–ततर–ततम–एकतर–एकतम (एते डतरडतमप्रत्ययान्ताः। वृत्।) त्व–नेम–सम–सिम–पूर्व–पर–अवर–दक्षिण–उत्तर–अपर–अधर–स्वअन्तर (वृत्) त्यद्, तद्, यद्, अदस्, इदम्, एतद्, किम्, एक, द्वि, युष्मद्–अस्मद्–भवत्–इति सर्वादि। अल्पशब्दस्य तु भेदः। अल्पः। अल्पौ। जसि।

(२.३१)विधिसूत्रम् – अल्पादेर्वा।।१५७।।

अल्पादेर्गणात्परो जस् सर्व इर्भवति वा। अल्पे, अल्पाः। अन्यत्र पुरुषशब्दवत्। को ल्पादिर्गणः। अल्प–प्रथम–चरम–त्रितय–द्वय–त्रय (एते तयअयप्रत्ययान्ताः) कतिपय–नेम–अर्द्ध–पूर्व–पर–अवर–दक्षिण–उत्तर–अपर–अधर–स्व–अन्तर (वृत्) इति अल्पादिः। पूर्वशब्दस्य तु भेदः। पूर्वः, पूर्वौ, पूर्वे, पूर्वाः। हे पूर्व, हे पूर्वौ, हे पूर्वे, हे पूर्वाः। पूर्वम्, पूर्वौ, पूर्वान्। पूर्वेण, पूर्वाभ्याम्, पूर्वैः। पूर्वस्मै, पूर्वाभ्याम्, पूर्वेभ्यः। ङसिङ्यो।

(२.२८) विधिसूत्रम् – विभाष्येते पूर्वादेः ।।१५८।।

पूर्वादेर्गणात्परयोर्ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ विभाष्येते। पूर्वस्मात् पूर्वात्। पूर्वाभ्याम्। पूर्वेभ्यः। पूर्वस्य। पूर्वयोः। पूर्वेषाम्। ङौ तथैव विकल्पः। पूर्वस्मिन, पूर्वे। पूर्वयोः। पूर्वेषु।

कः पूर्वादिः। प्रागेवोक्तः। इत्यकारान्ताः। आकारान्तः पुल्लिङ्गं क्षीरपाशब्दः । ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ। क्षीरपाः। क्षीरपौ। क्षीरपाः। सम्बुद्धावविशेषः। क्षीरपाम्। क्षीरपौ। शसादौ तु विशेषः।

(२.३)सञ्ज्ञासूत्रम् – पञ्चादौ घुट्।।१५६।।

स्यादीनामादौ पञ्चवचनानि घुट् सञ्ज्ञानि भवन्ति।

(२.१३२)विधिसूत्रम् – आधातोरघुट्स्वरे।।१६०।।

धातोराकारस्य लोपो भवति अघुट्स्वरे परे। धातोरिति किम्। शन्तृङन्तक्विबन्तौ धातुत्वं न त्यजत इति। एतदुपलक्षणम्। उपलक्षणं किं ? स्वस्य स्वसदृशस्य च ग्राहकमुपलक्षणम्। तेन विजन्तमपि धातुत्वं न जहाति। क्षीरपः। क्षीरपा, क्षीरपाभ्याम्, क्षीरपाभिः। क्षीरपे, क्षीरपाभ्याम्, क्षीरपाभ्यः। क्षीरपः, क्षीरपाभ्याम्, क्षीरपाभ्यः। क्षीरपः, क्षीरपोः, क्षीरपाम्। क्षीरपि, क्षीरपोः, क्षीरपासु। एवं सोमपा–सीधुपा–कीलालपा–सौवीरपा–मण्डपा–अग्रेगा–विवस्वा–अब्जजा–उदधिका–हाहा–पुरोगादयः। इत्याकारान्ताः। इकारान्तः पुल्लिङ्गो मुनिशब्दः। ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ। मुनिः। द्वित्वे।

(२.८)सञ्ज्ञासूत्रम् – इदुदग्निः।।१६१।।

इकारान्तमुकारान्तञ्च लिङ्गं अग्निसञ्ज्ञं भवति। तपरकरणमसन्देहार्थम्।

(२.५१)विधिसूत्रम् – औकारः पूर्वम्।।१६२।।

अग्निसञ्ज्ञकात्पर औकारः पूर्वस्वरूपमापद्यते। सन्धिः। मुनी। जसि।

(२.५५)विधिसूत्रम् – इरेदुरोज्जसि।।१६३।।

अग्निसञ्ज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति जसि परे। मुनयः।

(२.५६)विधिसूत्रम् – सम्बुद्धौ च।।१६४।।

अग्निसञ्ज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति सम्बुद्धौ परतः। प्रत्ययलोपे प्रत्यय–लक्षणमिति न्यायात्। हे मुने। हे मुनी। हे मुनयः।

(२.५०) विधिसूत्रम् – अग्नेरमो कारः।।१६५।।

अग्निसञ्ज्ञकात्परस्य अमो कारो लोपमापद्यते। मुनिम्। मुनी। शसादौ।

(२.५२)विधिसूत्रम् – शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्।।१६६।।

अग्निसञ्ज्ञकात्परस्य शसो कारः पूर्वस्वररूपमापद्यते सर्वत्र सस्य च नो भवति अस्त्रियाम्। मुनीन्।

(२.५३)विधिसूत्रम् – अस्त्रियां टा ना।।१६७।।

अग्निसञ्ज्ञकात्परस्य टा ना भवत्यस्त्रियाम्। मुनिना। मुनिभ्याम्। मुनिभिः। ङयि।

(२.५७)विधिसूत्रम् – ङे।।१६८।।

अग्निसञ्ज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति ङयि परे। मुनये। मुनिभ्याम्। मुनिभ्यः।

(२.५८)विधिसूत्रम् – ङसिङसोरलोपश्च।।१६९।।

अग्निसञ्ज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद् भवति ङसिङसोः परतः तयोरकारश्च लोप्यो भवति। मुनेः। मुनिभ्याम्। मुनिभ्यः। मुनेः। मुन्योः। आमि नुरागमः।

(२.६२)विधिसूत्रम् – दीर्घमामि सनौ।।१७०।।

नाम्यन्तं लिङ्गं दीर्घमापद्यते सनावामि परे। मुनीनाम्।

(२.६०)विधिसूत्रम् – ङिरौ सपूर्वः।।१७१।।

अग्निसञ्ज्ञकात्परो ङि पूर्वस्वरेण सह और्भवति। मुनौ। मुन्योः मुनिषु। एवमग्नि–गिरि–रवि–ऋषि–यति–कवि–विधि–राशि–शीतरश्मि–शालि–दानवारि–दैत्यारि– सौरि–सूरि–विघ्नारि–हेमाद्रि–अद्रि–हरि–सारिवह्नि–शकुनि–पाकशासनि–धूमयोनि–पद्म–योनि–अपाम्पति–अतिथि–ग्रन्थि–पदाति–मैत्रि–बलि–ध्वनि–पाणि–कपि–अलि–मणि–जलधि–अब्धि–पयोधि–निधि–उपाधि–नीरधि–व्याधि–शेवध्यादयः। द्विशब्दस्य तु भेदः तस्य द्वि – अर्थवाचित्वात्– द्विवचनमेव भवति। द्वि औ इति स्थिते।

(२.१७१)विधिसूत्रम् – त्यदादीनाम विभक्तौ।।१७२।।

त्यदादीनामन्तः अकारो भवति विभक्तौ परतः। सन्धिः। द्वौ। द्वौ। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः। सर्वनामान्तर्गणो द्विपर्यन्त इह त्यदादिः। विभक्ताविति किम्? त्यदीयः। त्रिशब्दस्य तु भेदः। तस्य बह्वर्थवाचित्वात् बहुवचनमेव भवति। त्रयः। हे त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः। त्रिभ्यः। आमि।

(२.७३)विधिसूत्रम् – त्रेस्त्रयश्च।।१७३।।

त्रिशब्दस्य त्रयादेशो भवति नुरागमश्चामि परे। त्रयाणाम् त्रिषु। कतिशब्दस्य तु भेदः। तस्यापि बहुवचनमेव भवति।

(२.७६)विधिसूत्रम् – कतेश्च जस्शसोर्लुक्।।१७४।।

सङ्ख्यायाः ष्णान्तायाः कतेश्च परयोर्जस्शसोर्लुग्भवति। (सर्वविधिभ्यो लोपविधि–र्बलवान्) प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति प्राप्ते सति।

(०००)विधिसूत्रम् – लुग्लोपे न प्रत्ययकृतम्।।१७५।।

लुगिति लोपे सति प्रत्ययलोपे परे यत्कृतं कार्यं प्रकृतेस्तन्न भवति। इरेदुरोज्जसीत्येत्वं न भवति। कति। कति। कतिभिः। कतिभ्यः। कतिभ्यः। कतीनाम्। कतिषु। सखिशब्दस्य तु भेदः। सावनन्त इति वर्त्तते।

(२.१००)विधिसूत्रम् – सख्युश्च।।१७६।।

सख्युरन्तो न् भवति असम्बुद्धौ सौ परे।

(२.६४)विधिसूत्रम् – घुटि चासम्बुद्धौ।।१७७।।

नान्तस्य चोपधाया दीर्घो भवति असम्बुद्धौ घुटि परे।

(२.४६)विधिसूत्रम् – व्यञ्जनाच्च।।१७८।।

व्यञ्जनाच्च परः सिर्लोपमापद्यते।

(२.१६८)विधिसूत्रम् – लिङ्गान्तनकारस्य।।१७६।।

लिङ्गान्तनकारस्य लोपो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च। सखा।

(२.१०१)विधिसूत्रम् – घुटि त्वैः।।१८०।।

सख्युरन्तः ऐर्भवति असम्बुद्धौ घुटि परे। सखायौ। सखायः। सम्बुद्धौ मुनिशब्दवत्। सखीन्। टादौ।

(२.७८)विधिसूत्रम् – न सखिष्टादावग्निः ।।१८१।।

सखिशब्दष्टादौ स्वरे परे नाग्निर्भवति। सख्या। सखिभ्याम्। सखिभिः। सख्ये। सखिभ्याम्। सखिभ्यः।।

(२.६२)विधिसूत्रम् – ङसिङसोरुमः।।१८२।।

सखिपतिभ्यां परयोर्ङसिङसोरकार उमापद्यते। सख्युः। सखिभ्याम्। सखिभ्यः। सख्युः। सख्योः। सखीनाम्।

(२.६१)विधिसूत्रम् – सखिपत्योर्ङिः।।१८३।।

सखिपतिभ्यां परो ङिरेव और्भवति। पुनर्ङिग्रहणं किमर्थं ? सपूर्वस्वरनिवृत्त्यर्थं सख्यौ। सख्योः। सखिषु। एवं सुसखि–अतिसखि–असखि–प्रभृतयः। पतिशब्दस्य तु भेदः। पतिः। पती। पतयः। हे पते। हे पती। हे पतयः। पतिम्। पती। पतीन्। टादौ।

(२.७६)निषेधसूत्रम् – पतिरसमासे।।१८४।।

पतिशब्दो समासे टादौ स्वरे परे नाग्निर्भवति। पत्या। पतिभ्याम्। पतिभिः। पत्ये। पतिभ्याम्। पतिभ्यः। पत्युः। पतिभ्याम्। पतिभ्यः। पत्युः। पत्योः। पतीनाम्। पत्यौ। पत्योः। पतिषुः। भूपत्यादि शब्दानां समासत्वान्मुनिशब्दवत्। पन्थिशब्दस्य तु भेदः। पन्थि स् इति स्थिते। अम्शसोरा इति वर्त्तते।

(२.११२)विधिसूत्रम् – पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ।।१८५।।

पन्थ्यादीनामन्त आकारो भवति सौ परे। पन्थाः।

(२.११३) विधिसूत्रम् – अनन्तो घुटि।।१८६।।

पन्थ्यादीनामन्तो न् भवति घुटि परे। पन्थानौ। पन्थानः। सम्बोधने अपि तद्वत्। हे पन्थाः। हे पन्थानौ। हे पन्थानः। अग्नेरमोकार इति प्राप्ते। अन्तरङ्गबहिरङ्गयो–रन्तरङ्गो विधिर्बलवान्। अल्पाश्रितमन्तरङ्गम्। बह्वाश्रितं बहिरङ्गम्। पन्थानम्। पन्थानौ।

(२.११४)विधिसूत्रम् – अघुट्स्वरे लोपम्।।१८७।।

पन्थ्यादीनामन्तो लोपमापद्यते अघुटस्वरे परे।

(२.११५)विधिसूत्रम् – व्यञ्जने चैषां निः।।१८८।।

पन्थ्यादीनां नकारो लोपमापद्यते व्यञ्जने चाघुट्स्वरे परे। पथः। पथा। पथिभ्याम्। पथिभिः। पथे। पथिभ्याम्। पथिभ्यः। पथः। पथिभ्याम्। पथिभ्यः। पथः। पथोः। पथाम्। पथि। पथोः। पथिषु। एवं मन्थि–ऋभुक्षि–शब्दौ। इति इकारान्ताः। ईकारान्तः पुल्लिङ्गो यवक्री शब्दः। ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ–यवक्रीः। स्वरादौ। आधातोरिति वर्तमाने।

(२.१३३)विधिसूत्रम् – ईदूतोरियुवौ स्वरे।।१८६।।

धातोरीदूतोरियुवौ भवन्तो विभक्तिस्वरे परे। पुनः स्वर ग्रहणं किमर्थम्। अघुट्स्वरे निवृत्त्यर्थम्। यवक्रियौ। यवक्रियः। सम्बोधने पि तद्वत्। यवक्रियम्। यवक्रियौ। यवक्रियः। यवक्रिया। यवक्रीभ्याम्। यवक्रीभिः। इत्यादि। एवं सुश्रीनीप्रभृतयः। सेनानी शब्दस्य तु भेदः। सौ–सेनानीः। स्वरादावीदूतोरिति प्राप्ते।

(२.१३६)विधिसूत्रम् – अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ।।१६०।।

अनेकाक्षरयोर्लिङ्गयोरसंयोगात्परयोरीदूतो य्वौ भवतो विभक्तिस्वरे परे। सेनान्यौ। सेनान्यः। सम्बोधने पि तद्वत्। सेनान्यम्। सेनान्यौ। सेनान्यः। सेनान्या। सेनानीभ्याम्। सेनानीभिः। सेनान्ये। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनान्यः। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनान्यः। सेनान्योः। सेनान्याम्।। अनेकाक्षरयोरिति किं। नियौ। नियः। लुवौ। लुवः। असंयोगादिति किं यवक्रियौ। कटप्रुवौ। ङौ।

(२.७७)विधिसूत्रम् – नियो ङिराम् ।।१६१।।

नियः परो ङिराम् भवति। सेनान्याम्। सेनान्योः। सेनानीषु। एवमग्रणी–ग्रामणी–प्रभृतयः। सुधी शब्दस्य तु भेदः। सौ सुधीः। स्वरादावनेकाक्षरयोरिति यत्वे प्राप्ते। ईदूतोरियुवौ स्वरे इति वर्त्तते।

(२.१३४)विधिसूत्रम् – सुधीः।।१६२।।

सुधीशब्दं इयं प्राप्नोति विभक्तिस्वरे परे। सुधियौ। सुधियः। सम्बोधने पि तद्वत्। सुधियम्। सुधियौ। सुधियः। सुधिया। सुधीभ्याम्। सुधीभिः। सुधिये। सुधीभ्याम्। सुधीभ्यः। सुधियः। सुधीभ्याम्। सुधीभ्यः। सुधियः। सुधियोः। सुधियाम्। सुधियि। सुधियोः। सुधीषु। इति ईकारान्ताः। उकारान्तः पुल्लिङ्गो भानुशब्दः। स च मुनिशब्दवत्। अयं भेदः – उत ओत्वमवादेशश्च। भानुः, भानू, भानवः। हे भानो, हे भानू, हे भानवः। भानुम्, भानू, भानून्। भानुना, भानुभ्याम्, भानुभिः। भानवे, भानुभ्याम्, भानुभ्यः। भानोः, भानुभ्याम्, भानुभ्यः। भानोः, भान्वोः, भानूनाम्। भानौ, भान्वोः, भानुषु। एवमृतु–मेरु–गुरु–तरु–धातु–सेतु–बाहु–वायुबहुप्रभृतयः। इत्युकारान्ताः।

ऊकारान्तः पुल्लिंगः कटप्रू शब्दः। स च यवक्रीशब्दवत्। उवादेशो त्र भेदः। कटप्रूः। कटपुवौ, कटप्रुवः। सम्बोधने पि तद्वत्। कटप्रुवम्, कटप्रुवौ, कटप्रुवः। कटप्रुवा, कटप्रूभ्याम्, कटप्रूभिः। इत्यादि। खलपू शरलू काण्डलू प्रभृतीनां सेनानी शब्दवत्। वत्वं भेदः। प्रतिभूशब्दस्य तु भेदः। सौ–प्रतिभूः। स्वरादौ–

(२.१३५)विधिसूत्रम् – भूरवर्षाभूरपुनर्भूः।।१६३।।

भूरुवं प्राप्नोति विभक्तिस्वरे परे वर्षाभूपुनर्भ्वौ वर्जयित्वा। प्रतिभुवौ। प्रतिभुवः। सम्बोधने पि तद्वत्। एवं स्वयम्भू–मित्रभू–आत्मभू–अग्निभू–मनोभू–प्रभृतयः। वर्षाभू–पुनर्भू–सेनानीवत्। वत्वं भेदः। इत्यूकारान्ताः। ऋकारान्तः पुल्लिङ्गः पितृशब्दः। सौ–

(२.६४)विधिसूत्रम् – आ सौ सिलोपश्च।।१६४।।

ऋदन्तस्य लिङ्गस्य आ भवति सौ परे सिलोपश्च। पिता।

(२.६७)विधिसूत्रम् – घुटि च।।१६५।।

ऋदन्तस्य अर् भवति घुटि परे। पितरौ। पितरः। सम्बुद्धौ च।

(२.७०)निषेधसूत्रम् – आ च न सम्बुद्धौ।।१६६।।

ऋदन्तस्य आर् आ च न भवति सम्बुद्धौ परतः। अपि तु घुटि चेत्यर्भवति। हे पितः। हे पितरौ। हे पितरः। पितरम्। पितरौ।

(२.६५)सञ्ज्ञासूत्रम् – अग्निवच्छसि।।१६७।।

ऋदन्तस्य अग्निवत्कार्यं भवति शसि परे । पितॄन्। पित्रा। पितृभ्याम् पितृभिः। पित्रे। पितृभ्याम्। पितृभ्यः। ङसिङसोः।

(२.६३)विधिसूत्रम् – ऋदन्तात्सपूर्वः।।१६८।।

ऋदन्तात्परयोर्ङसिङसोरकारः पूर्वस्वरेण सह उमापद्यते। पितुः। पितृभ्याम्। पितृभ्यः। पितुः। पित्रोः। पितॄणाम्।

(२.६६)विधिसूत्रम् – अर्ङौ।।१६९।।

ऋदन्तस्य अर् भवति ङौ परे। पितरि। पित्रोः पितृषु। एवं भ्रातृ–जामातृ–सवितृ–प्रभृतयः। कर्तृशब्दस्य तु भेदः। सौ कर्त्ता। घुटि।

(२.६८)विधिसूत्रम् – धातोस्तृशब्दस्यार्।।२००।।

धातोर्विहितस्य तृशब्दस्य ऋत आर्भवति घुटि परे। कर्त्तारौ। कर्त्तारः। हे कर्त्तः। हे कर्त्तारौ। हे कर्त्तारः। कर्त्तारम्। कर्त्तारौ। कर्त्तॄन्। अन्यत्र पितृशब्दवत्। धातोर्विहितस्य किं? मातरौ मातरः। यती प्रयन्ने। यतेः ऋत दीर्घश्च उणादि प्रत्ययः। यातरौ, यातरः। तृशब्दस्येति किं ? ननान्दरौ। ननान्दरः। एवं धातृ–भर्त्तृ–ज्ञातृ–वेतृ–श्रोतृ–नेतृ–वक्तृ–भोक्तृ–पक्तृ–प्रभृतयः। क्रोष्टृ शब्दस्य तु भेदः। क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। सम्बुद्धौ।

(०००)विधिसूत्रम् – क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च।।२०१।।

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्भवति सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च परे। अग्निसञ्ज्ञां विधाय भानुवत्कुर्यात्। हे क्रोष्टो। हे क्रोष्टारौ। हे क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्। क्रोष्टारौ। क्रोष्टून्।

(०००)विधिसूत्रम् – टादौ स्वरे वा।।२०२।।

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्वा भवति टादौ स्वरे परे। क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना। क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टृभ्याम्। क्रोष्टुभिः, क्रोष्टृभिः। क्रोष्टवे, क्रोष्ट्रे। क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टृभ्याम्। क्रोष्टुभ्यः, क्रोष्टृभ्यः। क्रोष्टुः, क्रोष्टोः। क्रोष्टुभ्याम्। क्रोष्टृभ्याम्। क्रोष्टुभ्यः, क्रोष्टृभ्यः। क्रोष्टुः, क्रोष्टोः। क्रोष्ट्रोः क्रोष्ट्वोः। क्रोष्टॄणाम्, क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि, क्रोष्टौ। क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः। क्रोष्टुषु, क्रोष्टृषु। स्वसृशब्दस्य तु भेदः। सौ–स्वसा। घुटि।

(२–६६)विधिसूत्रम् – स्वस्रादीनां च।।२०३।।

स्वस्रादीनां च ऋत आर्भवति घुटि परे। स्वसारौ। स्वसारः। हे स्वसः। इत्यादि। अन्यत्र पितृशब्दवत्। के स्वस्रादयः ?

समाधान – स्वसा नप्ता च नेष्टा च, त्वष्टा क्षत्ता तथैव च।
होता पोता प्रशास्ता चेत्यष्टौ स्वस्रादयः स्मृताः।।

नृशब्दस्य तु भेदः। नृशब्दस्यामि विशेषः। ना। नरौ नरः। हे नः। हे नरौ। हे नरः। नरम्। नरौ। नॄन्। न्रा। नृभ्याम्। नृभिः। न्रे। नृभ्याम्। नृभ्यः। नुः। नृभ्याम्। नृभ्यः। नुः। न्रोः। न नामि दीर्घमिति वर्तते।

(२.१७०)विधिसूत्रम् – नृ वा।।२०४।।

नृ शब्दो वा दीर्घं प्राप्नोति सनावामि परे। नॄणाम्, नृणाम्। नरि। न्रोः। नृषु। इति ऋदन्ताः। ॠकारऌकारॡकारैकारान्ता अप्रसिद्धाः। ऐकारान्तः पुल्लिङ्गो रै शब्दः। आत्वं व्यञ्जनादौ इति वर्तते।

(२.१६१)विधिसूत्रम् – रैः।।२०५।।

रैशब्दस्य आद् भवति व्यञ्जनादौ स्यादौ परतः। राः, रायौ, रायः। हे राः, हे रायौ, हे रायः। रायम्, रायौ, रायः। राया, राभ्याम्, राभिः। राये, राभ्याम्, राभ्यः। रायः, राभ्याम्, राभ्यः। रायः, रायोः, रायाम्। रायि, रायोः, रासु। इत्यैकारान्तः।। ओकारान्तः पुल्लिङ्गो गोशब्दः।

(२.११०)विधिसूत्रम् – गोरौ घुटि।।२०६।।

गोशब्दस्यान्त और्भवति घुटि परे। गौः, गावौ, गावः। हे गौः, हे गावौ, हे गावः।

(२.१११)विधिसूत्रम् – अम्शसोरा।।२०७।।

गोशब्दस्यान्त आ भवति अम्शसोः परतः। गाम् गावौ गाः। गवा गोभ्याम् गोभिः। गवे गोभ्याम् गोभ्यः। ङसिङसोरलोपश्चेति वर्तते।

(२.५६)विधिसूत्रम् – गोश्च।।२०८।।

गोशब्दात्परयोर्ङसिङसोरकारो लोपमापद्यते। गोः गोभ्याम् गोभ्यः। गोः गवोः गवाम्। गवि गवोः गोषु। इत्योकारान्तः। औकारान्तः पुल्लिङ्गो ग्लौशब्दः। ग्लौः ग्लावौ ग्लावः। सम्बोधने पि तद्वत्। ग्लावम् ग्लावौ ग्लावः। ग्लावा ग्लौभ्याम् ग्लौभिः। इत्यादि। इत्यौकारान्तः।

❑ ❑ ❑

।। अथ स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गा उच्यन्ते।।

अकारान्तः स्त्रीलिङ्गो प्रसिद्धः आकारान्तः रम्भाशब्दः। सौ।

(२.१०)सञ्ज्ञासूत्रम् – आ श्रद्धा।।२०९।।

आकारान्तः स्त्र्याख्यः श्रद्धासञ्ज्ञो भवति।

(२.३७) विधिसूत्रम् – श्रद्धायाः सिर्लोपम्।।२१०।।

श्रद्धासञ्ज्ञकात् परः सिर्लोपमापद्यते। रम्भा।

(२.४१)विधिसूत्रम् – औरिम्।।२११।।

श्रद्धासंज्ञकात्परः औरिमापद्यते। रम्भे। रम्भाः।

(२.३६)विधिसूत्रम् – सम्बुद्धौ च।।२१२।।

श्रद्धाया एत्वं भवति सम्बुद्धौ परे। हे रम्भे। हे रम्भे। हे रम्भाः। रम्भाम्। रम्भे। रम्भाः।

(२.३८) विधिसूत्रम् – टौसोरे।।२१३।।

श्रद्धाया एत्वं भवति टौसोः परतः। रम्भया। रम्भाभ्याम्। रम्भाभिः। ङवत्सु।

(२.४२)विधिसूत्रम् – ङवन्ति यैयास्यास्याम्।।२१४।।

श्रद्धायाः पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् यास् याम् भवन्ति यथासङ्ख्यम्। रम्भायै। रम्भाभ्याम्। रम्भाभ्यः। रम्भायाः। रम्भाभ्याम्। रम्भाभ्यः। रम्भायाः। रम्भयोः। रम्भाणाम्। रम्भायाम्। रम्भयोः। रम्भासु। एवं शाला–माला–दोला–भार्या–कान्ता–अङ्गना–वनिता–जाया–माया–प्रभृतयः। सर्वनाम्नस् त्रिलिङ्गत्वात्स्त्रीलिङ्गे।

(२.२५५)विधिसूत्रम् – स्त्रियामादा।।२१५।।

स्त्रियां वर्तमानादकारान्तादा प्रत्ययो भवति विभक्तिपरे। सर्वा। सर्वे। सर्वाः। हे सर्वे। हे सर्वे। हे सर्वाः। सर्वाम्। सर्वे। सर्वाः। सर्वया। सर्वाभ्याम्। सर्वाभिः। ङवत्सु।

(२.४३)विधिसूत्रम् – सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च।।२१६।।

सर्वनाम्नः श्रद्धायाः पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् यास् याम् भवन्ति यथासङ्ख्यं सह सुना ह्रस्वपूर्वाश्च। सर्वस्यै। सर्वाभ्याम्। सर्वाभ्यः। सर्वस्याः। सर्वाभ्याम्। सर्वाभ्यः।

सर्वस्याः। सर्वयोः। आमि। सुरामि सर्वतः। सर्वासाम्। सर्वस्याम्। सर्वयोः सर्वासु। एवं विश्वादीनामेकशब्दपर्यन्तानां रूपं ज्ञेयम्। अल्पादीनां तु सप्तानां रम्भाशब्दवत्। अल्प–प्रथम–चरम–तय अय–कतिपय–अर्य–एते सप्त। द्वितीया शब्दस्य तु भेदः। द्वितीया। द्वितीये। द्वितीयाः। हे द्वितीये। हे द्वितीये। हे द्वितीयाः। द्वितीयाम्। द्वितीये। द्वितीयाः। द्वितीयया। द्वितीयाभ्याम्। द्वितीयाभिः। ङवत्सु।

(२.४४)विधिसूत्रम् – द्वितीयातृतीयाभ्यां वा।।२१७।।

द्वितीयातृतीयाभ्यां पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् यास् याम् भवन्ति यथासङ्ख्यं सह सुना ह्रस्वपूर्वाश्च वा। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। द्वितीयाभ्याम्। द्वितीयाभ्यः। द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः। द्वितीयाभ्याम्। द्वितीयाभ्यः। द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः। द्वितीययोः। सर्वादौ अपठितत्वात् न सुरागमः। द्वितीयानाम्। द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम्। द्वितीययोः। द्वितीयासु। एवं तृतीयाशब्दो पि। अन्यत्र रम्भाशब्दवत्। जरा शब्दस्य तु भेदः। व्यञ्जने रम्भाशब्दवत्।

(२–१६६)विधिसूत्रम् – जरा जरस् स्वरे वा।।२१८।।

जराशब्दो जरस् वा भवति विभक्तिस्वरे परे। जरे, जरसौ। जराः जरसः। हे जरे। हे जरे, हे जरसौ। हे जराः, हे जरसः। जराम्, जरसम्। जरे जरसौ। जराः, जरसः। जरसा, जरया। जराभ्याम्। जराभिः। जरायै, जरसे। जराभ्याम्। जराभ्यः। जरायाः, जरसः। जराभ्याम्। जराभ्यः। जरायाः, जरसः। जरयोः, जरसोः। जराणाम्, जरसाम्। जरायाम्, जरसि। जरयोः, जरसोः। जरासु।

(२.४०)विधिसूत्रम् – ह्रस्वो म्बार्थानाम्।।२१९।।

अम्बार्थानां द्विस्वराणां श्रद्धासञ्ज्ञकानां सम्बुद्धौ ह्रस्वो भवति। हे अम्ब। हे अक्क। हे अल्ल। हे अत्त। एवमादयो म्बार्थाः। अन्यत्र रम्भाशब्दवत्।

(०००)निषेधसूत्रम् – न बहुस्वराणाम्।।२२०।।

बहुस्वराणामम्बार्थानां श्रद्धासञ्ज्ञकानां ह्रस्वो न भवति सम्बुद्धौ सौ परे। हे अम्बाडे। हे अम्बाले। हे अम्बिके। इत्याकारान्ताः। इकारान्तः स्त्रीलिङ्गो रुचि शब्दः। रुचिः।

रुची। रुचयः। हे रुचे। हे रुची। हे रुचयः। रुचिम्। रुची। स्त्रीलिङ्गत्वात्सस्य नत्वाभावः। रुचीः। तृतीयैकवचने पि तस्मान्नत्वाभावः। रुच्या। रुचिभ्याम्। रुचिभिः। ङवत्सु।

(२.८२)सञ्ज्ञासूत्रम् – ह्रस्वश्च ङवति।।२२१।।

स्त्र्याख्यावियुवौ स्थानिनौ च ह्रस्वश्च ङवति परे नदी सञ्ज्ञौ वा भवतः। यत्र नदी सञ्ज्ञा तत्र।

(२.४५)विधिसूत्रम् – नद्या ऐआसासाम्।।२२२।।

नदीसञ्ज्ञकात्पराणि ङवन्ति वचनानि ऐ आस् आस् आम् भवन्ति यथासङ्ख्यम्। नदीसञ्ज्ञाभावे मुनिशब्दवत्। रुच्यै, रुचये। रुचिभ्याम्। रुचिभ्यः। रुच्याः, रुचेः। रुचिभ्याम्। रुचिभ्यः। रुच्याः, रुचेः। रुच्योः। रुचीनाम्। रुच्याम्, रुचौ। रुच्योः। रुचिषु। एवं बुद्धि–वृद्धि–कीर्ति–कृति–युक्ति–श्रेणि–पङ्क्ति–प्रभृतयः। द्विशब्दस्य तु भेदः। त्यदादित्वात् अ आदेश आ प्रत्ययश्च। द्वे। हे द्वे। द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः। त्रिशब्दस्य तु भेदः।

(२.१६७)विधिसूत्रम् – त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ।।२२३।।

स्त्रियां वर्तमानयोस्त्रिचत्वार्शब्दयोः तिसृचतसृ आदेशौ भवतः विभक्तौ परतः। घुटि चेत्यरि प्राप्ते बाधकबाधनार्थो यं योगः।

(२.१६८)विधिसूत्रम् – तौ रं स्वरे।।२२४।।

तौ तिसृचतसृ आदेशौ रं प्राप्नुतो विभक्तौ स्वरे परे। तिस्रः। हे तिस्रः। तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसृभ्यः।

(२.१६९)निषेधसूत्रम् – न नामि दीर्घम्।।२२५।।

तौ तिसृचतसृ आदेशौ दीर्घत्वं न प्राप्नुवतः सनावामि परे। तिसृणाम्। तिसृषु। इति इकारान्तः। ईकारान्तः स्त्रीलिङ्गो नदीशब्दः।

(२.६)सञ्ज्ञासूत्रम् – ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी।।२२६।।

स्त्र्याख्यावीदूतौ नदी सञ्ज्ञौ भवतः।

(२.४८)विधिसूत्रम् – ईकारान्तात्सिः ।।२२७।।

नदीसञ्ज्ञकादीकारान्तात्परः सिर्लोपमापद्यते। नदीसञ्ज्ञादन्तग्रहणाधिक्यान्नदाद्यञ् चीत्यादिना विहितादीकारात्परः सिर्लोपमापद्यते। नदी। नद्यौ। नद्यः।

(२.४६)विधिसूत्रम् – सम्बुद्धौ ह्रस्वः।।२२८।।

नद्याः सम्बुद्धौ ह्रस्वो भवति। हे नदि। हे नद्यौ। हे नद्यः।

(२.४७)विधिसूत्रम् – अम्शसोरादिर्लोपम्।।२२६।।

नदीसञ्ज्ञकात्परयोः अम्शसोरादिर्लोपमापद्यते। नदीम्। नद्यौ। नदीः। नद्या। नदीभ्याम्। नदीभिः। ङवत्सु। नद्या ऐआसासामित्यादयः"। नद्यै। नदीभ्याम्। नदीभ्यः। नद्याः। नदीभ्याम्। नदीभ्यः। नद्याः। नद्योः। नदीनाम्। नद्याम्। नद्योः। नदीषु। एवं गौरी–गान्धारी–वाणी–भारती–गायत्री–सावित्री–सरस्वती–गोमती–गोमिनी–भामिनी–क्रोष्ट्री–महिषी–मही–प्लवी–सौरभेयी–प्रभृतयः।।

मही मन्दाकिनी गौरी, सखी भागीरथी नदी।
पुरी नारी पुरन्ध्री च, सैरन्ध्री सुरसुन्दरी ।।६।।

मृगी वनचरी देवी, शर्वरी वरवर्णिनी।
सिंही हैमवती धात्री, धरित्रीत्येवमादयः ।।१०।।

(२.८०)सञ्ज्ञासूत्रम् – स्त्री नदीवत्।।२३०।।

स्त्रीशब्दो नदीवद् भवति विभक्तौ परतः। स्त्रीशब्दस्य पृथङ्नदीसञ्ज्ञाकरणं किमर्थं ह्रस्वश्च ङवति वा इति सूत्रोक्तविकल्पनिषेधार्थम्। स्त्री।

(२.१३८)विधिसूत्रम् – स्त्री च।।२३१।।

स्त्रीशब्दो धातुवद्भवति विभक्तिस्वरे परे। स्त्रियौ। स्त्रियः। हे स्त्रि। हे। स्त्रियौ। हे स्त्रियः।

(२.१३९)विधिसूत्रम् – वाम्शसोः।।२३२।।

स्त्रीशब्दो वा धातुवद् भवति अम्शसोः परतः। स्त्रीम्, स्त्रियम्। स्त्रियौ। स्त्रीः, स्त्रियः। स्त्रिया। स्त्रीभ्याम्। स्त्रीभिः। स्त्रियै। स्त्रीभ्याम्। स्त्रीभ्यः। स्त्रियाः। स्त्रीभ्याम्। स्त्रीभ्यः। स्त्रियाः। स्त्रियोः। स्त्रीणाम्। स्त्रियाम्। स्त्रियोः। स्त्रीषु।

श्रीशब्दस्य तु भेदः। श्रीः। ईदूतोरियुवौ स्वरे इति स्वरादावियादेशः। श्रियौ। श्रियः। अनित्यनदीत्वात्सम्बुद्धौ ह्रस्वो नास्ति। हे श्रीः। हे श्रियौ। हे श्रियः। श्रियम्। श्रियौ। श्रियः। श्रिया। श्रीभ्याम्। श्रीभिः। ङवत्सु–नद्या ऐ आसासाम्। पश्चादीदूतोरियुवौ स्वरे। नदीपक्षे ऐ आसादयः। श्रियै, श्रिये। श्रीभ्याम्। श्रीभ्यः। श्रियाः, श्रियः। श्रीभ्याम्। श्रीभ्यः। श्रियाः, श्रियः। श्रियोः। आमि।

(२.८१)सञ्ज्ञासूत्रम् – स्त्र्याख्याावियुवौ वामि।।२३३।।

स्त्र्याख्यावियुवस्थानिनौ आमि परे वा नदी सञ्ज्ञो भवतः। सिद्धे सत्यारम्भो नियमाय। किं नदीवत्कार्यम् ? आमि च नुः इति नुरागमः। अन्यत्र "ईदूतोरियुवौ स्वरे" इति इय् उव्। श्रीणाम् श्रियाम्। श्रियाम् श्रियि। श्रियोः। श्रीषु। लक्ष्मीशब्दस्य तु भेदः। लक्षदर्शनाङ्कनयोः।

(०००)विधिसूत्रम् – लक्षेरीमो न्तश्च।।२३४।।

लक्षधातोरीप्रत्ययो भवति मो न्तश्च। ईकारो न्ते यस्य लिङ्गस्येति वचनात् ईकारान्तात्सिरिति सेर्लोपो न भवति।

अवी–लक्ष्मीतरी–तन्त्री, ह्री धी श्रीणामुणादितः।
अपि स्त्रीलिङ्गजातीनां सिर्लोपो न कदाचन।।११।।

लक्ष्मीः। लक्ष्म्यौ। लक्ष्म्यः। अन्यत्र नदीशब्दवत्। इति ईकारान्ताः।

उकारान्ताः स्त्रीलिङ्गश्चञ्चुशब्दः। स च रुचिशब्दवत्। विशेषस्तु उत ओत्वम् अवादेशश्च। चञ्चुः। चञ्चू। चञ्चवः। हे चञ्चो। हे चञ्चू। हे चञ्चवः। चञ्चुम्। चञ्चू। चञ्चूः। चञ्च्वा। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभिः। ह्रस्वश्च ङवतीति वा नदीवद्भावादैआसादयः। पक्षे भानुशब्दवत्। चञ्च्वै, चञ्चवे। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभ्यः। चञ्च्वाः, चञ्चोः। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभ्यः। चञ्च्वाः, चञ्चोः। चञ्च्वोः। चञ्चूनाम्। चञ्च्वाम्, चञ्चौ। चञ्च्वोः। चञ्चुषु। एवं उडु–तनु–प्रियङ्गु–स्नायु–ऊरु–करेणु–धेनु–प्रभृतयः। इत्युकारान्ताः।

ऊकारान्तः स्त्रीलिङ्गो वधूशब्दः। सौ– अनीकारान्तत्वात् ईकारान्तात्सिरिति सेर्लोपो न भवति। वधूः। वध्वौ। वध्वः। सम्बुद्धौ ह्रस्वः। हे वधु। हे वध्वौ। हे वध्वः। अन्यत्र नदीवत्। एवं अलाबू–कच्छू–यवागू– चमू–तण्डू–कमण्डलू–कद्रू–कण्डू–कासू–प्रभृतयः। भ्रूशब्दस्य तु भेदः। सौ – भ्रूः।

(२.१३७)विधिसूत्रम् – भ्रूर्धातुवत्।।२३५।।

भ्रूशब्दो धातुवद् भवति विभक्तिस्वरे परे। भ्रुवौ। भ्रुवः। सम्बोधने अप्यनित्यनदीत्वात् सम्बुद्धौ ह्रस्वो नास्ति। अन्यत्र नदीवत्। हे भ्रूः। हे भ्रुवौ। हे भ्रुवः। भ्रुवम्। भ्रुवौ। भ्रुवः। भ्रुवा। भ्रूभ्याम्। भ्रूभिः। भ्रुवै, भ्रुवे। भ्रूभ्याम्। भ्रूभ्यः। भ्रुवाः, भ्रुवः। भ्रूभ्याम्। भ्रूभ्यः। भ्रुवाः, भ्रुवः। भ्रुवोः। भ्रूणाम्, भ्रुवाम्। भ्रुवाम्, भ्रुवि। भ्रुवोः। भ्रूषु। इत्यूकारान्ताः।

ऋकारान्तः स्त्रीलिङ्गो मातृशब्दः। माता। मातरौ। मातरः। हे मातः। हे मातरौ। हे मातरः। मातरम्। मातरौ। मातॄः। स्त्रीलिङ्गत्वात्सस्य नत्वाभावः। इत्यादि। अन्यत्र पितृशब्दवत्। एवं दुहितृननान्दृप्रभृतयः। स्वस्रादीनां च पूर्ववत्। स्वस्रादयः के?

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च, ननान्दा दुहिता तथा।
याता मातेति सप्तैते, स्वस्रादिष्वध्यगीषत।।१२।।

शसादौ मातृशब्दवत्। इति ऋकारान्ताः। ॠकारऌकारॡकारएकारान्ता अप्रसिद्धाः।

ऐकारान्ताः स्त्रीलिङ्गो सुरैशब्दः। स च रै शब्दवत्। सुराः। सुरायौ। सुरायः। सम्बोधने पि तद्वत्। सुरायम्। सुरायौ। सुरायः। सुराया। सुराभ्याम्। सुराभिः। सुराये। सुराभ्याम्। सुराभ्यः। सुरायः। सुराभ्याम्। सुराभ्यः। सुरायः। सुरायोः। सुरायाम्। सुरायि। सुरायोः। सुरासु। इत्यैकारान्ताः। ओकारान्तः स्त्रीलिङ्गो गोशब्दः। स च पूर्ववत्। औकारान्तः स्त्रीलिङ्गो नौशब्दः। स च ग्लौशब्दवत्। इत्यौकारान्ताः।

।। इति स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गाः।।

❑ ❑ ❑

।। अथ स्वरान्ता नपुंसकलिङ्गा उच्यन्ते ।।

अकारान्तो नपुंसकलिङ्गः कुलशब्दः। सौ।

(२.८४)विधिसूत्रम् – अकारादसम्बुद्धौ मुश्च ।।२३६ ।।

अकारान्तान्नपुंसकलिङ्गात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति मुरागमश्चासम्बुद्धौ। कुलम्।

(२.८६)विधिसूत्रम् – औरीम् ।।२३७ ।।

नपुंसकलिङ्गात्परः औरीमापद्यते। कुले।

(२.४)सञ्ज्ञासूत्रम् – जस्शसौ नपुंसके ।।२३८ ।।

जस्शसौ नपुंसकलिङ्गे घुट्सञ्ज्ञौ भवतः।

(२.८७)विधिसूत्रम् – जस्शसोः शिः ।।२३६ ।।

सर्वनपुंसकलिङ्गात्परयोर्जस्शसोः शिर्भवति। शकारः सर्वादेशार्थः।

(२.८८)विधिसूत्रम् – धुट्स्वराद् घुटि नुः ।।२४० ।।

धुटः पूर्वस्वरात्परश्च नपुंसकलिङ्गे घुटि परे नुरागमो भवति। घुटि चासम्बुद्धौ इति दीर्घः। कुलानि। हे कुल। हे कुले। हे कुलानि। पुनरपि। कुलम्। कुले। कुलानि। कुलेन। कुलाभ्याम्। कुलैः। अतः परं पुरुषशब्दवत्।। एवं दान–धन–धान्य–मित्र–वस्त्र–वसन–वदन–नयन–पुण्य–पाप–सुख–दुःखादयः। सर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीययोः कुलशब्दवत्। सर्वम्। सर्वे। सर्वाणि। पुनरपि। अन्यत्र पुल्लिङ्गवत्। अन्य शब्दस्य तु भेदः।

(२.८५)विधिसूत्रम् – अन्यादेस्तु तुः ।।२४१ ।।

अन्यादेर्नपुंसकलिङ्गात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति तुरागमश्च। द्वितीयस् तु शब्दः किमर्थम्? असम्बुद्ध्यधिकारनिवृत्त्यर्थम्।

(२.२०४)विधिसूत्रम् – वा विरामे ।।२४२।।

विरामे धुटां प्रथमस्तृतीयो वा भवति। अन्यत्, अन्यद्। अन्ये। अन्यानि। हे अन्यद्, हे अन्यत्। हे अन्ये। हे अन्यानि। शेषं पुंवत्। एवमेकतरं वर्जयित्वान्यतरप्रभृतयः।

(०००)विधिसूत्रम् – नैकतरस्य।।२४३।।

एकतरशब्दस्य नपुंसकलिङ्गे तुरागमो न भवति। एकतरम्। एकतरे। एकतराणि। हे एकतर। हे एकतरे। हे एकतराणि। पुनरपि। अन्यत्र सर्वशब्दवत्। इत्यकारान्ताः। आकारान्तो नपुंसकलिङ्गः सोमपाशब्दः।

(२.२५८)विधिसूत्रम् – स्वरो ह्रस्वो नपुंसके।।२४४।।

नपुंसकलिङ्गे वर्तमानः स्वरो ह्रस्वो भवति। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। हे सोमप। हे सोमपे। हे सोमपानि। पुनरपि। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। शेषं पुल्लिङ्गवत्। इत्याकारान्ताः। इकारान्तो नपुंसकलिङ्गो वारिशब्दः। सौ–

(२.८३)विधिसूत्रम् – नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्।।२४५।।

नपुंसकात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति तदुक्तं कार्यं न भवति। वारि।

(२.८६)विधिसूत्रम् – नामिनः स्वरे।।२४६।।

नाम्यन्तान्नपुंसकलिङ्गान्नुरागमो भवति स्वरे परे। औरीमिति ईत्वं णत्वञ्च। वारिणी। जसि पूर्ववत् नुरागमः। सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान् इति न्यायात्। उक्तञ्च।

सामान्यशास्त्रतो नूनं, विशेषो बलवान् भवेत्।
परेण पूर्वबाधो वा, प्रायशो दृश्यतामिह ।।१३।।

धुट्स्वराद् घुटि नुः इत्यनेन सूत्रेण नुरागमो भवतीत्यर्थः।।

(२.९८)विधिसूत्रम् – इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च।।२४७।।

इन् हन् पूषन् अर्यमन् इत्येतेषामुपधाया दीर्घो भवति नपुंसकलिङ्गे जस्शसोरादेशे शौ चासम्बुद्धौ सौ च परे। वारीणि।

(०००)विधिसूत्रम् – नाम्यन्तचतुरां वा।।२४८।।

नाम्यन्तस्य नपुंसकलिङ्गस्य चत्वार् शब्दस्य च यदुक्तं कार्यं तद् वा भवति सम्बुद्धौ परे। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणं न याति इति न्यायात्। हे वारि, हे वारे। हे वारिणी। हे वारीणि। पुनरपि–वारि। वारिणी। वारीणि। वारिणा। वारिभ्याम्। वारिभिः। वारिणे। वारिभ्याम्। वारिभ्यः। वारिणः। इत्यादि। आमि। "नामिनः स्वरे" प्राप्ते सति सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान् इति न्यायात् आमि च नुरिति नुरागमो भवति। दीर्घमामि सनौ। वारीणाम्। वारिणि। वारिणोः। वारिषु।

अस्थि–दधि–सक्थि–अक्षिशब्दानां प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत्। अस्थि। अस्थिनी। अस्थीनि। पुनरपि–अस्थि। अस्थिनी अस्थीनि। टादौ –

(२.९०)विधिसूत्रम् – अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ।।२४९।।

नपुंसकलिङ्गानामस्थ्यादीनामन्तो न् भवति टादौ स्वरे परे।

(२.१३०)विधिसूत्रम् – अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ।।२५०।।

अवमसंयोगात्परस्य अनो कारस्य लोपो भवति अघुटि स्वरे परे स चालुप्तवद्भवति पूर्वस्य वर्णस्य विधौ कर्तव्ये। अस्थ्ना। अस्थिभ्याम्। अस्थिभिः। अस्थ्ने। अस्थिभ्याम्। अस्थिभ्यः। अस्थ्नः।

(२.१३१)विधिसूत्रम् – ईङ्योर्वा।।२५१।।

अवमसंयोगात्परस्य अनो कारस्य लोपो भवति वा ईङ्योर्नपुंसकलिङ्गे औकारादेशे ईकारे सम्तम्येकवचने परतः स चालुप्तवद् भवति पूर्वस्य वर्णस्य विधौ कर्तव्ये। अस्थ्नि, अस्थनि। अस्थ्नोः। अस्थिषु। एवं दधि–सक्थि–अक्षिशब्दाः। शुचिशब्दस्य प्रथमाद्वितीययो–

र्वारिशब्दवत्। शुचि। शुचिनी। शुचीनि। सम्बुद्धावविशेषः। पुनरपि–शुचि। शुचिनी। शुचीनि।

(२.६१)विधिसूत्रम् – टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा।।२५२।।

नाम्यन्तं भाषितपुंस्कं नपुंसकलिङ्गं टादौ स्वरे वा पुंवद्भवति।

यन्निमित्तमुपादाय, पुंसि लिङ्गे प्रवर्त्तते ।
क्लीबवृत्तौ तदेव स्यात्, तद्धि भाषितपुंसकम् ।।१४।।

शुचि भूमिगतं तोयं, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचिर्धर्मपरो राजा, ब्रह्मचारी सदा शुचिः ।।१५।।

शुच्या शुचिना। शुचिभ्याम्। शुचिभिः। शुचये, शुचिने। शुचिभ्याम्। शुचिभ्यः। इत्यादि।

ईकारान्तो नपुंसकलिङ्गो ग्रामणीशब्दः। तस्य स्वरो ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वत्वे शुचिशब्दवत्। टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद्भावो भवति विकल्पेन। ग्रामणि। ग्रामणिनी। ग्रामणीनि। पुनरपि ग्रामणि। ग्रामणिनी। ग्रामणीनि। ग्रामणिना। अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ इति यत्वम्। ग्रामण्या। ग्रामणिभ्याम्। ग्रामणिभिः। ग्रामणिने। ग्रामणिभ्याम्। ग्रामणिभ्यः। इत्यादि। आमि नुरागमः। दीर्घमामि सनौ इति दीर्घः। ग्रामणीनाम्। पुंवद्भावे। ग्रामण्याम् ग्रामणिनि। पुंवति–नियो ङिराम् इति आम्। यत्वं पूर्ववत्। ग्रामण्याम्। ग्रामणिनोः, ग्रामण्योः। ग्रामणिषु। सम्बोधने–नाम्यन्तचतुरां वा। हे ग्रामणे, हे ग्रामणि। हे ग्रामणिनी। हे ग्रामणीनि। एवमग्रणी–सेनानीप्रभृतयः। इति ईकारान्ताः।

उकारान्तो नपुंसकलिङ्गो वस्तुशब्दः। स च वारि शब्दवत्। वस्तु। वस्तुनी। वस्तूनि। सम्बोधने – हे वस्तु, हे वस्तो। हे वस्तुनी। हे वस्तूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे परे नित्यं नपुंसकम्। आमि परे–आमि च नुः। दीर्घमामि सनौ इति दीर्घः। वस्तूनाम्। वस्तुनि। वस्तुनोः। वस्तुषु।

मृदुशब्दस्य प्रथमा–द्वितीययोर्वारिशब्दवत्। मृदु। मृदुनी। मृदूनि। पुनरपि टादौ स्वरे परे भाषितपुंस्कं पुंवद् वा इति। विकल्पेन पुंवद्भावः। शुचिवत्। मृदुना। मृदुभ्याम्। मृदुभिः। इत्यादि। एवं पटु–लघु–गुरुप्रभृतयः। इत्युकारान्ताः।

ऊकारान्तो नपुंसकलिङ्गः खलपूशब्दः। तस्य स्वरो ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वत्वे सेनानीशब्दवत्। खलपु। खलपुनी। खलपूनि। पुनरपि। टादौ भाषितपुंस्कमिति विकल्पेन यत्र पुंवद्भावस्तत्र सेनानीशब्दवत्। खलपुना, खलप्वा। खलपूभ्याम्। खलपूभिः। इत्यादि। एवं सरलू–काण्डलूप्रभृतयः। इत्यूकारान्ताः।

ऋकारान्तो नपुंसकलिङ्गः कर्तृशब्दः। तस्य प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत्। कर्तृ। कर्तृणी। कर्तॄणि। सम्बोधने – हे कर्तृ, हे कर्तः। हे कर्तृणी। हे कर्तॄणि। पुनरपि। टादौ पुंवद्भावात् पुल्लिङ्गवद् वा। कर्त्रा कर्तृणा। कर्तृभ्याम्। कर्तृभिः। कर्त्रे, कर्तृणे। कर्तृभ्याम्। कर्तृभ्यः। कर्तुः, कर्तृणः। कर्तृभ्याम्। कर्तृभ्यः। कर्तुः, कर्तृणः। कर्त्रोः, कर्तृणोः। आमि परे नुरागमः। कर्तॄणाम्। कर्तरि, कर्तृणि। कर्त्रोः, कर्तृणोः। कर्तृषु।

बहुक्रोष्टृशब्दस्य तु भेदः। क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ इत्यादिना उर्भवति। शसि व्यञ्जने नपुंसके च इति ऋत उकारः। बहुक्रोष्टु। बहुक्रोष्टुनी। बहुक्रोष्टूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद् वा इति विकल्पेन पुंवद्भावः। अयमेकविकल्पः।

(०००)विधिसूत्रम् – टादौ स्वरे वा।।२०२।।

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्वा भवति टादौ स्वरे परे। इति द्वितीयविकल्पः। इति उभयविकल्पे त्रैरूप्यम्। बहुक्रोष्टुना बहुक्रोष्ट्वा बहुक्रोष्ट्रा। बहुक्रोष्टुभ्याम्। बहुक्रोष्टुभिः। इत्यादि। सम्बोधने। हे बहुक्रोष्टु, हे बहुक्रोष्टो। हे बहुक्रोष्टुनी। हे बहुक्रोष्टूनि। इत्यादि। ॠकारऌकारॡकारान्ता एकारान्ताश्चाप्रसिद्धाः। ऐकारान्तो नपुंसकलिङ्गो अतिरैशब्दः। तस्य ह्रस्वत्वे–

(०००)विधिसूत्रम् – सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे।।२५३।।

सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वादेशे सति इदुतौ भवतः। तपरकरणमसन्देहार्थम्। इति एकारस्य ऐकारस्य च ह्रस्वः इकारः। ओकारस्य औकारस्य च ह्रस्व उकारः। अतिरि। नामिनः स्वरे इति नुरागमः। अतिरिणी। अतिरीणि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद् वा इति विकल्पेन पुंवद्भावः। यत्र पुंवद्भावस्तत्र सुरैशब्दवत्। अतिरिणा, अतिराया। व्यञ्जनादौ प्रत्यये परे रैरिति आत्वम्। कुतः ? एकदेशविकृतमनन्यवत् इति न्यायात्। अतिराभ्याम्। अतिराभिः। अतिरिणे, अतिराये। अतिराभ्याम्। अतिराभ्यः। इत्यादि। इति ऐकारान्ताः।

ओकारान्तो नपुंसकलिङ्गश्चित्रगो शब्दः। तत्र ओकारस्य ह्रस्व उकारः। मृदु–शब्दवत्। चित्रगु। चित्रगुणी। चित्रगूणि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद्वा इति विकल्पः। चित्रगुणा, चित्रगवा। इत्यादि। इति ओकारान्ताः।

औकारान्तो नपुंसक लिङ्गो तिनौशब्दः। तत्रापि औकारस्य ह्रस्वः उकारः। तस्य प्रथमाद्वितीययोर्वारि शब्दवत्। अतिनु। अतिनुनी। अतिनूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद् वा इति विकल्पः। अतिनुना, अतिनावा। इत्यादि। इत्यौकारान्ताः।।

।। इति स्वरान्ता नपुंसकलिङ्गाः।।

❑ ❑ ❑

कातन्त्र–रूपमाला के सूत्र पाठ

धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम् । ।१२५ । ।

तस्मात्परा विभक्तयः । ।१२६ । ।

प्रथमा विभक्तिर्लिङ्गार्थवचने । ।१२७ । ।

एकं द्वौ बहून् । ।१२८ । ।

यो नुबन्धो प्रयोगी । ।१२६ । ।

रेफसोर्विसर्जनीयः । ।१३० । ।

जसि । ।१३१ । ।

आमन्त्रणे च । ।१३२ । ।

आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः । ।१३३ । ।

ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम् । ।१३४ । ।

शेषाः कर्मकरणसम्प्रदानापादान–
स्वाम्याद्यधिकरणेषु । ।१३५ । ।

अकारे लोपम् । ।१३६ । ।

शसि सस्य च नः । ।१३७ । ।

इन टा । ।१३८ । ।

रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः
स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरो पि ।१३६ ।

अकारो दीर्घं घोषवति । ।१४० । ।

भिसैस्वा । ।१४१ । ।

ङेर्यः । ।१४२ । ।

धुटि बहुत्वे त्वे । ।१४३ । ।

ङसिरात् । ।१४४ । ।

ङस् स्यः । ।१४५ । ।

ओसि च । ।१४६ । ।

आमि च नुः । ।१४७ । ।

तृतीयादौ तु परादिः । ।१४८ । ।

दीर्घमामि सनौ । ।१४६ । ।

नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं
नुविसर्जनीयषान्तरो पि । ।१५० । ।

पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् । ।१५१ । ।

जस् सर्व इः । ।१५२ । ।

स्मै सर्वनाम्नः । ।१५३ । ।

ङसिः स्मात् । ।१५४ । ।

सुरामि सर्वतः । ।१५५ । ।

ङिः स्मिन् । ।१५६ । ।

अल्पादेर्वा । ।१५७ । ।

विभाष्येते पूर्वादेः । ।१५८ । ।

पञ्चादौ घुट् । ।१५६ । ।

आधातोरघुट् स्वरे । ।१६० । ।

इदुदग्निः । ।१६१ । ।

औकारः पूर्वम् । ।१६२ । ।

इरेदुरोज्जसि । ।१६३ । ।

सम्बुद्धौ च । ।१६४ । ।

अग्नेरमो कारः ।।१६५।।

शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्।।१६६।।

अस्त्रियां टा ना।।१६७।।

ङे।।१६८।।

ङसिङसोरलोपश्च।।१६९।।

दीर्घमामि सनौ।।१७०।।

ङिरौ सपूर्वः।।१७१।।

त्यदादीनाम विभक्तौ।।१७२।।

त्रेस्त्रयश्च।।१७३।।

कतेश्च जस्शसोर्लुक्।।१७४।।

लुग्लोपे न प्रत्ययकृतम्।।१७५।।

सख्युश्च।।१७६।।

घुटि चासम्बुद्धौ।।१७७।।

व्यञ्जनाच्च।।१७८।।

लिङ्गान्तनकारस्य।।१७९।।

घुटि त्वैः।।१८०।।

न सखिष्टादावग्निः ।।१८१।।

ङसिङसोरुमः।।१८२।।

सखिपत्योर्ङिः।।१८३।।

पतिरसमासे।।१८४।।

पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ।।१८५।।

अनन्तो घुटि।।१८६।।

अघुट्स्वरे लोपम्।।१८७।।

व्यञ्जने चैषां निः।।१८८।।

ईदूतोरियुवौ स्वरे ।।१८९।।

अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ।।१९०।।

नियो ङिराम् ।।१९१।।

सुधीः।।१९२।।

भूरवर्षाभूरपुनर्भूः।।१९३।।

आ सौ सिर्लोपश्च।।१९४।।

घुटि च।।१९५।।

आ च न सम्बुद्धौ।।१९६।।

अग्निवच्छसि।।१९७।।

ऋदन्तात्सपूर्वः।।१९८।।

अर्ङौ।।१९९।।

धातोस्तृशब्दस्यार्।।२००।।

क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च ।।२०१।।

टादौ स्वरे वा ।।२०२।।

स्वस्रादीनां च।।२०३।।

नृ वा।।२०४।।

रैः।।२०५।।

गोरौ घुटि।।२०६।।

अम्शसोराः।।२०७।।

गोश्च।।२०८।।

आ श्रद्धा।।२०९।।

श्रद्धायाः सिर्लोपम्।।२१०।।

औरिम्।।२११।।

सम्बुद्धौ च।।२१२।।
टौसौरे।।२१३।।
ङवन्ति यैयास्यास्याम्।।२१४।।
स्त्रियामादा।।२१५।।
सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च।।२१६।।
द्वितीयातृतीयाभ्यां वा।।२१७।।
जरा जरस् स्वरे वा।।२१८।।
ह्रस्वो म्बार्थानाम् ।।२१९।।
न बहुस्वराणाम्।।२२०।।
ह्रस्वश्च ङवति।।२२१।।
नद्या ऐआसासाम्।।२२२।।
त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ ।।२२३।।
तौ रं स्वरे।।२२४।।
न नामि दीर्घम् ।।२२५।।
ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी।।२२६।।
ईकारान्तात्सिः ।।२२७।।
सम्बुद्धौ ह्रस्वः।।२२८।।
अम्शसोरादिर्लोपम् ।।२२९।।
स्त्री नदीवत्।।२३०।।
स्त्री च।।२३१।।
वाम्शसोः।।२३२।।
स्त्र्याख्याावियुवौ वामि।।२३३।।
लक्षेरीमो न्तश्च।।२३४।।
भ्रूर्धातुवत्।।२३५।।
अकारादसम्बुद्धौ मुश्च।।२३६।।
औरीम्।।२३७।।
जस्शसौ नपुंसके।।२३८।।
जस्शसोः शिः।।२३९।।
धुट्स्वराद् घुटि नुः।।२४०।।
अन्यादेस्तु तुः।।२४१।।
वा विरामे।।२४२।।
नैकतरस्य।।२४३।।
स्वरो ह्रस्वो नपुंसके।।२४४।।
नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम् ।।२४५।।
नामिनः स्वरे ।।२४६।।
इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च।।२४७।।
नाम्यन्तचतुरां वा।।२४८।।
अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ।।२४९।।
अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च पूर्वविधौ ।।२५०।।
ईङ्योर्वा।।२५१।।
टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा।।२५२।।
सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे।।२५३।।

कातंत्र–रूपमाला लिंग प्रकरण के सूत्र पाठ, अकारादि क्रम से

अकारादि

अकारादसम्बुद्धौ मुश्च।।२३६।।
अकारे लोपम्।।१३६।।
अकारो दीर्घं घोषवति।।१४०।।
अग्निवच्छसि।।१६७।।
अग्नेरमो कारः।।१६५।।
अघुट्स्वरे लोपम्।।१८७।।
अनन्तो घुटि।।१८६।।
अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ।।१६०।।
अन्यादेस्तु तुः।।२४१।।
अम्शसोराः।।२०७।।
अम्शसोरादिर्लोपम्।।२२६।।
अर्ङौ।।१६६।।
अल्पादेर्वा।।१५७।।
अस्त्रियां टा ना।।१६७।।
अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ।।२४६।।
अवमसंयोगादनो लोपो लुप्तवच्च
पूर्वविधौ।।२५०।।

आकारादि

आमन्त्रणे च।।१३२।।
आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः।।१३३।।
आमि च नुः।।१४७।।
आधातोरघुट् स्वरे।।१६०।।
आ सौ सिर्लोपश्च।।१६४।।
आ च न सम्बुद्धौ।।१६६।।
आ श्रद्धा।।२०६।।

इकारादि

इन टा।।१३८।।
इदुदग्निः।।१६१।।
इरेदुरोज्जसि।।१६३।।
इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च।।२४७।।

ईकारादि

ईदूतोरियुवौ स्वरे।।१८६।।
ईदूतौ स्त्र्याख्यौ नदी।।२२६।।
ईकारान्तात्सिः।।२२७।।
ईङ्योर्वा।।२५१।।

ऋकारादि

ऋदन्तात्सपूर्वः।।१६८।।

एकारादि

एकं द्वौ बहून्।।१२८।।

ओकारादि

ओसि च।।१४६।।

औकारादि

औकारः पूर्वम् ।।१६२।।

औरिम् ।।२११।।

औरीम् ।।२३७।।

ककारादि

कतेश्च जस्शसोर्लुक् ।।१७४।।

क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च ।।२०१।।

गकारादि

गोरौ घुटि ।।२०६।।

गोश्च ।।२०८।।

घकारादि

घुटि च ।।१६५।।

घुटि चासम्बुद्धौ ।।१७७।।

घुटि त्वैः ।।१८०।।

ङवन्ति यैयास्यास्याम् ।।२१४।।

ङसिरात् ।।१४४।।

ङस् स्यः ।।१४५।।

ङकारादि

ङसिङसोरलोपश्च ।।१६६।।

ङसिः स्मात् ।।१५४।।

ङसिङसोरुमः ।।१८२।।

ङात् ।।२६३।।

ङिः स्मिन् ।।१५६।।

ङिरौ सपूर्वः ।।१७१।।

ङे ।।१६८।।

ङेर्यः ।।१४२।।

जकारादि

जरा जरस् स्वरे वा ।।२१८।।

जस् सर्व इः ।।१५२।।

जसि ।।१३१।।

जस्शसौ नपुंसके ।।२३८।।

जस्शसोः शिः ।।२३६।।

टकारादि

टादौ स्वरे वा ।।२०२।।

टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद् वा ।।२५२।।

टौसौरे ।।२१३।।

तकारादि

तस्मात्परा विभक्तयः ।।१२६।।

त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ ।।२२३।।

तृतीयादौ तु परादिः ।।१४८।।

तौ रं स्वरे ।।२२४।।

त्यदादीनाम विभक्तौ ।।१७२।।

त्रेस्त्रयश्च ।।१७३।।

दकारादि

दीर्घमामि सनौ ।।१४६।।

दीर्घमामि सनौ ।।१७०।।

द्वितीयातृतीयाभ्यां वा ।।२१७।।

धकारादि

धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम् ।।१२५।।

धातोस्तृशब्दस्यार् ।।२००।।

धुटि बहुत्वे त्वे ।।१४३।।

धुट्स्वराद् घुटि नुः ।।२४०।।

नकारादि

न बहुस्वराणाम् ।।२२०।।

नद्या ऐआसासाम् ।।२२२।।

न नामि दीर्घम् ।।२२५।।

न सखिष्टादावग्निः ।।१८१।।

नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम् ।।२४५।।

नामिनः स्वरे ।।२४६।।

नाम्यन्तचतुरां वा ।।२४८।।

नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरो पि ।।१५०।।

नियो ङिराम् ।।१६१।।

नृ वा ।।२०४।।

नैकतरस्य ।।२४३।।

पकारादि

पञ्चादौ घुट् ।।१५६।।

पतिरसमासे ।।१८४।।

पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ ।।१८५।।

पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् ।।१५१।।

प्रथमा विभक्तिर्लिङ्गार्थवचने ।।१२७।।

भकारादि

भिसैस्वा ।।१४१।।

भूरवर्षाभूरपुनर्भूः ।।१६३।।

भ्रूर्धातुवत् ।।२३५।।

यकारादि

यो नुबन्धो प्रयोगी ।।१२६।।

वकारादि

वा विरामे ।।२४२।।

वाम्शसोः ।।२३२।।

विभाष्येते पूर्वादेः ।।१५८।।

व्यञ्जनाच्च ।।१७८।।

व्यञ्जने चैषां निः ।।१८८।।

रकारादि

रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्ग–पवर्गान्तरो पि ।।१३६।।

रेफसोर्विसर्जनीयः ।।१३०।।

रैः ।।२०५।।

लकारादि
लक्षेरीमो न्तश्च।।२३४।।
लिङ्गान्तनकारस्य।।१७६।।
लुग्लोपे न प्रत्ययकृतम्।।१७५।।
शकारादि
शसो कारः सश्च नो स्त्रियाम्।।१६६।।
शसि सस्य च नः।।१३७।।
शेषाः कर्मकरणसम्प्रदानापादान–
स्वाम्याद्यधिकरणेषु।।१३५।।
श्रद्धायाः सिर्लोपम्।।२१०।।
सकारादि
सम्बुद्धौ च।।२१२।।
सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च।।२१६।।
सम्बुद्धौ ह्रस्वः।।२२८।।
सम्बुद्धौ च।।१६४।।
सख्युश्च।।१७६।।
सखिपत्योर्ङिः।।१८३।।
सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे।।२५३।।
सुधीः।।१६२।।
सुरामि सर्वतः।।१५५।।
स्मै सर्वनाम्नः।।१५३।।
स्वरो ह्रस्वो नपुंसके।।२४४।।
स्त्री नदीवत्।।२३०।।
स्त्री च।।२३१।।
स्त्र्याख्याावियुवौ वामि।।२३३।।
स्त्रियामादा।।२१५।।
स्वस्रादीनां च।।२०३।।
हकारादि
ह्रस्वो म्बार्थानाम्।।२१६।।
ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्।।१३४।।
ह्रस्वश्च ङवति।।२२१।।

कातन्त्र–रूपमाला में प्रयोग हुये, शब्दार्थ

पुरुष	=	आत्मा
धर्म	=	धर्म
वीर	=	बाहदुर, अन्तिम तीर्थंकर
वेद	=	शास्त्र
वृक्ष	=	वृक्ष
सूर्य	=	सूर्य
सागर	=	समुद्र
स्तम्भ	=	
बाण	=	बाण
मृग	=	हिरण
दन्त	=	दाँत
राघव	=	रामचन्द्र
मास	=	महिना
पक्ष	=	पन्द्रह दिन
शिव	=	शंकर जी
शैल	=	पर्वत
गुह्यक	=	गुफा
व्रात	=	
गण्ड	=	
कटक	=	
पाट	=	
नाग	=	
शंकर	=	
घट	=	घड़ा, कलश
पट	=	परदा
सर्व	=	सब
विश्व	=	सम्पूर्ण, सब

उभ	=	दोनों
उभय	=	दो अवयवों वाला
अन्य	=	दूसरा
अन्यतर	=	दो में से एक
अन्यतम	=	बहुतों में से एक
इतर	=	भिन्न
इतम	=	
कतर	=	दो में कौन
कतम	=	बहुतों में कौन
यतर	=	दो में जो
यतम	=	बहुतों में जो
ततर	=	दो में वह
ततम	=	बहुत में वह/बहुतों में कौन
एकतर	=	दो में एक
एकतम	=	बहुतोंमें एक
स्व	=	आप, अपना
त्व	=	भिन्न
नेम	=	अर्ध (आधा)
सम	=	सब, तुल्य (सब अर्थ में सर्वनाम संज्ञा, तुल्य अर्थ में नहीं)।
सिम	=	सब
पूर्व	=	पूर्व दिशास्थित, पूर्वकाल, दिशा –विशेष, प्रथम आदि
पर	=	दूसरा आदि
अवर	=	न्यून आदि
दक्षिण	=	दाहिना आदि
उत्तर	=	अगला आदि

अपर = दूसरा आदि
अधर = नीचा आदि
स्व = आत्मा, आत्मीय, (स्वशब्द के चार अर्थ होते हैं – (१) आत्मा–खुद अथवा स्वयम्) (२) आत्मीय–खुद का, अपना), (३) ज्ञाति – बान्धव, रिश्तेदार, (४) धान। प्रथम दो अर्थों में स्वशब्द की सर्वनाम सञ्ज्ञा होती है। अन्तिम दो अर्थों में नहीं।)।
अन्तर = बाह्य या परिधानीय
प्रथम = पहला
चरम = अन्तिम
द्वितय = दो अवयवों वाला, जोड़ा
अल्प = थोड़ा
अर्ध = आधा
कतिपय = कुछ और
त्यद् = जो
तद् = वह
यद् = जो
अदस् = वह
इदम् = यह
एतद् = यह
किम् = कौन
एक = एक
द्वि = दो
युष्मद् = तुम
अस्मद् = मैं
भवत् = आप
अल्प = थोड़ा
प्रथम = पहला

चरम =
क्षीरपा = दूध पीने वाला
सोमपा =
सीधुपा =
कीलालपा =
सौवीरपा =
मण्डपा =
अग्रेगा =
विवस्वा =
अब्जजा =
उदधिका =
हाहा =
पुरोगा =
मुनि = जैन सन्त
साधु = सज्जन, साधु
अग्नि = आग
गिरि = पहाड़, पर्वत
रवि = सूर्य
ऋषि = मन्त्रदृष्टा
यति = संन्यासी
कवि = कविताकार
विधि = दैव
राशि = ढेर
शीतरश्मि = चन्द्र
शालि =
दानवारि =
दैत्यारि =
सौरि =
सूरि = विद्वान्

विघ्नारि =
हेमाद्रि =
अद्रि = पहाड़
हरि = विष्णु, सांप, इन्द्र, मैंढक, शेर, घोड़ा, सूर्य, चन्द्र, सूअर, वानर, यमराज, वायु
सारिवह्नि =
शकुनि = पक्षी
पाकशासनि =
धूमयोनि =
पद्मयोनि =
अतिथि = मेहमान
ग्रन्थि = गाँठ
पदाति =
मैत्रि =
बलि =
ध्वनि = आवाज
पाणि = हाथ
कपि = बन्दर, बानर
अलि = भ्रमर
मणि = मणि
जलधि = समुद्र
अब्धि = समुद्र
पयोधि = समुद्र
निधि = खजाना
उपाधि = उपाधि
नीरधि = समुद्र
व्याधि = शारीरिक रोग
शेवधि =
द्वि = दो

त्रि = तीन
कति = कितने
सखि = मित्र
सुसखि =
अतिसखि =
असखि =
पति = स्वामी
भूपति = राजा
नरपति = राजा
पन्थि = मार्ग
मन्थि = मथनी
ऋभुक्षि = इन्द्र
यवक्री = जौ खरीदने वाला
सेनानी = सेनापति, सेना को ले जाने वाला
सुश्री =
नी = ले जाने वाला
अग्रणी =
ग्रामणी = ग्राम का नेता
सुधी = बुद्धिमान्, भली प्रकार चिन्तन करने वाला
प्रधी =
भानु = सूर्य
ऋतु = मौसम, यज्ञ
मेरु = पर्वत (सुदर्शनमेरु)
गुरु = गुरु
तरु = वृक्ष
धातु = सुवर्णादि धातु
सेतु = पुल

बाहु = भुजा
वायु = हवा
बहु = बहुत
अणु = परमाणु
अन्धु = कुँआ
असु = प्राण (बहुवचनान्त)
अंशु = किरण
आखु = चुहा
आगन्तु = आगन्तुक
इक्षु = गन्ना
इक्ष्वाकु = नाभिराय (अन्तिम कुलकर)
इच्छु = चाहने वाला
इन्दु = इन्द्र
इषु = बाण
ऋजु = सरल
ओतु = बिलाव
केतु = झण्डा, एकग्रह
चण्डांशु = सूर्य
चिकीर्षु = करनेच्छुक
जन्तु = प्राणी
जिज्ञासु = ज्ञानेच्छुक
जिष्णु = इन्द्र, अर्जुन
तनु = पतला
तन्द्रालु = ऊंघने वाला
तिग्मांशु = सूर्य
देवदारु = दियार वृक्ष
पंगु = लंगड़ा
पटु = चतुर
परशु = कुल्हाड़ा

पशु = जानवर
पांशु = धूलि
प्रभु = स्वामी
बन्धु = बान्धव
भिक्षु = याचक
भीरु = डरपोक
मन्यु = क्रोध
मरु = रेगिस्तान
मृत्यु = मौत
रिपु = शत्रु
रेणु = धूलि
लघु = छोटा
वटु = ब्रह्मचारी
विधु = चन्द्र
विभावसु = अग्नि, सूर्य
विभु = व्यापक
व्यसु = मृत
सुधांशु = चन्द्र
सूनु = पुत्र
स्वर्भानु = राहु
हिमांशु = चन्द्र
हेतु = कारण
खलपू = खलिहान को साफ करने वाला, झाड़ू द्वारा खलियान या स्थान को शुद्ध करने वाला, नौकर, दुष्टों को पवित्र करने वाला
लू =
कटप्रू =
शरलू =

काण्डलू =

सुलू = अच्छी प्रकार से काटने वाला

उल्लू = उत्कृष्ट रीति से काटने वाला

नोट "उल्लू" में संयोग धातु का अवयव नहीं, उपसर्ग के तकार को मिलाकर बना है।

स्वभू = ब्रह्मा

स्वयम्भू = तीर्थंकर, ब्रह्मा

आत्मभू = कामदेव

प्रतिभू = जामिन

वर्षाभू = वर्षासु भवति, दर्दुर, मेंढक

पुनर्भू = पुनः पैदा होने वाला, पुनः ब्याही हुई स्त्री

नोट – पुनः ब्याही हुई स्त्री इस अर्थ में पुनर्भू शब्द नित्यस्त्रीलिंग होता है।

दृन्भू = सर्प विशेष, वज्र, वानर

करभू = नाखून

चमू = सेना

अतिचमू = जो सेना को जीत गया हो

मित्रभू =

अग्निभू =

मनोभू =

भू = पृथ्वी

पितृ = पिता

भ्रातृ = भाई

जामातृ =

सवितृ = सूर्य, प्रेरक

कर्तृ = कार्य करने वाला

धातृ = धारण करने वाला

भर्त्तृ = स्वामी, पति

ज्ञातृ = जानने वाला

वेत्तृ = जानने वाला

श्रोतृ = सुनने वाला

नेतृ = नेता, सञ्चालक

वक्तृ = बोलने वाला

भोक्तृ = खाने वाला

पक्तृ = पकाने वाला

अध्येतृ = पढ़ने वाला

भेत्तृ = तोड़ने वाला

तरितृ = तैरने वाला

नप्तृ = पोता, दोहता

पठितृ = पढ़ने वाला

पातृ = रक्षक, पीने वाला

पृष्टृ = पूछने वाला

रचयितृ = रचने वाला

श्रोतृ = सुनने वाला

स्तोतृ = स्तुति करने वाला

स्रष्टृ = पैदा करने वाला

हन्तृ = मारने वाला

होतृ = यज्ञ करने वाला

ननान्दृ = नन्द

क्रोष्टृ = गीदड

स्वसृ = बहिन =

नप्तृ = दोहता (अपनी लड़की का लड़का)

नेष्टृ = दान देने वाला

त्वष्टृ = एक विशेष असुर

क्षत्तृ = सारथि (द्वारपाल)

होतृ = हवन करने वाला
पोतृ = पवित्र करने वाला
प्रशास्तृ = शासन करने वाला
नृ = मनुष्य
रै = राति = ददाति श्रेयो र्थं वा पात्रेभ्य इति राः। रायते = दीयते इति रा इति वा। धन, सूर्य या सुवर्ण
गो = बैल
ग्लौ = चन्द्रमा, ग्लायति कमलस्य चौरादीनां वा हर्षक्षयं करोति इति ग्लौः चन्द्रः।
रम्भा = देवांगना
शाला = घर
माला = माला
दोला = पालकी
भार्या = स्त्री
कान्ता = मनोहरा
अङ्गना = स्त्री
वनिता = स्त्री
जाया = स्त्री
माया = प्रकृति, छल
एडका = भेड
अश्वा = घोडी
चटका = चिडिया
मूषिका = चूही
बाला = बच्ची
वत्सा = बच्ची या बछिया
होडा = बाला
मन्दा = बालिका
विलाता = बाला या नवयौवना

मेधा = बुद्धि
गङ्गा = नदी विशेष
खट्वा = खाट
धनिका = धनी औरत
कृत्रिमा = बनावटी
स्वभावजा गता = गई हुई
द्वितीया =
तृतीया =
जरा = बुढ़ापा
अम्बा = माता पार्वती
अक्का = माता पार्वती
अल्ला = माता पार्वती
अत्ता = माता पार्वती

नोट – अल्ला शब्द मुसलमानों में प्रयोग होता है। अम्बा, अल्ला आदि शब्द दुर्गा शक्ति के हैं।

अम्बाडा =
रुचि = अनुराग
बुद्धि = बुद्धि
वृद्धि =
कीर्ति = यश
कान्ति = सौन्दर्य, शोभा
कृति = कार्य
युक्ति = उपाय
श्रेणि = पंक्ति
पङ्क्ति = कतार
इष्टि = यज्ञ
उक्ति = वचन
उपकृति = उपकार

औषधि = जड़ी–बूटि

कटि = कमर

कण्डूति= खुजली

कृषि = खेती

कोटि = कोना, करोड़

नोट – करोड़ अर्थ में "कोटि" शब्द एकवचन होता है।

खनि = खान

ख्याति = प्रसिद्धि

गति = गान

गुप्ति = छिपाना

छवि = कान्ति, चमक

जनि = उत्पत्ति

जाति = जाति

तति = विस्तार

तिथि = तारीख

द्युति = कान्ति

धूलि = धूलि

नियति = भाग्य

नीति = नीति

नुति = स्तुति

पद्धति = मार्ग

प्रकृति = स्वभाव

प्रतिकृति = छाया, सादृश्य

प्रतिपत्ति = ज्ञान, प्राप्ति

प्रतीति = अनुभव

प्रत्यासत्ति = समीपता

प्रत्युक्ति = उत्तर

प्रशस्ति= प्रशंसा

प्रसूति = प्रसव, सन्तान

प्राप्ति = पाना

प्रीति = प्रेम

भक्ति = श्रद्धा

भित्ति = दीवार

भीति = डर

भुक्ति = भोजन, खाना

भूति = कल्याण

भूमि = पृथ्वी

भृति = मजदूरी

भेरि = नगारा

भ्रान्ति = भ्रम

मुक्ति = मोक्ष

मूर्ति = प्रतिमा

यष्टि = छड़ी

युक्ति = उपाय

युवति = जवान स्त्री

योनि = उत्नत्ति स्थान

रजनि = रात्रि

रीति = तरीका, रिवाज

रूढि = प्रसिद्धि

लिपि = वर्णमाला

वसति = वास, घर

विकृति = विकार

विगीति = निन्दा

विज्ञप्ति= प्रार्थना

विनति = नम्रता

विपत्ति = आपत्ति

विरति = हटना

विशुद्धि	=	विशेष शुद्धि
विस्मृति	=	भूलना
वीति	=	तरंग
वृत्ति	=	जीविका
वृष्टि	=	वर्षा
व्याकृति	=	व्याकरण
व्रतति	=	लता
शक्ति	=	ताकत
शान्ति	=	शान्ति
शिरोधि	=	गरदन
शुद्धि	=	सफाई
श्रुति	=	शास्त्र, कान
सन्तति	=	सन्तान
संस्तुति	=	परिचय
संहति	=	समूह
सूक्ति	=	सुन्दर वचन
स्तुति	=	प्रशंसा
स्थिति	=	ठहरना
स्मृति	=	स्मरण
हानि	=	हानि
द्वि	=	दो
त्रि	=	तीन
चतुर्	=	चार
नदी	=	नदी
गौरी	=	पार्वती
गान्धारी	=	
वाणी	=	वाणी
भारती	=	संस्कृतभाषा, वाणी
गायत्री	=	एक छन्द

सावित्री	=	
सरस्वती	=	वाग्देवी
गोमती	=	
गोमिनी	=	
भामिनी	=	कोपशीला
क्रोष्ट्री	=	
महिषी	=	भैंस, पटरानी
मही	=	पृथ्वी
प्लवी	=	
सौरभेयी	=	
मही	=	पृथ्वी
मन्दाकिनी	=	स्वर्गंगा
सखी	=	सहली
भागीरथी	=	गंगा
नदी	=	नदी
पुरी	=	नगरी
नारी	=	स्त्री
पुरन्ध्री	=	पति–पुत्रवती
सैरन्ध्री	=	दासी
सुरसुन्दरी	=	देवांगना
मृगी	=	हिरणी
वनचरी	=	
देवी	=	दुर्गा, देवपत्नी
शर्वरी	=	रात्रि
वरवर्णिनी	=	
सिंही	=	शेरनी
हैमवती	=	
धात्री	=	
धरित्री	=	पृथ्वी

स्त्री = महिला
श्री = लक्ष्मी, शोभा
अवी =
लक्ष्मी = लक्ष्मी
तरी =
तन्त्री =
ह्री =
धी =
चञ्चु = चोंच
उडु = नक्षत्र, तारा
तनु = शरीर
प्रियङ्गु=
स्नायु = नस
उरु =
करेणु = हथिनी
धेनु = गाय
वधू = बहू
अलाबू =
कच्छू =
यवागू =
चमू =
तण्डू =
कमण्डलू =
कद्रू =
कण्डू =
कासू =
भ्रू = भ्रौं
मातृ = माता
दुहितृ = लड़की

ननान्दृ = पति की बहन, ननन्द
स्वसृ = बहिन
तिसृ = तीन
चतसृ = चार
यातृ = भाईयों की स्त्रियाँ आपस में याता कहलाती है।
नप्तृ = पोता, दोहता
नेष्टृ = ऋत्विग्–विशेष
त्वष्टृ = विश्वकर्मा
क्षत्तृ = सारथि, द्वारपाल
होतृ = यज्ञ करने वाला
पोतृ = ऋत्विग्–विशेष
प्रशास्तृ= ऋत्विग्, राजा
सुरै =
गो = गाय
नौ = नाव
कुल =
दान =
धन = धन
धान्य =
मित्र = मित्र
वस्त्र = वसन
वसन = वस्त्र
वदन = मुख
नयन = आँख
पुण्य = पुण्य
पाप = पाप
सुख = सुख
दुःख = दुःख

सोमपा =
अक्षर = अकारादि वर्ण
अगार = घर
अघ = पाप
अंग = अवयव
अञ्जन = सुरमा
अनृत = झूठ
अन्तरिक्ष = आकाश
अन्तःपुर = रनवास
अभ्र = बादल
अमृत = जल, अमृत
अम्भोज = पद्म
अरण्य = जंगल
अरविन्द = पद्म
अवसान = विराम
अस्त्र = बाण आदि
अंशुक = महीन वस्त्र
आधिक्य = ज्यादती
आनन = मुख
आर्जव = सरलता
आर्द्रक = अदरक
आसन = आसन
आस्य = मुख
इंगित = इशारा
इन्द्रजाल = माया, छल
इन्द्रिय = नेत्र आदि
इन्धन = लकड़ी
उदक = जल
उदर = पेट
उद्यान = बगीचा
उपवन = बगीचा
ऐक्य = एकता
ओदन = भात
कज्जल = काजल
कनक = सुवर्ण, धत्तूरा
कमल = कमल
काञ्चन = सुवर्ण
कुमुद = श्वेत कमल
कौटिल्य = कुटिलता
क्षीर = दूध
क्षेत्र = खेत
ख = आकाश
गवेषण = खोज
गौरव = गुरुत्व, प्रतिष्ठा
चन्दन = चन्दन
चरण = पैर (पु. भी)
चातुर्य = निपुणता
चामीकर = सुवर्ण
चिह्न = निशान
चौर्य = चोरी
जठर = पेट
जाड्य = मूर्खता
तत्त्व = यथार्थ रूप
ताम्बूल = पान
तारुण्य = जवानी
तिमिर = अन्धकार
तैल = तेल
तोक = सन्तान

तोय = पानी
दाक्षिण्य = चतुरता
दास्य = दासता
दुर्भिक्ष = अकाल
देवमन्दिर = देवालय
नवनीत = माखन
पंकज = कमल
पाण्डित्य = विद्वत्ता
पैशुन्य = चुगलखोरी
भक्त = भात, सेवक
भय = डर
भुवन = लोक
भोजन = खुराक
मन्दिर = घर
मार्दव = कोमलता
मित्र = मित्र
मुख = मुँह
मूल्य = दाम, कीमत
मौन = चुप्पी
युद्ध = लड़ाई
योजन = चार कोस
यौवन = जवानी
रजत = चान्दी
रत्न = मणि
रहस्य = गोप्य
ललाट = माथा
ललाम = प्रधान, सुन्दर
लवंग = लौंग
लवण = नमक

लांगल = हल
लाघव = हलकापन
लालित्य = सौन्दर्य
लेख्य = दस्तावेज
वक्त्र = मुख
वचन = कथन
वज्र = इन्द्र का अस्त्र
वाङ्मय= शास्त्र
वार्धक्य= बुढ़ापा
वासर = दिन
वाहन = सवारी
विश्वभेषज = सोंठ
विष = जल, विष
वीर्य = बल, परक्रम
वृत्त = चरित्र
वेतन = तनख्वाह
वैधव्य = विधवापन
वैर = दुश्मनी
व्यसन = विपत्ति
व्रण = घाव
शस्त्र = हथियार
शास्त्र = धर्मग्रन्थ
शैथिल्य = शिथिलता
शैशव = लड़कपन
सख्य = मित्रता
संगीत = गायन आदि
सत्य = सच
सदन = घर
साक्ष्य = गवाही

साधन = उपकरण
सामर्थ्य = ताकत
सिंहासन = राजगद्दी
सुकृत = पुण्य
सुदर्शन = विष्णु का चक्र
सोपान = सीढ़ी
सौभाग्य = अच्छा भाग्य
स्तेय = चोरी
स्तोत्र = स्तुतिगीत
स्थान = जगह
स्थाविर = बुढ़ापा
हवन = होम
हाटक = सुवर्ण
हालाहल = विषविशेष
हित = भलाई
हिम = बरफ
हिरण्य = सुवर्ण
हृदय = दिल
वारि = जल
अस्थि = हड्डी
दधि = दही
सक्थि = ऊरु, जंघा
अक्षि = आँख
शुचि = पवित्र कुल
अनादि = जिस का आदि न हो (तीर्थंकर)
सादि = जिस का आदि हो (कार्य)
सुकवि = श्रेष्ठ कवियों वाला (कुल)
सुशकुनि = अच्छे पक्षियों वाला(वन)
सुध्वनि = अच्छी ध्वनि वाला (वाद्य)
सुसूरि = अच्छे विद्वानों वाला (कुल)
निरादि = आदि हीन (तीर्थंकर)
द्वि = दो
त्रि = तीन
मधु = शहद, पुल्लिंग में इस का अर्थ वसन्त ऋतु, चैत्रमास, दैत्यविशेष आदि है। अत एव भाषितपुंस्क नहीं होता। सम्पूर्ण प्रक्रिया वारि शब्द के समान होती है।
अम्बु = जल
अश्रु = आंसु
तालु = दांतों के पीछे मुख की कठिन छत
दारु = लकड़ी
वसु = धन
ग्रामणी =
वस्तु = पदार्थ, चीज
श्मश्रु = दाढ़ी–मूंछ
मृदु = कोमल
पटु = चतुर
लघु = छोटा, हल्का
गुरु = बड़ा
ऋजु = सरल
कमण्डलु = साधुओं का पात्र
जिज्ञासु = जानने की इच्छा वाला
तनु = सूक्ष्म, पतला
दयालु = दया करने वाला
पिपासु = पीने का इच्छुक
विभु = व्यापक
श्रद्धालु = श्रद्धा रखने वाला

सहिष्णु = सहन करने वाला
साधु = सरल, सीधा
स्वादु = स्वादिष्ट
खलपू =
सरलू =
काण्डलू =
कर्तृ = करने वाला (कुल आदि)
ज्ञातृ = जानने वाला (कुल आदि)
कथयितृ = कहने वाला (कुल आदि)
जेतृ = जीतने वाला (कुल आदि)
छेत्तृ = काटने वाला (कुल आदि)
दातृ = देने वाला (कुल आदि)
वक्तृ = बोलने वाला (कुल आदि)
श्रोतृ = सुनने वाला (कुल आदि)
हर्त्तृ = हरने वाला (कुल आदि)
बहुक्रोष्टृ =
अतिरै =
चित्रगो =
अतिनौ =
अग्रज = बड़ा भाई
आबुत्त = बहनोई
जनक = पिता
तनय = पुत्र
देवर = देवर
दौहित्र = दोहता
धव = पति
पितामह = दादा
पितृभ्य = चाचा
पौत्र = पोता
प्रपितामह = परदादा
प्रपौत्र = परपोता
भागिनेय = भांजा
भ्रातृव्य = भतीजा, शत्रु
भ्रात्रीय = भतीजा
मातामह = नाना
मातुल = मामा
मातुलेय = मामा का पुत्र
श्याल = साला
श्वशुर = ससुर
सोदर = सगा भाई
स्वस्रीय = भांजा

❑ ❑ ❑